पट्दर्शन

(तीर्थंकर प्रणीत धर्मदेशना अन्तर्गत शत्रुंजय माहात्म्य)

The glory of Shatrunjaya as depected in a 19th Century Jain Scroll

An ISO 9001:2000 Certified University and Accredited by NAAC-B+

JAIN VISHVA BHARATI UNIVERSITY

LADNUN - 341 306 (RAJASTHAN) INDIA

पटदर्शन

(तीर्थंकर प्रणीत धर्मदेशना अन्तर्गत शत्रुंजय माहात्म्य)

The glory of Shatrunjaya as depicted in a 19th century Jain scroll

Edition, analysis and translation by
Dr. Kalpana K. Sheth and Prof. Nalini Balbir

JAIN VISHVA BHARATI UNIVERSITY
LADNUN - 341 306 (RAJASTHAN) INDIA

Published by : Jain Vishva Bharati University
Ladnun - 341 306 (Rajasthan)

ISBN No. : 978-81-910633-0-1

Edited by : Dr. Kalpana K. Sheth
Prof. Nalini Balbir

Copies : 500

First Edition : 2010

Price : Rs. 450/-
US $ 25

Printed by : Nagar Printing Press
55-Tilak Nagar (Kotri), Kota
(Rajasthan) INDIA
Ph. : 0744-2363333, 2361333

PREFACE

Among the treasures housed at the Jain Vishva Bharati University, Ladnun, is a Siddhacalapata (shelfmark: Aa 97). This is a unique scroll dating back to the beginning of the 19th century. It has a long text in Gujarati and bright paintings of each of the 24 Tirthankars. Its purpose is to celebrate the sacred place of Siddhacala, also known as Shatrunjaya (Gujarat), where so many persons have attained and will attain moksa. It does so by giving particulars of each of the 24 Tirthankars as well as by narrating many stories which show the power of Siddhacala, undoubtedly the most loved tīrtha of the Jains.

We are grateful to Dr. Kalpana K. Sheth and Prof. Dr. Nalini Balbir for having spent time and energy to prepare the present book which brings to light this important document in a scholarly way, both in Hindi and in English. The readers will be able to admire the paintings and read the original text through the photographs reproduced in this volume. They will also be able to read the original text in Devanagari and in transliteration. All tools necessary for the understanding of the text and of the numerous narratives it contains have also been provided (in Hindi and in English, in different ways) by the two active and competent editors of this book, which we are proud and happy to publish today.

Samani Mangalprajna
Vice-Chancellor

प्रकाशकीय

जैन तीर्थों में सिद्धाचल अर्थात् शत्रुंजय का एक उत्तम स्थान है। बहुत पुराना भी है। सैकड़ों शताब्दियों से शत्रुंजय के ऊपर विविध ग्रन्थ लिखे हुए हैं और 15वीं शताब्दी से शत्रुंजय पट की परम्परा भी विकसित हो गई है। सिद्धाचल का नाम इस कारण के लिये दिया गया है कि इस स्थान में असंख्येय लोगों ने मोक्ष (सिद्धि) प्राप्त किया है। सिद्धाचल के पर्वत की हर जगह पवित्र है और इसके बारे में मनोरंजन तथा उपदेशात्मक कथाएं कही गई हैं।

इस पुस्तक का विषय है एक सिद्धाचलपट जो जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ के पुस्तकालय में रखा हुआ है। उसका नम्बर है ''Aa97''। यह कागज का है। उसकी लम्बाई 12 मीटर और चौड़ाई 24 सेण्टीमीटर है। इसमें सिद्धाचल के माहात्म्य का वर्णन दिया गया है। लिपि देवनागरी है और भाषा गुजराती। पट के 24 विभाग हैं, प्रत्येक तीर्थंकर के लिए एक विभाग। पट का महत्त्व यह भी है कि इस में 24 तीर्थंकरों के अलग-अलग चित्र मिलते हैं। ये चित्र कितने सुन्दर हैं और कितने प्रेरक हैं यह यहाँ प्रकाशित किये गये फोटो के आधार पर पाठकों को अपने आप देखने का मौका मिलेगा। यह पट दूसरे शत्रुंजय-पटों के जैसा नहीं है। इस मे शत्रुंजय के क्षेत्र, कुण्ड, तालाब इत्यादि के चित्र बिलकुल नहीं मिलते हैं। प्रशस्ति से पता चलता है कि यह पट विक्रम संवत् 1859 में बन गया था।

इस पुस्तक के पहले भाग में हमने मूलपाठ को देवनागरी और रोमनाइजेशन में दिया है। बीच में हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। दूसरे भाग के अन्तर्गत कथाओं का विवरण, शत्रुंजय के जीर्णोद्धार और इस तीर्थ के विविध नामों के विषय पर हमने हिन्दी में कुछ जानकारी भी दी है और तीसरे भाग में ऐसा विवरण अंग्रेजी भाषा में दिया गया है।

हम दोनों जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय की कुलपति डॉ. समणी मंगलप्रज्ञाजी के प्रति कृतज्ञ हैं जिनकी प्रेरणा से यह अध्ययन प्रकाश में आ सका है। जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय ने हमको सुविधायें उपलब्ध कराईं। इस के लिये भी हम आभारी हैं। जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय के टेक्नीकल टीम ने भी प्रकाशन के काम में हमको पूरा सहयोग दिया है। उन सब लोगों को भी हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

डॉ. कल्पना क. शेठ
प्रो. नलिनी बलवीर

Preliminary note to the Devanāgarī text and to the transliteration

The first part of this book is presented as follows: for each of the 24 sections we give

1) the photographs of the original document (painting of the Jina and corresponding text),
2) the Devanāgarī text,
3) the Hindi translation,
4) the transliteration of the original text.

In the Devanāgarī text and in the transliteration we have done our best to help the reader by inserting paragraphs and by making use of Western punctuations. We use inverted commas for dialogues. In the transliteration, hyphens have been used for compounds (although we are aware that it is difficult to be totally consistent given the state of the language, which remains influenced by Sanskrit and Prakrit, but has, definitely, the structure of a modern Indo-aryan language). *Daṇḍa*s are used profusely in the original document, but they do not systematically function as punctuation marks. The sign ":" (identical to the *visarga*) is, however, a punctuation mark, indicating the end of a sentence. We have kept it as such in the transliteration.

We have made no attempt to harmonize the inconsistencies of orthography whether they concern ordinary words or proper names, as this can be considered as a linguistic feature and should not be seen in a normative perspective as "mistakes". The Nāgarī script is clear and neat. In a few cases, the scribe or a person who read the document afterwards have noted superfluous syllables which have to be erased. In a few cases, he has written a syllable twice. The scribe has used red ink for colophons, beginnings, and occasionally for verses or other passages.

< > indicates superfluous syllables written on the document and marked as such or considered as such by us.

( ) indicates a syllable omitted in the document and restored by us.

CONTENTS

Preface *by Samani Mangalprajna, Vice Chancellor* iii
प्रकाशकीय iv
Preliminary note to the Devanāgarī text and to the transliteration v

I. ORIGINAL TEXT **1-98**
Reproduction of the original scroll - Text in Devanāgarī - Hindi translation - Transliteration

1. Ṛṣabhanātha 1
2. Ajitanātha 13
3. Sambhavanātha 21
4. Abhinandanasvāmī 24
5. Sumatinātha 30
6. Padmaprabhu 33
7. Supārśvanātha 36
8. Candraprabhu 38
9. Suvidhinātha 41
10. Śītalanātha 44
11. Śreyāṃsanātha 47
12. Vāsupūjya 50
13. Vimalanātha 52
14. Anantanātha 55
15. Dharmanātha 57
16. Śāntinātha 60
17. Kuntunātha 65
18. Aranātha 68
19. Mallinātha 71
20. Munisuvrata 73
21. Naminātha 78
22. Neminātha 81
23. Pārśvanātha 85
24. Mahāvīrasvāmī 87

II. HINDI SECTION **98-123**

1. पट अन्तर्गत उल्लेखित कथाएं 99
2. शत्रुंजय महिमा 113
3. शत्रुंजय तीर्थोद्धार 117
4. शत्रुंजय के विविध नाम 120
5. कठिन शब्दार्थ 123

III. ENGLISH SECTION **124-143**

1. Contents of the text 124
   The Jinas identity cards: analysis and charts
   The narrative material: miracles, names and landscapes
   Analysis of the stories in sections 1, 2, 4, 16, 20, 22 and 24
2. The colophon 140
3. The paintings 141

References 143
Index of proper names 145

१. श्री ऋषभदेवजी

1. Śrī Ṛṣabhadevajī

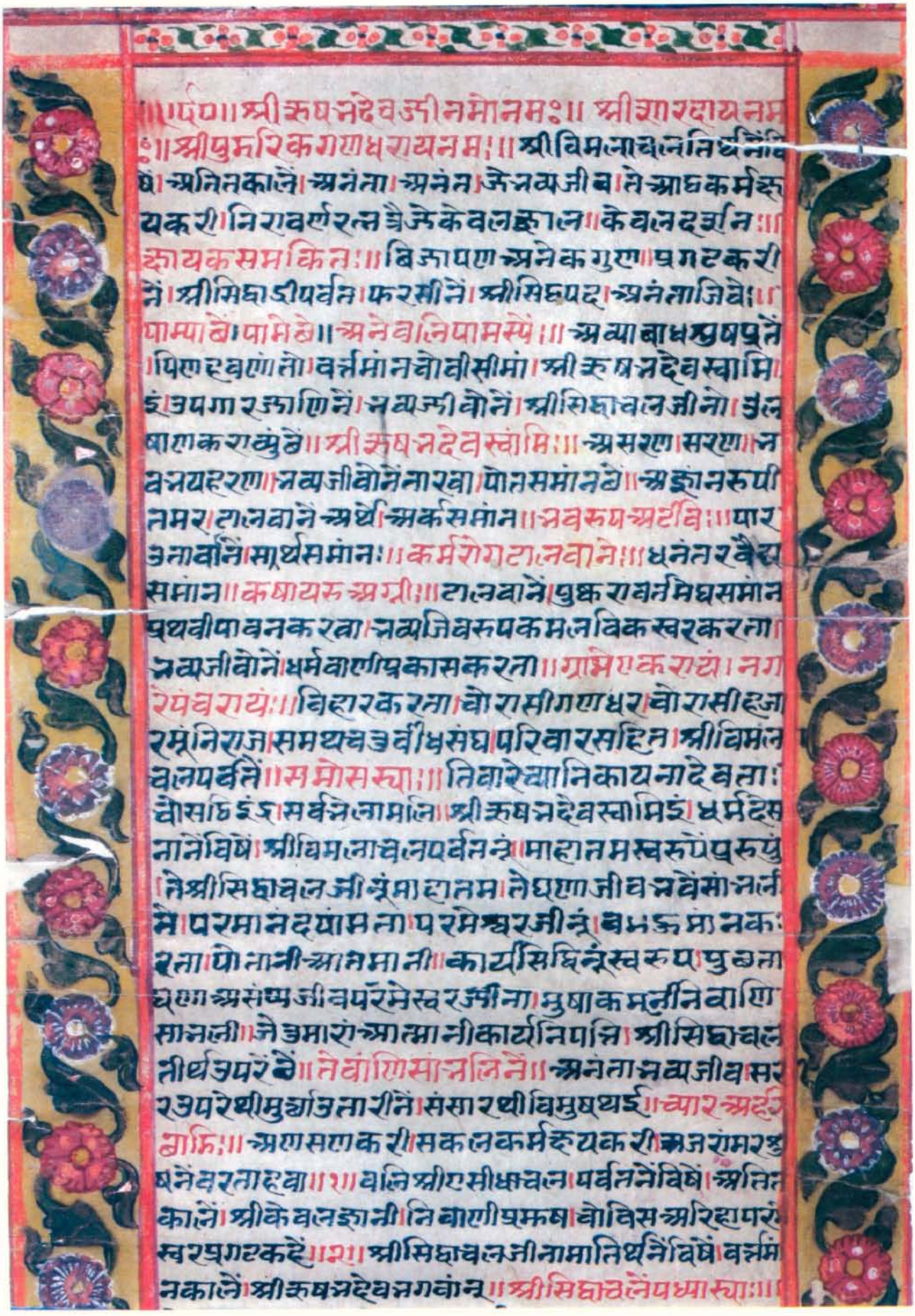

॥ ॥ श्री ऋषभदेवजी नमो नमः ॥ श्री शारदायनमः ॥ श्री पुंडरिक गणधरायनमः ॥ श्री विमलाचलतिर्थनें विषे अनितकालें अनंता अनंत जे भव्यजीव ते आठकर्मक्षय करी निरावर्ण रत्न ते जे केवलज्ञान केवलदर्शन ॥ क्षायक समकित ॥ विज्ञापण अनेक गुण प्रगटकरीनें श्री सिद्धाद्रीपर्वत फरसीनें श्री सिद्धपद अनंता जिवे पाम्या छे पामे छे ॥ अनेवली पामस्ये ॥ अव्याबाधसुषप्रतें पिण इहवणें तो वर्त्तमान चोवीसीमां श्री ऋषभदेवस्वामि इं उपगार ज्ञाणिनें भव्यजीवोनें श्री सिद्धाचलजीनो उद्धार करावु छे ॥ श्री ऋषभदेवस्वामि ॥ असरण सरण भवभयहरण भव्यजीवोनें तारवा पोतसमान छे ॥ अज्ञानरुपी तमर टालवानें अर्थे अर्कसमान ॥ भवरुप अटवि ॥ पार उतारवानें सार्थसमान ॥ कर्मरोग टालवानें ॥ धनंतर वैद्य समान ॥ कषायरु अग्नी ॥ टालवानें पुष्करावर्तमेघसमान पृथवीपावनकरवा भव्यजिवरुपकमलविकस्वरकरता भव्यजीवोनें धर्मवाणीप्रकासकरता ॥ ग्रामे एकरात्रं नगरे पंचरात्रं ॥ विहारकरता चोरासी गणधर चोरासी हजार मुनिराज समस्त चतुर्विधसंघ परिवारसहित श्री विमलाचलपर्वतें ॥ समोसर्या ॥ तिवारें च्यार निकायना देवता चोसठ इंद्र सर्व मलि श्री ऋषभदेवस्वामिइं धर्मदेसनानें विषे श्री विमलाचलपर्वतनुं माहात्म स्वरुपें प्ररुप्यु तें श्री सिद्धाचलजीनुं माहात्म तेघणा जीव भव्यें सांभलीनें परमानंद पामता परमेश्वरजीनुं बहुमान करता पोतानी आतमानी कार्यसिद्धिनुं स्वरुप पुछता घणा असंख्य जीव परमेस्वरजीना मुषाकमलनी वाणि सांभली ॥ जे उमारो आत्मानी कार्यनिपत्ति श्री सिद्धाचल तीर्थ उपरें छे ॥ ते वाणि सांभलिनें ॥ अनंता भव्यजीव सर उपरे थी मुक्ति जतारीनें संसारथी विमुषथई ॥ च्यार आहार ॥ ॥ अणसण करी सकलकर्मक्षय करी अजरामर सुषनें वरता हुवा ॥ १ ॥ वलि श्री एसी धाचल पर्वतनें विषें अतित कालें श्री केवलज्ञानी निर्वाणी प्रमुष चोविस अरिहा परमेस्वर प्रगट कहें ॥ २ ॥ श्री सिद्धाचलजी नामा तिर्थनें विषें वर्त्तमान कालें श्री ऋषभदेवभगवान ॥ श्री सिद्धाचलें पधार्या ॥

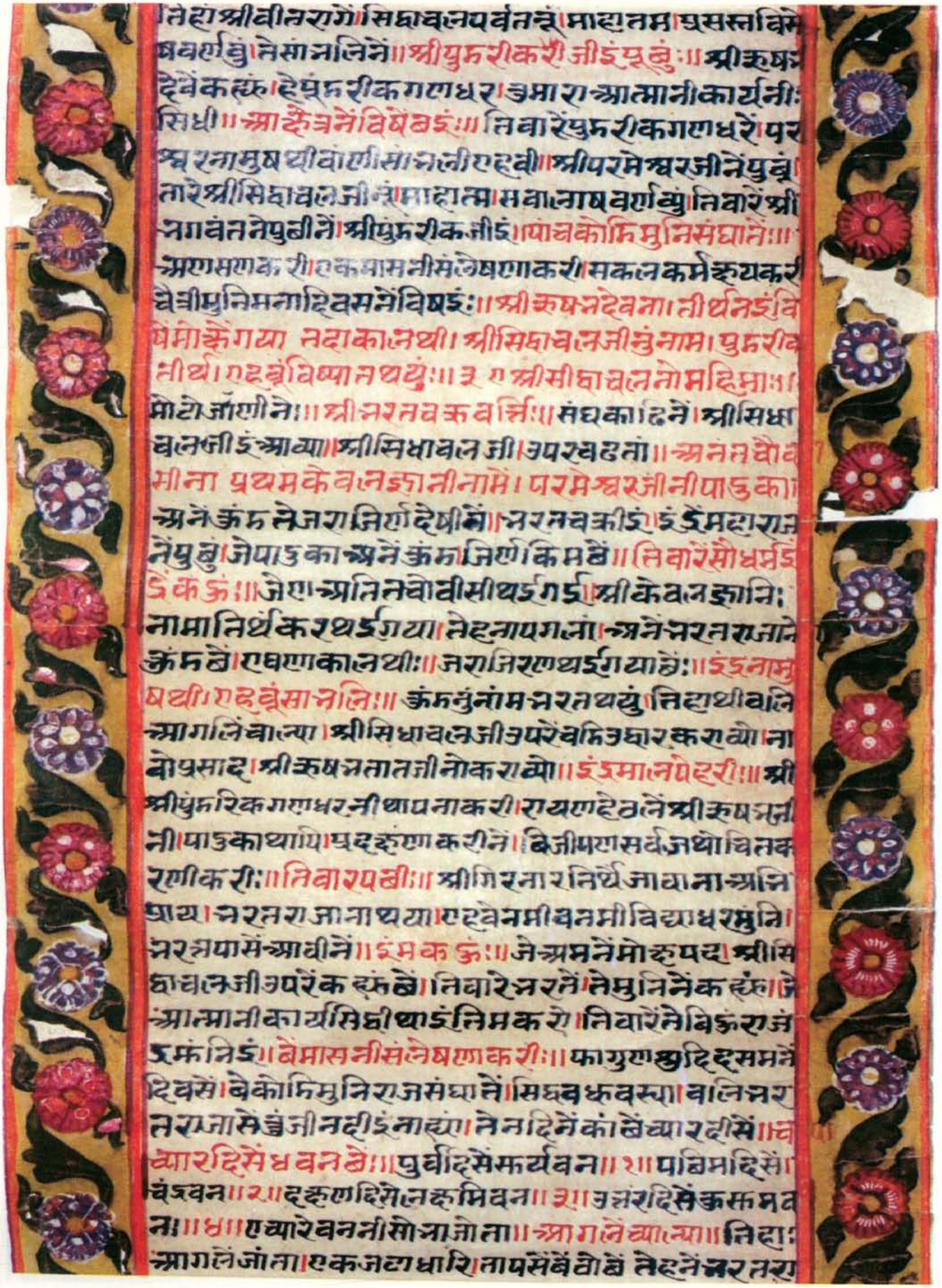

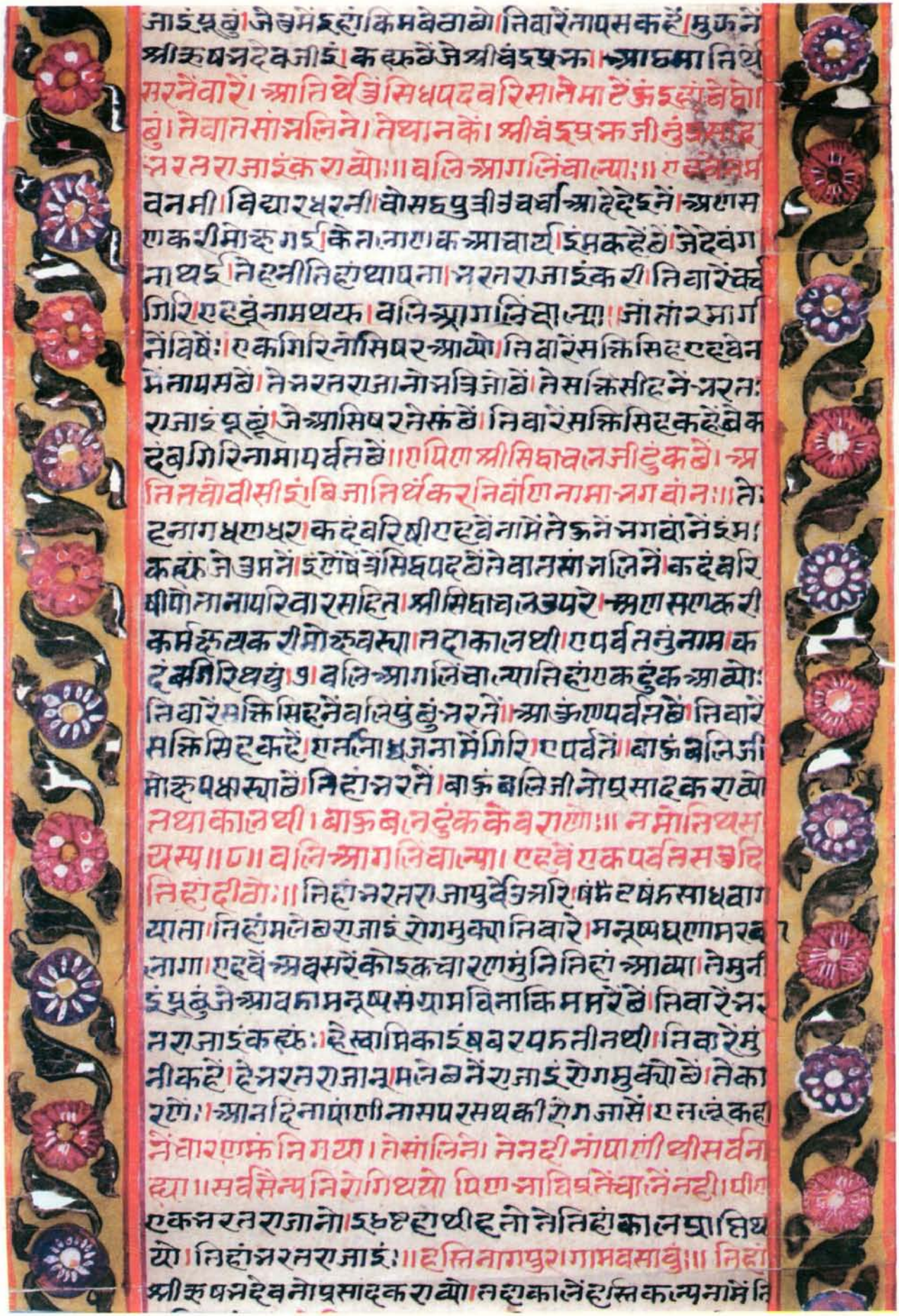

जाइं पूछ्युं। जे भगवन् इहां किम बेठा छो। तिवारें तापस कहें। मुझने
श्रीऋषभदेवजीइं कह्युं छें जे श्री चंद्रप्रभ। आठमा तीर्थं
करनें वारें। आ तीर्थ सिधपद वरिसें। ते माटें इहां बेठो
छुं। ते वात सांभलिनें। तेथानकें। श्री चंद्रप्रभजीनुं प्रसाद
भरतराजाइं करायो॥ वलि आगलि चाल्या॥ एहवें ...
वनमी। विद्याधरनी। चोसठ पुत्री तेवर्षा आदेदेइनें। अणस
ण करीमोक्ष गई। के तलाएक आचार्य इम कहें छें। जे देवंग
ना थइ। ते स्त्रीतिहां थापना। भरतराजाइं करी। तिवारें चं
गिरि एहवुं नाम थयुं। वलि आगलि चाल्या। जांतां मार्ग
नें विषें। एक गिरिनें सिषर आव्या। तिवारें सक्तिसिंह एहवे न
में तापस छें। ते भरतराजानो भत्रिजो छें। ते सक्तिसिंह नें भरत
राजाइं पूछ्युं। जे आ सिषर ते स्युं छें। तिवारें सक्तिसिंह कहें छे क
दंबगिरि नामा पर्वत छें॥ एपिण श्री सिद्धाचलजीनुं टुंक छें। अ
तित चोवीसीइं बिजा तीर्थंकर निर्वाण नामा भगवान॥ ते
हना गणधर। कदंबरिषी एहवें नामें तेहनें भगवानें इम
कह्युं जे तमनें इहांथीं सिधपद छें ते वात सांभलिनें। कदंबरि
षीपोतानापरिवारसहित। श्री सिद्धाचल ऊपरें। अणसण करी
कर्मक्षयकरी मोक्ष पाम्या। तदाकालथी। एपर्वतनुं नाम। क
दंबगिरि थयुं ७। वलि आगलि चाल्या। तिहां एक टुंक आव्यो।
तिवारें सक्तिसिंहनें वलि पूछ्युं भरतें। आ कुण पर्वत छें। तिवारें
सक्तिसिंह कहें। एतालाध्वजनामें गिरि। ए पर्वतें। बाहुबलिजी
मोक्ष पाम्या छें। तिहां भरतें। बाहुबलिजीनो प्रसाद करायो
तथा कालथी। बाहुबलटुंक केवराणो॥ नमो तित्थस
स्स॥ ८॥ वलि आगलि चाल्या। एहवें एक पर्वत समुदि
तिहां दीठो॥ तिहां भरतराजा पूर्वें त्रिर्रारि बंधें रषकसाथवाग
याता। तिहां मलेछराजाइं रोगमुक्या तिवारे। मनुष्य घणा मरव
लागा। एहवें अवसरें कोइक चारणमुनि तिहां आव्या। ते मुनि
इं पूछ्युं जे आवडा मनुष्य संग्राम विनाकिम मरें छें। तिवारें भर
तराजाइं कह्युं। हे स्वामि काइं खबर पडती नथी। तिवारें मु
नी कहें। हे भरतराजा म्लेछनें राजाइं रोगमुक्या छें। ते का
रणें। आ नदिना पाणी ना सपरसथकी रोग जासें। ए सत्यं कह
नें चारणमुनि गया। ते सांभलिनें। ते नदीनां पाणी थी सर्वन
ह्या॥ सर्व सैन्य निरोगी थयो पिण आचिष्ठ तेच्यानें नदी। पीव
एक भरतराजानो ऽ६९ हाथी हतो ते तिहां कालप्राप्ति थ
यो। तिहां भरतराजाइं॥ हस्तिनागपुर गाम वसावु॥ तिहां
श्री ऋषभदेवनो प्रसाद करायो। तदाकालें हस्तिकल्प नामें ति

थप्रवर्त्युः ॥ नमो ॥ नथ ठ्यस्य ॥ ॥ ॥ तिहांथी गीरीनार पवन्त।
आव्या। तिहांश्रीनेमनाथनां। त्रिण कल्याणक छें। उधारकर्यो
तिहांश्रीनेमीश्वरजीनोप्रसादकराव्यो। तिवारे श्रीगीरनार
तिर्थप्रवर्त्युं॥ त्यारदिसें त्यारपर्चतछें। तेउपरें त्यारप्रसादक
राव्या। तिहांथीबरफ। नामांपर्वतदेषाइछें। तेबरफपर्वत
नेंविषें। बरफनामा राक्षस रहेछें। तेसंघनें। तथाप्रजाउप
रें उपद्रवघणोकरेंछें। तेकोइनें दस्य आवतो नथी। ते वातसां
भलीभरतरीतराजाइं॥ रुषेणनामापोतानो॥ सेनानीमो
कल्यो॥ तेसेनानी। बरफराक्षनेंजितिनें। समकिसिदनेंपगें
लगाड्यो। भरतराजाइं बरफनें उपदेसदेइनेंसमकितपमा
ड्युं। तिहां भरतराजाइं। प्रभुजीनोप्रसादकराव्यो॥ तिहांबरफ
गिरीएहवेंनामें तिर्थप्रवर्त्युं॥ २०॥ तिहांबरफराक्षसनें। सोर
ठदेसनो अधिष्टायककथाप्यो। तिहांथीभरतराजाआबु ठेइ
आव्या। तिहांपरमेश्वरनोप्रसादकराव्यो। तिहांथीसंमतसीष
रें आव्या। तीहांपरमेश्वरनापरसादकराव्या। इम अनेकभर
तराजाइं। तिर्थथापना कीधी। प्रथमउधार भरतराजानो॥ न
मो सिधचलनमोनम॥ २॥ एश्रीसिद्धाचलवर्त्तमानछें वी
सिइं श्रीऋषभनोपुत्र द्रवणजी तेहनाबेपुत्र द्राविड वारिष
ल्ल तेबिहुंभाईराज्यनें अर्थे कलेसकरताथकाचोमासुं आ
व्युं तिवारें संग्राममां दसकोडि माणसक्षयथयुं तेहवेंसरदरी
तुआवी। तिहांगंगातिरें तापसनाउपवन छें तापसगुरुनें
पगेंलागवागया। तापसनामुषथी। वाणी सांभलि। प्रति
बोधपामी बेभाइ तापस। दसकोडिसंघातें थया। तेवननें
वीषें। वारणमुनी आवीसमोसर्या॥ तिहां [illegible] रणमुनिन
मुषथा। श्रीसिद्धाचलजीनुं। माहतमसांभली। वारणमुः
नीनामुखथकी। श्रीसिद्धाचलजीनो महातम सांभलि। वा
रणमुनिसघातें। श्रीसिद्धाचलजीइं आव्या। आवतां
मार्गमां घणाहंस एकतलावनेंकाठें एकठाथया छें। तेम
ध्येएकवृधहंस मक्षिकइसंद छें तेतीहांरह्यो छें। बिजासर्वम
नुषनोपगरवो सांभलिनें उडिगयां तेवृधहंस छेलि अव
स्ताइं आव्यो। तेहमें भनिइंपाणिपाउं। तिहांथी हंसनेंसा
थेलीधो। तेहंसनेंसिद्धाचलजीउपरें। अणसणकराव्युं। ते
अणसण आराधीने आठमेंदेवलोकेंदेवताथयो। तिहां
थी अवधिज्ञानेंजोउं। श्रीसिधाचलजीनोउपगारजाणी श्री
सिधाचलजीनेंवोप्रसादकराव्यो। तदाकालथीहंसावतार। ए
हवनामें तिर्थप्रवर्त्युं। तेसीधाचलजीनोमहातमदेषी। वारण

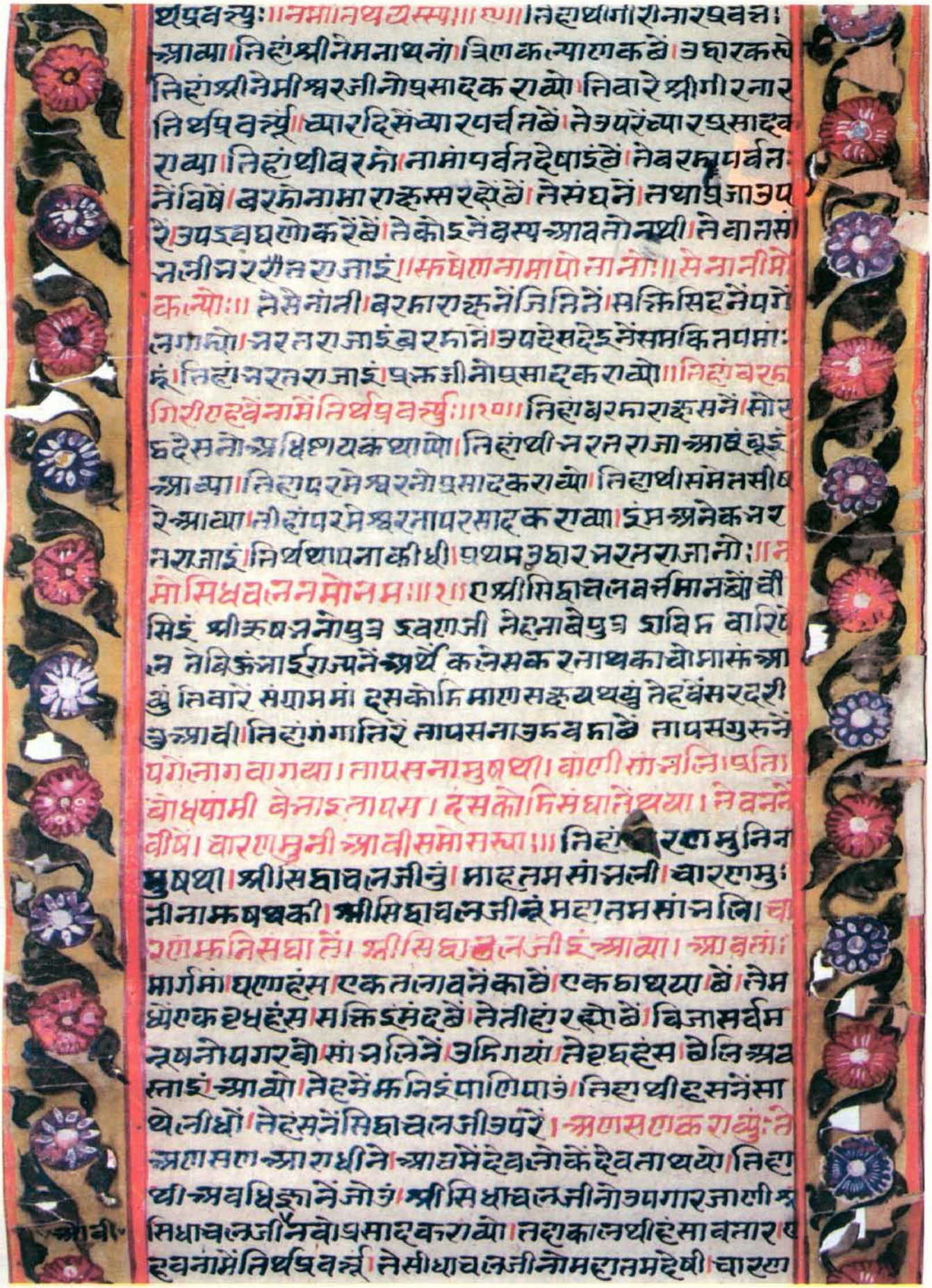

मूल पाठ

श्री ऋषभदेवजी नमोनमः। श्री शारदायै नमः। श्री पुंडरिक गणधराय नमः।

श्री विमलाचल तिर्थने विषें अतिते काले अनंताअनंत जे भव्य जीव ते आठ कर्म क्षय करी निरावर्ण रत्नत्रै जे केवलज्ञाल (न), केवलदर्शन क्षायक समकित बिजा पण अनेक गुण प्रगट करीने श्रीसिद्धादी पर्वत फरसीनें श्री सिद्धपद अनंत जिवे पाम्यां छे, पामे छैं अने वलि पामस्ये। अव्याबाध सुख प्रतें पिण हवणां तो वर्तमान चोवीसीमां श्री ऋषभदेव स्वामिइं उपगार जाणिनें भव्यजीवोंने श्रीसिद्धाचलजीनो ओलखाण कराव्युं छे। श्री ऋषभदेव स्वामि असरण सरण, भवभयहरण, भव्यजीवों ने तारवा पोत समान छे, अज्ञान रूपी त(ति) मर टालवानें अर्थे अर्क समान, भव रूप अटीवि पार उतार्वानें सार्थ समान, कर्मरोग टालवानें धनंतर वैद्य समान, कषाय रुप टालवानें पुष्फरावर्त्त मेघ समान, प्रथवी पावन करवा भव्य जिव रूप कमल विकस्वर करतां, भव्य जीवोंने धर्मवाणी प्रकास करता ग्रामे एकरायं, नगरे पंचरायं, विहार करतां चोरासी गणधर, चोरासी हजार मूनिराज, समथ चतुर्विध संघ परिवार सहित श्री विमलाचल पर्वते समोसरया।

तिवारें च्यरनिकायना देवता चोसट्ठि इंद्र सर्व भेला मलि श्री ऋषभदेव स्वामिइं धर्मदेशनाने विषे श्री विमलाचल पर्वतनूं माहातम स्वरूपें प्ररूपुं। ते श्री सिद्धाचलजीनुं माहातम ते घणा जीव भवे सांभलीने परमानंद पामतां, परमेश्वरजीनूं बहुमान करतां, पोतानी आतमानी कार्य सिद्धिनुं स्वरूप पुछतां घणा असंख्य जीव परमेस्वरजीना मुखा कम(ल)नी नि वाणी सांभली, जे तुमारां आत्मानी कार्यनिपत्ति श्री सिद्धचल तीर्थ उपरे छे, ते वांणि सांभलिने अनंता भव्य जीव सरीर उपरेथी मुर्च्छा उतारीने, संसारथी विमुख थई, च्यार अर्हर छांडि अणसण करी, सकल कर्म क्षय करी अजरामर श्रुखनें वरता हवा ।1।

वलि श्री ए सीधाचल पर्वतने विषें अतित कालें श्री केवलज्ञानानि वाणी प्रमुख चोविस अरिहा परमेस्वर प्रगट कहे ।2।

श्री सिद्धाचलजी नामा तिर्थने विषे वर्तमानकाले श्री ऋषभदेव भगवान् श्री सिद्धाचलें पध्यार्‌या। तिंहा श्रीवीतरागें सिद्धाचल पर्वतनूं माहात्तम प्रसस्त विशेष वर्णवुं, ते सांभलिने श्री पुडरिकजीइं पूछु, श्री ऋषभदेवे कह्युं, ''हे पुंडरीक गणधर! तुमारा आत्मानी कार्यनी सिधी आ क्षेत्रने विषे छइ।'' तिवारें पुडरीक गणधरें परमेश्वरना मुखथी वाणी सांभली एहवी श्री परमेश्वरजी ने पुछूं, तारे श्री सिद्धाचलजीनुं माहात्म सवा लाख वर्णव्युं। तिवारे श्रीभगवंतने पुछीने, श्री पुंडरीकजीइं पांच कोडि मुनि संघाते अनशन करी, एक मासनी संलेखणा करी, सकल कर्म क्षय करी, चैत्री पुनिमना दिवसनें विषइ श्री ऋषभदेवना तीर्थनइं विषे मोक्षे गया। तदा कालथी श्री सिद्धाचलजीनुं नाम पुडरीकतीर्थ एहवुं विख्यात थयुं ।3।

ए श्री सिद्धाचलनो महिमा मोटो जाणीने श्री भरत चक्रवर्तिः संघ काढिने श्री सिद्धाचलजीइं आव्या। श्री सिद्धाचलजी उपर चढतां अनंत चौवीसी ना प्रथम केवलज्ञानी नामे परमेश्वरजीनी पादुका अने कुंड ते जरा जिण देखीने भरतचक्रीइं इंद्रे महाराज ने पुछु, ''जे पादुका अने कुंड जिर्ण किम छे?'' तिवारें सौधर्म इंद्रे कहुं, ''जेण अतित चोवीसी थई गई, श्री केवलज्ञानिः नामा तिर्थंकर थई गया, तेहना पगलां अने भरत राजानो कुंड छे। ए घणा कालथीः जराजिरण थई गया छेः।'' इंद्रना मुखथी एहवुं साभलिः कुंडनुं नाम भरत थयुं।

1. मूल पाठ में 1 से 3 नम्बर दिये गये हैं। बाद में मूलपाठ में नम्बर 7 से 11 दिये हैं। नम्बर 4 से 6 मूल पाठ में उपलब्ध नहीं हैं।

तिहांथी वलि आगलिं चाल्या। श्री सिद्धाचलजी उपरे चडि उद्धार कराव्यो। नावो प्रसाद श्री ऋषभ तातजीनो कराव्यो। इंद्रमाला पेंहरी श्री श्रीपुंडरिक गणधरनी थापना करी। रायण हेठलें श्री ऋषभजीनी पादुका थापि प्रदक्षणा करीनें बिजी पण सर्व जथोचित करणी करी। तिवार पछी श्री गिरनार तिर्थे जावाना अभिप्राय भरत राजाना थया। एहवें नमी–वनमी विद्याधर मुनि भरत पासे आवीने इंम कहुं, ''जे अमने मोक्ष पद श्री सिद्धाचलजी उपरे कह्युं छे।'' तिवारें भरतें ते मुनिने कह्युं, ''जे आत्मानी कार्यसिद्धी थाईं तिम करो।'' तिवारें ते बिहुं राजंद्र मुनिइं बे मासनी संलेखणा करीः फागुण श्रुदि दसमने दिवसे बे कोडि मुनिराज संघाते सिधवधु वर्त्या।

वलि भरतराजा सेत्रुंजी नदीइं नाह्यां। ते नदिने कांठे च्यार दीसें च्यार दिसें च्यार वन छे। पूर्व दिसे सुर्यवन ।1। पछिम दिसें चंद्रवन ।2। दक्षण दिसें लक्षमि वन ।3। उत्तर दिसें कुसुम वन ।4। ए च्यारें वननी सोभा जोतां आगले च्याल्या।

तिहां आगलें जातां एक जटाधारि तापस बेठों छे। तेहने भरतराजाइं पूछुं, ''जे तुमें इहां किम बेठों छे?'' तिवारें तापस कहे, ''मुझनें श्री ऋषभदेवजीइं कह्युं छे, जे श्री चंद्रप्रभु आड्डमा तिर्थेसर ने वारें आ तिर्थे तुं सिध पद वरिस। ते माटे हुं इहां बेठो छुं।'' ते वात सांभलिने ते थानकें श्री चंद्रपभुजीनुं प्रसाद भरतराजाइं कराव्योः।

वलि आगलि चाल्या। एहवें नमी–वनमी विद्याधरनी चोसट्ठ पुत्रीओ चर्चा आदे देइनें अणसण करी मोक्ष गई। केतला एक आचार्य इंम कहे छे, जे देवंगना थईं तेहनी तिहां थापना भरत राजाइं करी। तिवारें चर्चगिरि एहवूं नाम थयुं।

वलि आगलि चाल्या। जातां–जातां मार्गने विषे एक गिरिनो सिखर आव्यो। तिवारे सक्तिसिंह एहवें नामे तापस छें । ते भरतराजानो भत्रिजो छें। ते सक्तिसिंह ने भरत राजाइं पूछूं, ''जे आ सिखर ते सुं छे?'' तिवारें सक्तिसिंह कहे छे, ''कदंबगिरि नामा पर्वत छे। ए पिण श्री सिद्धाचलजी टुंक छे। अतित चोवीसीइं बिजा तिर्थंकर निर्वाण नामा भगवान, तेहना गणधर कदंबरिषी एहवें नामें तेहुंने भगवानें इंम कह्युं, ''जे तुमनें इणे खेत्रें सिधपद छें, ते वात सांभलिने कदंबरिषी पोताना परिवार सहित श्री सिधाचल उपरें अणसण करी, कर्म क्षय करी मोक्ष वरया। तदा कालथी ए पर्वतनूं नाम कदंबगिरि थयुं।7।

वलि आगलिं चाल्या तिहां एक टुंक आव्यो, तिवारें सक्तिसिंह ने वलि पुछुं भरते, ''आ कुण पर्वत छे?'' तिवारें सक्तिसिंह कहे, ''ए तलाध्वज नामें गिरि। ए पर्वते बाहुबलिजि मोक्ष पधार्‌या छे, तिहां भरते बाहुबलिजी नो प्रसाद कराव्यो, तथा कालथी बाहुबलटुंक केवराणो। नमो तिथसयस्य।8।

वलि आगलि चाल्या, एहवें एक पर्वत सतुदि तिहां दीठो। तिहां भरतराजा पूर्वे उत्तरि षंटखंड साधवा गया ता। तिहां मलेछ राजाइं रोग मुक्या तिवारें मनूष्य घणा मरवा लागा। एहवें अवसरें कोइक चारण मुनि तिहां आव्या। ते मुनीइं पुछुं, ''जे आवडा मनुष्य संग्राम विना किम मरें छें?'' तिवारें भरतराजाइं कह्युं, ''हे स्वामि! कांई खबर पडती नथी।'' तिवारे मुनी कहे, ''हे भरतराजान्! मलेछनें राजाइं रोग मुक्यो छे, ते कारणें। आ नदिना पाणीना सपरस थकी रोग जासें।'' एतलूं कहीने चारण मुनि गया। ते सांमलिने ते नदीना पाणीथी सर्व नाह्या। सर्व सैन्य निरोगि थयो, पिण भावी प्रतें चाले नहीं।

पीण एक भरत राजानो इष्ट हाथी हतो, ते तिहां काल प्राप्ति थयो। तिंहा भरतराजाइं हस्तिनागपुर गाम वसावुं। तिहां श्री ऋषभदेवनो प्रसाद कराव्यो। तदा कालें हस्तिकल्प नामें तिर्थ प्रवत्रयुं। नमोतिथयस्सय।9।

तिहांथी गीरीनारे प्रर्वतें आव्या। तिहां श्रीनेमनाथना त्रिण कल्याणक छे, उद्धार करयो। तिहां श्रीनेमीश्वरजीनो प्रसाद कराव्यो। तिवारें श्री गीरनार तिर्थ प्रवत्त्युं। च्यार दिसे च्यार पर्वत छे। ते उपरें च्यार प्रसाद कराव्यां। तिहांथी बरडो नामां पर्वत देखाई छे। ते बरडा पर्वतने विषे बरडा नामा राक्षस्स रहें छें । ते संघनें तथा प्रजा उपरें उपद्रव घणो करें छें । तें कोईनें वस्य आवतो नथी। ते वात सांभली भरतराजाइं सुषेण नामा पोतानोः सेनानी मोकल्योः । ते सेनानी बरडा राक्ष(स) नें जितिनें सक्तिसिंहनें पगें लगाड्यो। भरतराजाइं बरडानें उपदेस देइनें समकित पमाडूं। तिहां भरतराजाइं प्रभुजीनो प्रसाद कराव्यो। तिहां बरडागिरी एहवें नामें तिर्थ प्रर्वत्त्युंः ।10।

तिहां बरडा राक्षसनें सोरठ देसनो अधिष्टायक थाप्यो। तिहांथी भरतराजा आंसूछूं आव्या, तिहां परमेश्वरनो प्रसाद कराव्यो। तिहांथी समेतसीखरें आव्या। तिहां परमेश्वरना परसाद कराव्या। इंम अनेक भरतराजाइं तिर्थ थापना कीधी। प्रथम उधार भरत राजानोः। नमो सिधचल नमोनमः ।11।

ए श्री सिद्धाचल वर्तमान चोवीसिंइं श्रीऋषभनो पुत्र द्रवणजी, तेहना बे पुत्र द्राविड–वारिषेल। ते बिहुं भाई राज्यनें अर्थे कलेस करतां थका, चोमासुं आव्युं, तिवारें संग्राममां दस कोडि माणस क्षय थयुं। तेहवें सरद रीतु आवी, तिहां गंगातिरे तापसना उडवडा छे, तापस गुरुनें पगे लागवा गया। तापसना मुखथी वाणी सांभलि, प्रतिबोध पामी बे भाई तापस दस कोडि संघातें थया, ते वननें वीषें चारण मुनि आवी समोसर्यां। तिहां चारण मुनिना मुखथी श्री सिद्धाचलजीनुं माहतम सांभलि चारण मुनिना मुख थकी श्रीसिधाचलजीनुं माहतम सांभलि चारणमुनि संघातें श्री सिद्धाचलजीइं आव्या। आवतां मार्गमां घणा हंस एक तलावनें कांठे एकट्ठा थया छे। ते मध्ये एक वृध हंस सक्तिइं मंद छे, ते तीहां रह्यो छे। बिजा सर्व मनूषनो पगरवो सांभलिने उडि गया। ते वृद्ध हंस छेलि अवस्ताइं आव्यो। तेहने मुनिइं पाणि पाउं। तिहांथी हंसने साथे लीधो। ते हंसने सिद्धाचलजी उपरें अणसण कराव्युं। ते अणसण आराधीने आठमें देवलोकें देवता थयो। तिहांथी अवधिज्ञाने जोउं। श्री सिधाचलजीनो उपगार जाणी, श्री सिधाजलजी आवी नवो प्रसाद कराव्यो। तदाकालथी हंसावतार एहव नामें तिर्थ प्रवर्त्तू। ते सिधाचलजीनो महात्तम देखी, चारण मुनि पासे चारित्र लेई सिद्धाचलजी उपरें अणसण करी कार्त्तिक श्रूदि पूनिम दिनें दसकोडि संघाते श्रीसिद्धाचलजी उपरें मोक्ष गया। नमोस्तुः श्री सिद्धांचलः, विमलाचलाय नमः। इति श्री ऋषभदेवनो वर्णव संपुर्णः। श्रीः । श्रीः ।

हिन्दी अनुवाद

1. ऋषभदेवजी

श्री ऋषभदेवजी को नमस्कार। श्री सरस्वती–शारदा देवी को नमस्कार।

श्री पुंडरीक गणधर को नमस्कार।

श्री विमलाचल तीर्थ पर अतीत काल में अनंत भव्य जीवों ने आठ कर्मों का क्षय करके निरावरण रत्नत्रयी–केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलचारित्र इत्यादि अनेक गुण प्रकाशित करते हुए सिद्ध पद प्राप्त किया था, करते हैं और करते रहेंगे।

वर्तमान चौबीसी में ऋषभदेव भगवान ने अव्याबाध सुख के लिए भव्य जीवों को सिद्धाचलजी का माहात्म्य प्ररूपित किया है। ऋषभदेवजी अशरण के लिए शरण–आश्रय स्वरूप, भव–भय हर्ता, भव्य जीवों को संसार समुद्र से तारने के लिए नाव के समान हैं। अज्ञान रूपी तिमिर को मिटाने के लिए सूर्य के समान है, भवरूप अटवी पार कराने के लिए सार्थ समान है। कर्म रूप रोग का निवारण करने धनवंतरी वैद्य समान है। कषाय रूप अग्नि शांत करने पुष्करावर्त्त मेघ समान है।

भगवान ऋषभदेव पृथ्वी को पवित्र करने के लिए, जीव रूप कमल को सुविकसित करते हुए, भव्य जीवों को धर्मवाणी से प्रकाशित करते हुए अपने 84 गणधर, 84 हजार मुनिराज और समस्त चतुर्विध संघ परिवार के साथ सिद्धाचलजी पर पधारे उस समय चार निकाय के देव, चौसठ इन्द्र सब एकत्रित हुए। श्री ऋषभदेव स्वामी ने अपनी देशना में सिद्धाचलजी का माहात्म्य प्ररूपित किया। उस श्री सिद्धाचल के माहात्म्य को सुनकर उन अनेक जीवों ने परमानंद को प्राप्त किया। परमेश्वर का बहुमान किया तथा अपनी भव्य जीवों को परम पद प्रदान करने वाला स्थान शत्रुंजय है। आत्मा की कार्यसिद्धि का स्वरूप पूछा। वे भव्य जीव ऋषभदेवजी की वाणी से प्रतिबोधित होकर स्वयं शरीर से निर्मोही बनकर, संसार त्याग करके, चारों प्रकार के आहार त्याग–अनशन व्रत अंगीकार करके, सकल कर्म क्षय कर अजरामर–सुख–मोक्ष प्राप्त किया।

अनुक्रम में विचरण करते अतीत काल में श्रीऋषभदेव सिद्धाचल पधारें। प्रथम गणधर पुंडरीकजी ने प्रभु से सिद्धाचल की महिमा पूछी। प्रभु ने निर्देशित किया कि आपके आत्मा की सिद्धि यहां इसी स्थान पर है। पुंडरीक ने अपने अन्य पांच करोड़

मुनियों के साथ अनशन व्रत के साथ एक मास की संलेखना से अपने समग्र कर्मों का क्षय किया और चैत्रमास की पूर्णिमा के दिन मोक्ष प्राप्त किया, तभी से उसी स्थान ने पुंडरीकतीर्थ नाम अभिधारण किया।

भरत चक्रवर्ती ने चतुर्विध संघ के साथ सिद्धाचलजी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में केवलज्ञानी नामक परमेश्वरजी के पादुका और कुंड जीर्ण देखे। उन्होंने इंद्र महाराज को पादुका और कुंड के जीर्णत्व के बारे में पूछा। सौधर्म इन्द्र ने निराकरण करते हुए निर्देशित किया, ''यह अतीत चौबीसी के केवलज्ञानी नामक तीर्थंकर की पादुका और कुंड है, जिससे जीर्ण है।'' भरत चक्रवर्ती ने उसका पुनरोद्धार किया, तभी से यह कुंड भरतकुंड नाम से प्रचलित है।

अनुक्रम में वहां से प्रस्थान करते ऋषभदेवजी के नये मन्दिर का निर्माण करवाया और वहां पुंडरीक गणधरजी की स्थापना की। रायण (राजद) वृक्ष नीचे ऋषभदेवजी की पादुका का यथोचित विधि-विधान से स्थापन किया। वहां नमि-विनमि विद्याधर मुनियों ने भरत राजा से निवेदन किया कि ऋषभदेवजी ने हमें अपने आत्मोद्धार के लिये यहां रहने का आदेश दिया है, तभी राजा भरत ने भी अपनी स्वीकृति दे दी। दोनों राजेन्द्र मुनियों ने दो मास की संलेखना के बाद फाल्गुन सुदी दशम के दिन दो करोड़ मुनियों के साथ सिद्धपद-मोक्ष प्राप्त किया।

राजा भरत शत्रुंजय नदी पहुंचे। वहां विधिवत् स्नान किया। नदी की चारों दिशाओं में चार वन हैं। पूर्व दिशा में सूर्यवन, पश्चिम दिशा में चंद्रवन, दक्षिणा दिशा में लक्ष्मीवन और उत्तर दिशा में कुसुमवन। चारें वनों का सौन्दर्यपान करते हुए आगे एक तापस को अकेला देखा। भरतजी ने उससेह्न ''अकेला क्यों बैठा है?'' इस विषयक पूछा। तापस ने दर्शाया कि ऋषभदेवजी ने आदेश दिया है, ''आठवें तीर्थंकर चंद्रप्रभु के शासन में यहां से ही मैं सिद्ध पद प्राप्त करूंगा। इसलिए मैं यहां हूं।'' भरत राजा ने वहां चंद्रप्रभुजी के प्रासाद का निर्माण कार्य किया।

थोड़े आगे नमी-विनमी विद्याधर की कनक-चर्चा इत्यादि 64 पुत्रियों ने अनशन व्रत ग्रहण करके वहीं से मोक्ष प्राप्त किया है। अन्य मतानुसार वहां देवांगना हुई है। चक्रवर्ती भरत ने उनका स्थापना कार्य किया। तभी से यह स्थान चर्चगिरि नाम से प्रचलित है।

आगे चलकर गिरि शिखर पहुंचे। भरत नृप शक्तिसिंह तापस से मिले। नृप भरत ने शक्तिसिंह से शिखर विषयक पूछा। शक्तिसिंह ने दर्शाया कि अतीत काल के दूसरे निर्वाण नाम के तीर्थंकर के शिष्य कदंब ऋषि ने सपिरवार इसी स्थान से अपने समस्त कर्मों का क्षय करके सिद्धत्व प्राप्त किया है। तभी से यह शिखर 'कदंबगिरि' नाम से सुविख्यात है।

आगे चलकर एक टोक पहुंचे। शक्तिसिंह ने उसी का नाम तलाध्वज गिरि दर्शाया। मुनि बाहुबलीजी ने इसी स्थान से मोक्ष पद प्राप्त किया था, जिससे आज वह 'बाहुबल टोक' नाम से प्रचलित है।

वहां से उसी स्थान पहुंचे, जहां से चक्रवर्ती भरत उत्तरषट्खंड विजयी घोषित हुए थे। मलेच्छ नृप ने वहां रोग का उपद्रव फैलाया था, जिससे अनेक लोगों ने मृत्यु प्राप्त की थी। भरत राजा ने चारण मुनि से इस विषयक वार्ता की। चारण मुनि ने कहा कि, ''यह रोग मलेच्छों ने फैलाया है। मगर इस नदी के पानी के स्पर्श मात्र से यह सभी रोग दूर हो जायेंगे।'' इससे समग्र सैन्य और प्रजा उसी पानी से निरोगी-स्वस्थ हो गये। भरत राजा के एक हाथी ने वहां से काल प्राप्त किया तो भरत राजा ने वहां हस्तिनागपुर नामक गांव प्रस्थापित किया और उसी में ऋषभदेवजी के मंदिर का निर्माण कार्य किया, जिससे हस्तिकल्प तीर्थ नामक तीर्थ की स्थापना हुई।

अनुक्रम में गिरनार पर्वत पहुंचे। वहां नेमि जिन के तीन कल्याणक हैं। वहां नेमि जिन के प्रासाद का निर्माण कार्य करवाया। वहां चारों दिशाओं में चार पर्वत हैं। वहां भी चार मंदिर का निर्माण करवाया। वहां एक बरडा नामक पर्वत है। जो बरडा राक्षस का निवास स्थान है। वह राक्षस प्रजाजन, संघ को उपद्रव-अत्याचार से परेशान कर रहा था। किसी से अंकुशित नहीं हो रहा था। नृप भरत ने अपने सुषेण नामक सेनापति को भेजा। सुषेण ने बरडा को पराजित किया। भरत नृप ने उसे प्रतिबोधित करते हुए सम्यक्त्व प्राप्त करवाया। जिससे नृप भरत ने उसी स्थान को राक्षस की स्मृति में बरडागिरि नामकरण दे दिया। बरडा

को सोरठ देश के अधिष्ठायक यक्ष पद पर नियुक्त किया। अनुक्रम में विचरण करते हुए समेत शिखर पहुंचे। बीच में अनेक स्थानों पर जिनमंदिर, जिनबिम्ब की स्थापना की। उन्होंने अपने शासनकाल में अनेकविध तीर्थों की स्थापना की और पुराने तीर्थों का जीर्णोद्धार करवाया। इस तरह प्रथम जीर्णोद्धार चक्रवर्ती भरतजी का है।

वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवजी के एक पुत्र का नाम द्रवणजी था। उनके द्राविड और वारिषेल(ण) दो पुत्र थे। दोनों राज्य के लिए परस्पर क्लेश कर रहे थे। चातुर्मास के समय ही भीषण युद्ध हुआ। परस्पर दोनों भाइयों ने एक–दूसरे के सैन्य का विनाश किया और दस करोड़ मनुष्यों का क्षय हुआ। नजदीक में तापसों के आश्रम थे। दोनों भाई द्राविड और वारिषेल(ण) तापस वृंद के वंदनार्थ गये। वहां उन्होंने मुनियों से धर्मोपदेश सुना। उनका हृदय परिवर्तन हुआ। श्रावक के व्रत अंगीकार किये। तापसों से सिद्धाचलजी का माहात्म्य सुना। दोनों मुनियों के साथ सिद्धाचलजी पहुंचे। मार्ग में तालाब किनारे हंसों का झुण्ड देखा। उनमें एक वयोवृद्ध हंस था। अन्य हंस मनुष्य के पैरों की आहट से ही स्वरक्षार्थ दूर हो गये, मगर वृद्ध हंस चलने–उड़ने में अशक्त था। मुनि ने अपनी करुणा से उस वृद्ध हंस की सेवा की। उसे पानी पिलाया और अपने साथ सिद्धाचल ले गये। वहां उसे अनशनपूर्वक अंतिम आराधना करवाई, जिससे उसने आठवें देवलोक में स्थान प्राप्त किया। अवधिज्ञान से सिद्धाचलजी का ऋण–उपकार पहचाना। उसने वहां एक जिनमंदिर का निर्माण किया और वह तीर्थ हंसावतार नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दोनों भाइयों ने भी चारणमुनि से चारित्र ग्रहण किया। आमरणांत अनशन व्रत अंगीकार करके दस करोड़ मुनियों के साथ उन्होंने भी परम–पद मोक्ष प्राप्त किया।

श्री सिद्धाचल, विमलाचल को बारंबार प्रणाम।

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेवजी को भक्ति–भाव पूर्वक वंदन।

Transliteration

//O// śrīṚṣabhadevajī namo namaḥ // śrīŚāradāya namaḥ // śrīPuṇḍarika-gaṇadharāya namaḥ // śrīVimalācala-tīrtha namaḥ // śrīVimalācala-tīrtha neṃ viṣeṃ atita-kāleṃ anantā ananta je bhavya-jīva, te āṭha karma kṣaya karī, nirāvarṇa ratna-trai je kevala-jñāna, kevala-darśana, kṣāyaka samakitaḥ, bijā paṇa aneka-guṇa pragaṭa karīneṃ, śrīSiddhādrī-parvata pharasīneṃ śrīSiddha-pada anantā jive pāmyā cheṃ, pāme cheṃ ane vali pāmasyeṃ, avyābādha suṣa prateṃ piṇa havaṇāṃ to varttamāṃna covīsī māṃ śrīṚṣabhadeva-svāmiiṃ upagāra jāṇineṃ bhavya-jīvo neṃ/ śrīSiddhācalajī no olaṣāṇa karāvyuṃ cheṃ. śrīṚṣabhadeva-svāṃmiḥ asaraṇa saraṇa, bhava-bhaya-haraṇa, bhavya-jīvo neṃ tāravā pota-samāṃna cheṃ, ajñāna-rupī tamara ṭālavā neṃ arthe arka-samāṃna, bhava-rūpa-aṭaviḥ pāra utārvāneṃ sārtha-samāṃnaḥ, karma-roga ṭālavā ne Dhanantara-vaidya-samāṃna, kaṣāya-ruagniḥ ṭālavā neṃ puṣkarāvarta-megha-samāṃna, prathavī pāvana karavā bhavya-jiva-rupa-kamala-vikasvara karatā, bhavyā jīvo neṃ dharma-vāṇī prakāsa karatā //

grāme eka rāyaṃ, nagare paṃca rāyaṃḥ vihāra karatā corāsī gaṇadhara, corāsī hajāra mūṃni-rāja, samatha caturvidha-saṃgha parivāra-sahita śrīVimalācala-parvateṃ samosaryā. tivāre cyā(ra) nikāya nā devatāḥ, cosaṭṭhi indra sarva bhelā mali, śrīṚṣabhadeva-svāmiiṃ dharma-desanā neṃ viṣeṃ śrīVimalācala-parvata nūṃ māhātama-svarupeṃ prarupuṃ. te śrīSiddhācalajī nūṃ māhātama te ghaṇā jīva bhaveṃ sāṃbhalīne paramānanda pāṃmatā, parameśvarajī nūṃ bahu-māṃna karatā, potā nī ātamā nī kārya-siddhi nūṃ svarupa puchatā, ghaṇā asaṃkhya-jīva paramesvarajī nā muṣā-kamalī ni vāṇi sābhalī je "tumārāṃ ātmā nī kārya nipatti śrīSiddhācala tīrtha upareṃ cheṃ". te vāṃṇi sāmbhalineṃ anantā bhavya-jīva sarīra upare thī murcchā utārīneṃ saṃsāra thī vimuṣa thaī, cyāra (arhara =) āhāra chāḍiḥ, aṇasaṇa karī, sakala karma-kṣaya karī, ajarā-mara śuṣa neṃ varatā havā // 1//

vali śrī e Sīdhācala-parvata neṃ viṣeṃ atita kāleṃ śrīKevalajñānī-Ni(r)vāṇi- pramuṣa covisa arihā paramesvara pragaṭa kaheṃ // 2//

śrīSiddhācalajī nāma tīrtha neṃ viṣeṃ varttamāna-kāleṃ śrīṚṣabhadeva-bhagavāṃn śrīSiddhācaleṃ padhyāryā. tihāṃ śrīVītarāgeṃ Siddhācala-parvata nūṃ māhātama prasasta viseṣa varṇavuṃ. te sāṃbhalineṃ śrīPuḍarīka-rājīiṃ pūchuṃ. śrīṚṣabhadeveṃ kahyuṃ "he Puṇḍarīka-gaṇadhara, tumārā ātma nī kārya nīḥ sidhī ā kṣetra neṃ viṣeṃ chaiṃ". tivāreṃ Puḍarīka-gaṇadhareṃ para(me)śvara nā muṣa thī vāṃṇī sāṃbhalī ehavī śrīparameśvarajī neṃ puchūṃ. tāre śrīSiddhācalajī nūṃ māhātma savā lāṣa varṇavyuṃ. tivāreṃ śrībhagavanta ne puchīneṃ śrīPuṇḍarīkajīiṃ pāṃca koḍi muni saṃghāteṃ aṇasaṇa karī, eka māsa nī saṃleṣaṇā karī sakala karma-kṣaya karī, Caitrī-punima nā divasa neṃ viṣaiṃ śrīṚṣabhadeva nā tīrtha naiṃ viṣeṃ mokṣeṃ gayā. tadā kāla thī śrīSiddhācalajī nuṃ nāma Puḍarīka-tīrtha ehavūṃ viṣyāta thayuṃ // 3//[1]

e śrīSīddhācala no mahimā moṭo jāṃṇīne śrīBharata-cakravarttiḥ saṃgha kāḍhineṃ śrīSidhācalajīiṃ āvyā. śrīSidhācalajī upara caḍhatāṃ ana(ṃ)ta cauvīsī nā prathama Kevalajñānī nāmeṃ parameśvarajī nī pādukā aneṃ kuṇḍa te jarā-jīrṇa dekhīneṃ Bharata-cakrīiṃ indreṃ mahārāja neṃ puchuṃ "je pādukā aneṃ kuṇḍa jirṇa kima cheṃ?". tivāreṃ Saudharma-indreṃ kahuṃ "jeṇa atita covīsī thaī gaī śrīKevalajñāniḥ nāma tīrthaṃkara thaī gayā, teha nā pagalāṃ aneṃ Bharata-rājā no kuṇḍa cheṃ, e ghaṇā kāla thīḥ jarā-jiraṇa thaī gayā cheṃḥ". indra nā muṣa thī ehavūṃ sābhali kuṇḍa nu nāṃma Bharata thayuṃ.

tihā thī vali āgali cālyā. śrīSidhācalajī upareṃ caḍi uddhāra karāvyo. nāvo prasāda śrīṚṣabhatātajī no karāvyo. indra-māla peharī śrīśrīPuṇḍarīka-gaṇadhara nī thāpanā karī. Rāyaṇa heṭhaleṃ śrīṚṣabhajī nī pādukā thāpi. pradakṣaṇā karīneṃ bijī paṇa sarva jathocita karaṇī karīḥ. tivāra pachī śrīGiranāra tīrtheṃ jāvā nā abhiprāya Bharata-rājā nā thayā.

ehave Namī-Vanamī vidyādhara muṃni Bharatta pāseṃ āvīneṃ iṃma kahuṃḥ je "ama neṃ mokṣapada śrīSidhācalajī upareṃ kahyuṃ cheṃ". tivāre Bharateṃ te muniṃ neṃ kahyuṃ je "ātmā nī kāryasiddhī thāiṃ tima karo". tivāreṃ te bihuṃ rājaṃdra-muṃniiṃ beṃ māsa nī saṃleṣaṇā karī. Phāguṇa śudi dasama neṃ divaseṃ be koḍi muni-rāja saṃghāteṃ siddha-vadhū varyā.

vali Bharata-rājā Setruṃjī nadīiṃ nāhyāṃ. te nadi neṃ kāṇṭheṃ cyāra dīseṃ. <ca>cyāra diseṃ 4 vana cheṃ:

1) pūrva-diseṃ Sūrya-vana,
2) pachima-diseṃ Candra-vana,
3) dakṣaṇa-dise Lakṣami-vana,
4) uttara-diseṃ Kusuma-vana.

e cyāre vana nī sobhā jotā āgaleṃ cyālyā.

tihā āgaleṃ jāṃtā eka jaṭā-dhāri tāpaseṃ beṃṭho cheṃ. teha neṃ Bharata-rājāiṃ pūchuṃ je "tumeṃ ihāṃ kima beṭhā cho?". tivāre tāpasa kaheṃ "mujha neṃ śrīṚṣabhadevajīiṃ kahyu cheṃ je 'śrīCandraprabhu āṭṭhamā tirthesara neṃ vāreṃ, ā tirthe tuṃ sidha-pada varisā'. te māṭeṃ huṃ ihāṃ beṭho chuṃ". te vāta sāṃbhaline te thānakeṃ śrīCandraprabhujī nuṃ prasāda Bharata-rājāiṃ karāvyo.

vali āgaliṃ cālyāḥ. ehave Namī-Vanamī vidyā<ra>dhara nī cosaṭṭha putrīo Carcā āde deineṃ aṇasaṇa karī, mokṣa gaī. ketalāeka ācārya ima kaheṃ cheṃ je "devaṃganā thaī teha nī tihāṃ thāpanā Bharata-rājāiṃ karī". tivāreṃ Carcagiri ehavūṃ nāma thayu.

vali āgaliṃ cālyā. jāṃtāṃ 2 mārga neṃ viṣeṃ eka giri no siṣara āvyo. tivāreṃ Saktisiha ehave nāmeṃ tāpasa cheṃ. te Bharata-rājā no bhatrijo cheṃ. te Saktisīha neṃ Bharata-rājāiṃ pūchūṃ je "ā siṣara te suṃ cheṃ?". tivāreṃ Saktisiha kaheṃ che "Kadambagiri nāmā parvata cheṃ. e piṇa śrīSiddhācalajī ṭuṃka cheṃ. atita covīsīiṃ bijā tirthaṃkara Nirvāṃṇa nāmā bhagavāṃnaḥ. teha nā

1 Up to this point paragraphs have been marked in the document by numbers going from 1 to 3 at the end. They are again marked from 7 to 10, but numbers 4 to 6 are missing.

gaṇadhara Kadaṃba-riṣī ehaveṃ nāmeṃ, tehu neṃ bhagavāṃneṃ iṃma kahyuṃ je 'tuma neṃ iṃneṃ khetreṃ siddha-pada cheṃ". te vāta sāṃbhalineṃ Kadamba-riṣī potā nā parivāra-sahita śrīSiddhācala upare aṇasaṇa karī, karma-kṣaya karī, mokṣa varyā. tadā kāla thī e parvata nu nāma /Kadamba-giri thayuṃ / 7/

vali āgaliṃ cālyā. tihāṃ eka ṭuṃka āvyo. tivāreṃ Saktisiha neṃ vali puṃchuṃ Bharateṃ "ā kuṃṇa parvata cheṃ?" tivāreṃ Saktisiha kaheṃ "e Ta(= ā?)lādhvaja nāmeṃ giri. e parvateṃ Bāhubalijī mokṣa padhāryā cheṃ". tihāṃ Bharateṃ Bāhubalijī no prasāda karāvyo. tathā kāla thī Bāhubala ṭuṃka kevarāṇoḥ // namo tithasayasyaḥ //8//

vali āgali cālyā. ehaveṃ eka parvata Satudi tihāṃ dīṭhoḥ. tihāṃ Bharata-rājā purve uttari ṣaṇḍa-ṣaṇḍa sādhavā gayātā. tihāṃ malecha rājāiṃ roga mukyā. tivāre manūṣya ghaṇā maravā lāgā. ehaveṃ avasareṃ koika cāraṇa-muṃni tihāṃ āvyā. te munīiṃ pūchuṃ je "āvaḍā manūṣya saṃgrāma vinā kima mare cheṃ"?. tivāreṃ Bharata-rājāiṃ kahyuṃ "he svāmi, kāiṃ ṣabara paḍatī nathī". tivāreṃ muṃnī kaheṃ "he Bharata-rājān, malecha neṃ rājāiṃ roga mukyo cheṃ. te kāraṇeḥ. ā nadi nā pāṃṇī nā saparasa thakī roga jāseṃ". etalūṃ kahīneṃ cāraṇa-muṃni gayā. te sāṃ(bha)line te nadī nāṃ pāṇī thī sarva nāhyā. sarva sainya nirogi thayo. piṇa bhāvī prateṃ cāleṃ nahīṃ.

pīṇa eka Bharata-rājā no iṣṭa hāthī hato. te tihāṃ kāla-prāpti thayo. tihāṃ Bharata-rājāiṃḥ Hastināgapura-gāma vasāvuṃḥ. tihāṃ śrīṚṣabhadeva no prasāda karāvyo. tadā kāleṃ Hastikalpa nāmeṃ tirtha pravarttyuṃ // namo tithayassa //9//

tihāṃ thī Gīrīnāre pravartte āvyā. tihāṃ śrīNemanātha nāṃ triṇa kalyāṇaka cheṃ. uddhāra karyo. tihāṃ śrīNemīśvarajī no prasāda karāvyo. tivāre śrīGīranāra-tirtha pravarttyūṃ. cyāra diseṃ cyāra parvata cheṃ. te upareṃ cyāra prasāda (k)arāvyā. tihāṃ thī Varaḍo nāmāṃ parvata deṣāiṃ cheṃ. te Baraḍā parvata neṃ viṣeṃ Baraḍo nāmā rākṣassa rahyeṃ cheṃ. te saṃgha neṃ tathā prajā upareṃ upadrava ghaṇo kareṃ cheṃ. te koineṃ vasya āvato nathī. te vāta sāṃbhalī Bharata-rājāiṃ Suṣeṇa nāmā potā noḥ senānī mokalyoḥ. te seṃnāṃnī Varaḍā-rākṣa(sa) neṃ jitineṃ Saktisiha neṃ pageṃ lagāḍyo. Bharata-rājāiṃ Baraḍā neṃ upadesa deineṃ ṣamakita pamāḍuṃ. tihāṃ Bharata-rājāiṃ prabhujī no prasāda karāvyo. tihāṃ Baraḍagirī ehaveṃ nāmeṃ tirtha pravarttyuṃḥ // 10//

tihāṃ Varaḍā rākṣasa neṃ Soraṭṭha-desa no adhiṣṭāyaka thāpyo. tihāṃ thī Bharata-rājā Āsuchuiṃ āvyā. tihā parameśvara no prasāda karāvyo. tihā thī Sameta-sīṣare āvyā. tihāṃ parameśvara nā parasāda karāvyā. iṃma aneka Bharata-rājāiṃ tirtha thāpanā kīdhī. prathama uddhāra Bharata-rājā noḥ

// namo Sidhacala namo namaḥ //1//

e śrīSiddhācala varttamāna-coṃvīsiiṃ śrīṚṣabha no putra Dravaṇajī, tehanā be putra Drāviḍa Vāriṣela (= Vāriṣena). te bihuṃ bhāiṃ rājya neṃ artheṃ kalesa karatā thakā comāsuṃ āvyuṃ. tivāreṃ saṃgrāma māṃ dasa koḍi māṇasa kṣaya thayuṃ. tehaveṃ sarada-rītu āvī. tihāṃ Gaṃgā-tireṃ tāpasa nā uḍavaḍā cheṃ. tāpasa guru neṃ pageṃ lāgavā gayā. tāpasa nā muṣa thī vāṃṇī sāṃbhali, pratibodha pāmī, be bhāi tāpasa dasa koḍi saṃghāteṃ thayā. te vana neṃ vīṣeṃ cāraṇa-munī āvī samosaryāḥ. tihāṃ cāraṇa-muni nā muṣa thī śrīSiddhācalajī nuṃ māhatama sāṃbhalī cāraṇa-munī nā muṣa thakī śrīSiddhācalajī nuṃ māhātama sāṃbhālī cāraṇa-muni-saṃghāteṃ śrīSiddhācalajīiṃ āvyā. āvatāṃ mārga māṃ ghaṇā haṃsa eka talāva neṃ kāṇṭheṃ ekaṭṭhā thayā cheṃ. te madhye eka vṛdha haṃsa saktii maṃda cheṃ. te tīhāṃ rahyo che. bijā sarva manūṣa no paga-ravo sāṃbhalineṃ uḍi gayāṃ. te vṛddha haṃsa cheli avastāiṃ āvyo. teha neṃ muniiṃ pāṇi pāuṃ. tihāṃ thī ha(ṃ)sa ne sāthe līdhoṃ. te ha(ṃ)sa neṃ Siddhācalajī upareṃ aṇasaṇa karāvyuṃ. te aṇasaṇa ārādhīne āṭhameṃ deva-lokeṃ devatā thayo. tihāṃ thī avadhi-jñāneṃ jouṃ. śrīSidhācalajī no upagāra jāṇī śrīSidhācalajī āvī navo prasāda karāvyo. tadā kāla thī Haṃsāvatāra ehava nāmeṃ tirtha pravarttūṃ. te Sīdhācalajī no mahātama deṣī cāraṇa-muni pāseṃ cāritra leī, Siddhācalajī upareṃ aṇasaṇa karī, Kārttika śūdi punima-dineṃ dasa koḍi saṃghāteṃ śrīSiddhācalajī upareṃ mokṣa gayāḥ // namo stuḥ // śrīSīddhācala // Vimalācalāya namaḥ / iti śrīṚṣabhadeva no varṇava saṃpurṇaṃ // śrīḥ // śrī.

२.

श्री अजितनाथजी

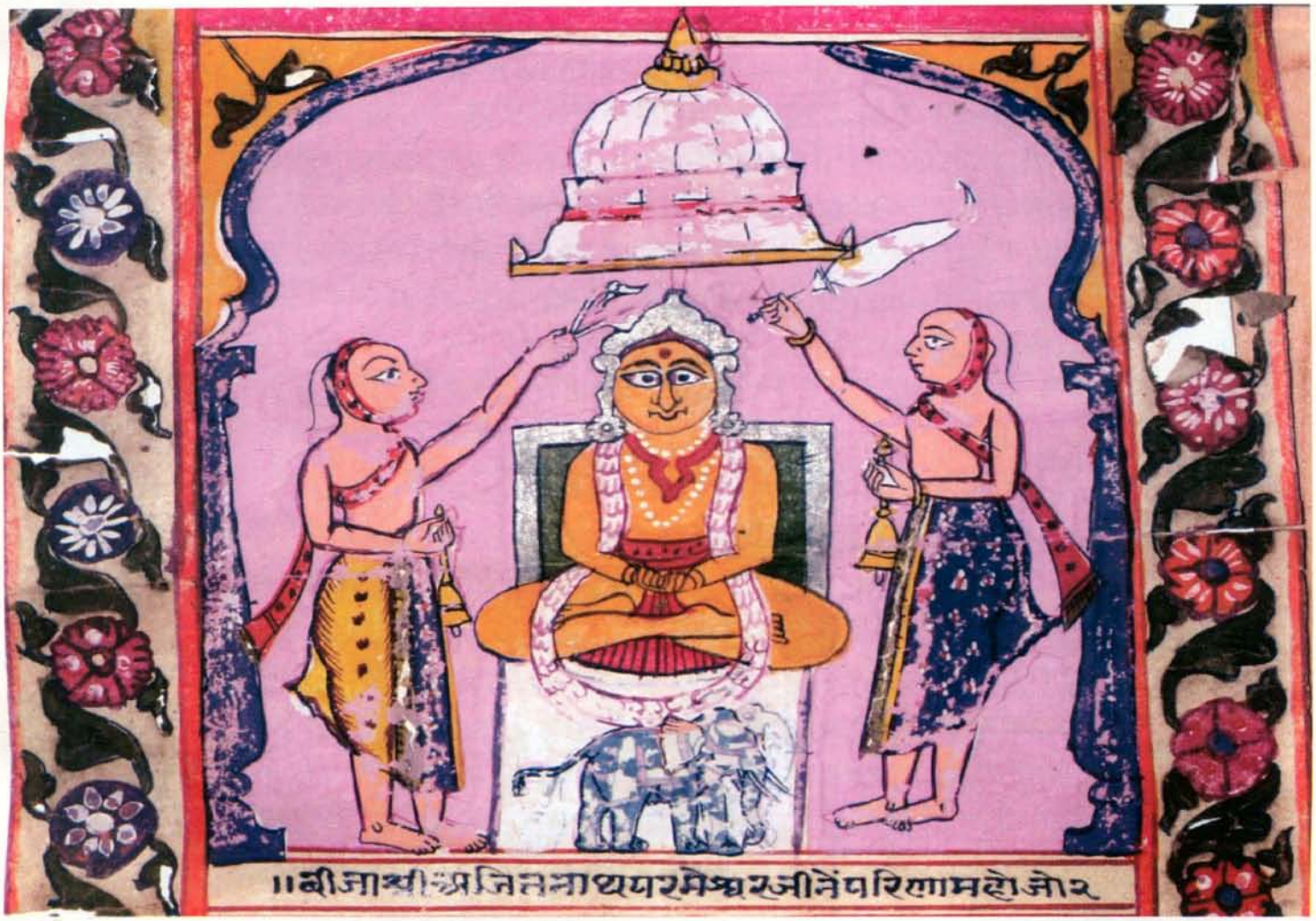

2. Śrī Ajitanāthajī

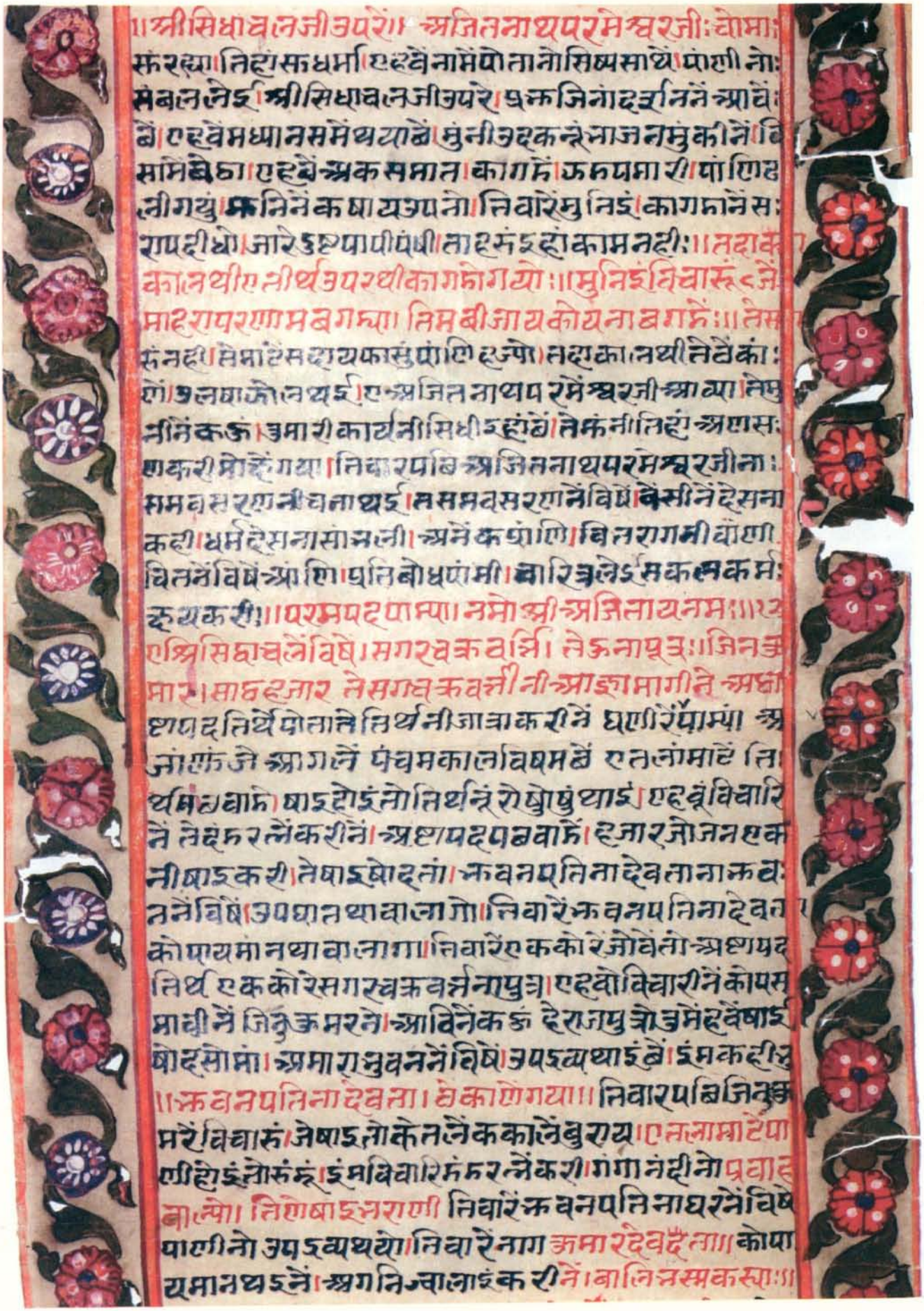

॥श्रीसिधाचलजीउपरें॥ अजितनाथपरमेश्वरजी: चोमा:
सु रह्या। तिहां सुधर्मा। एहवें नामें पोताना सिष्यसाथें। पांणी नो:
संबल लेइ। श्रीसिधाचलजीउपरे। श्रीजिनदर्शननें आवें:
छें। एहवें मध्यानसमें थयाछें। मुनी उदकनें भाजनमुकीनें। वि
सामि छे हा। एहवें अकसमात। कागडे। ऊडपमारी। पांणिढ
ली गयुं। मुनिनें कषायउपनो। तिवारेंमुनिइं। कागडानें स:
रापदीधो। जारे इहपापीपंखी। ताहरुं इहांकाम नहीं:॥ तदाक
कालथी ए तीर्थउपरथी कागडा गयो॥ मुनिइंविचारुं जे
माहरा परणाम बगड्या। तिम बीजा यकोयना बगडे:॥ तेस
रुं नहीं। सेमाटें सदायफासु पांणी हज्यो। तदाकाल थी तिहां कां:
णी उलबा जो नथइ। ए अजितनाथपरमेंश्वरजी आव्या। तेमु
नीनें कह्यु। अमारी कार्यनी सिधी इहांछें। ते कनी तिहां अणस:
ण करी मोक्षें गया। तिवारपछि अजितनाथपरमेश्वरजीना:
समवसरणनी रचना थइ। ते समवसरणनें विषें बेसीनें देसना
कही। धर्मदेसनासांभली। अनेक प्राणी। वितरागनी वांणी
चित्तनें विषें आणी। प्रतिबोधपांमी। चारित्र लेइ सकलकर्म:
क्षयकरी॥ परमपदपाम्या। नमो श्रीअजितायनम:॥ २
ए श्रीसिधाचलनें विषे। सगरचक्रवर्त्ति। तेहना पुत्र:॥ जिनकु
मार। साठहजार तेसगरचक्रवर्त्तीनी आज्ञामागीनें अष्टा
पद तिर्थें पोताना तिर्थनी जात्रा करीनें घणो रंग पाम्या। अ
नें वली जे आगलें पंचमकाल विषमछें एतलां माटें ति:
र्थनो विणास थाइ होइं तो तिर्थनें रोषो(?) थाइ। एहवूं विचारि
नें ते दंडरत्न करीनें। अष्टापदपर्वतनें। हजारजोजन ए क
नी षाइ करी। ते षाइ षोदतां। भवनपतिना देवतानां भ:
वननें विषें। उपघात थावा लागो। तिवारें भवनपतिना देवता
कोपायमांन थावालागा। तिवारें एककोरें जोवें तो अष्टापद
तिर्थ एककोरें सगरचक्रवर्त्तनापुत्र। एहवो विचारीनें कोपस
माधीनें जिनकुमरनें। आविनें कह्यु देराजपुत्रो तुमें एवे षाइ
षोदसो मां। अमारा भुवननें विषें उपद्रव थाइ छें। इम कहीनें
॥भवनपतिना देवता। ठेकाणे गया॥ तिवारपछि जिनकु
मरें विचारुं जे षाइ तो के तलेंक कालें बुराय। एतला माटें पा
णी होइं तो रुडुं। इम विचारि दंडरत्न करी। गंगा नदीनो प्रवाह
वाल्यो। तिणे षाइ भराणी तिवारें भवनपतिना घरनें विषे
पाणीनो उपद्रव थयो। तिवारें नागकुमारदेव देवता॥ कोपा
यमान थइनें। अगनिज्वाला इं करीनें। बालि भस्म कर्या:॥

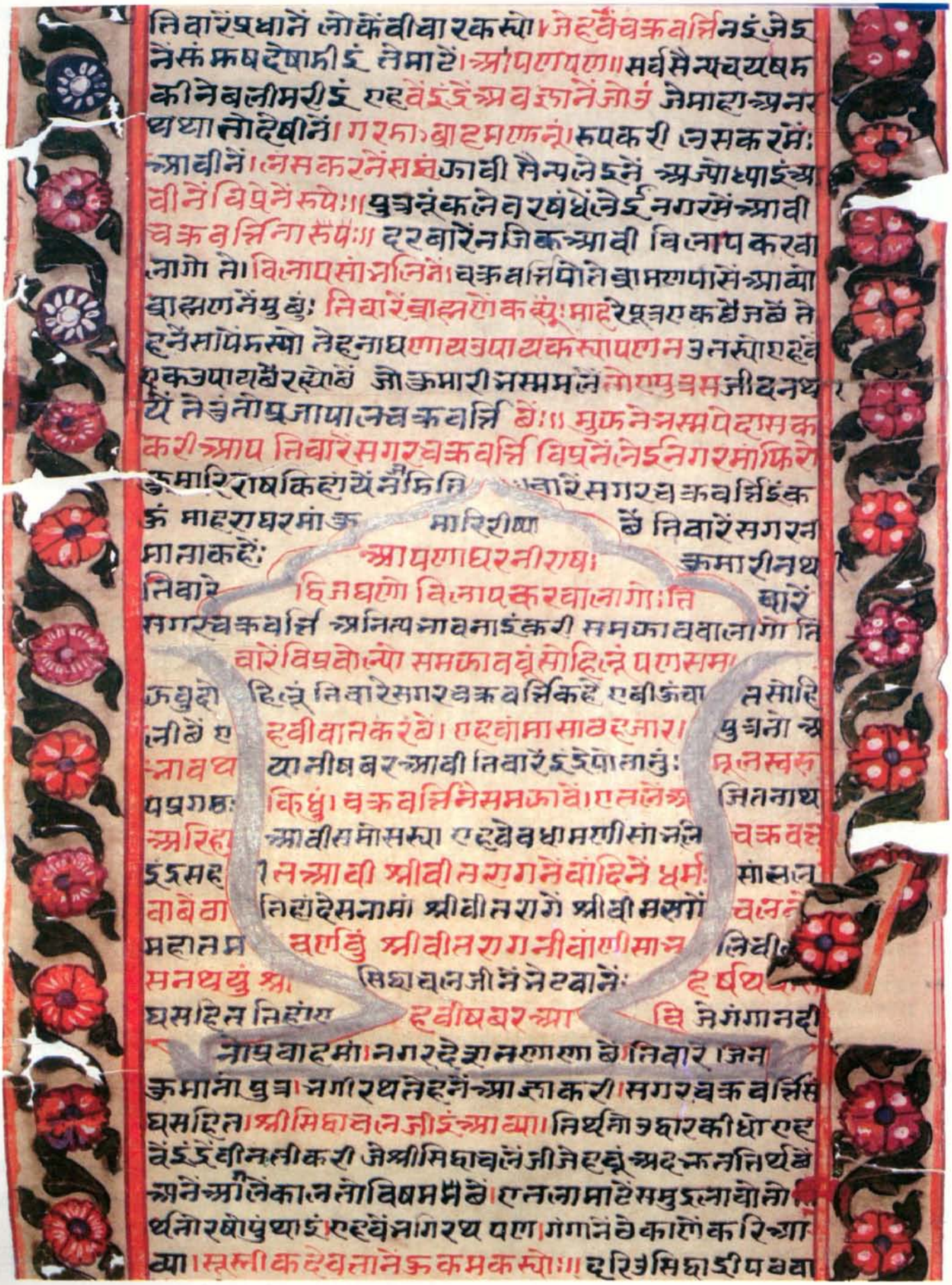

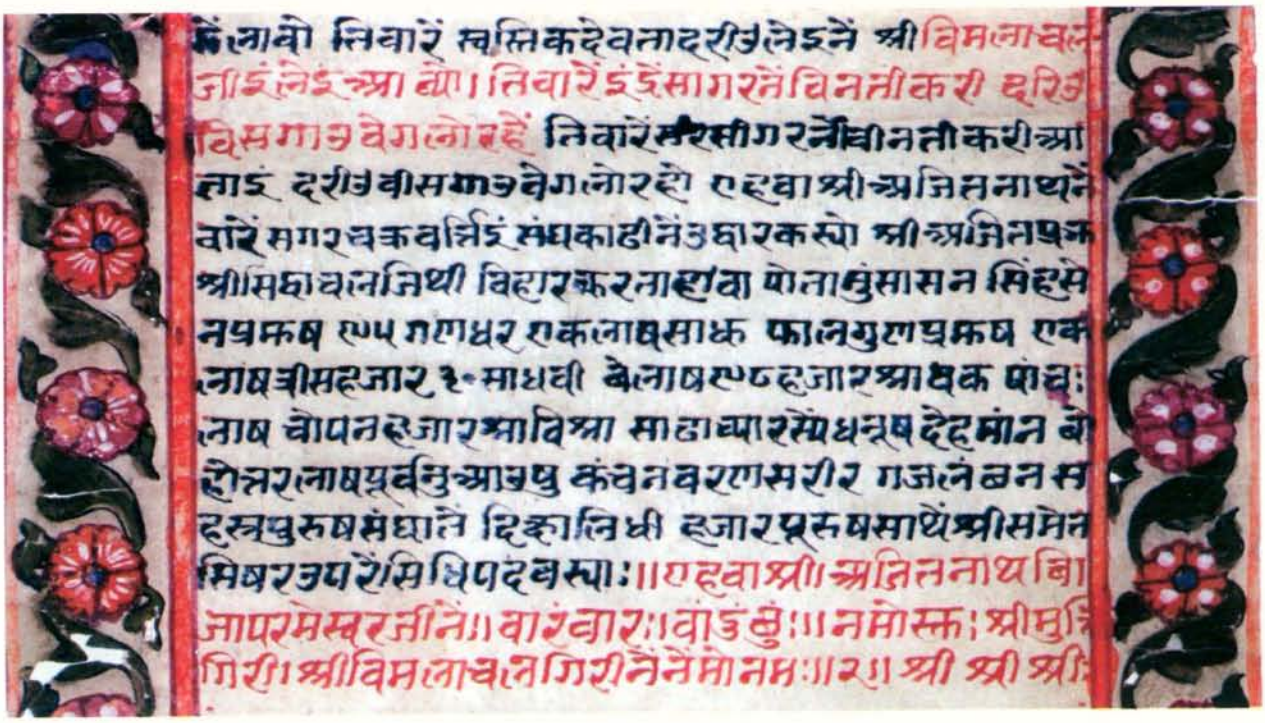

मूल पाठ

बीजा श्री अजितनाथ परमेश्वरजी नें परिणाम होजो।2

श्री सिद्धाचलजी उपरें अजितनाथ परमेश्वरजीः चोमासुं रह्या। तिहां सुधर्मा एहवें नामें पोतानो शिष्य साथें पाणीनोः संबल लेई श्री सिद्धाचलजी उपरें प्रभुजिनां दर्शननें आवे छे। एहवें मध्यान समें थया छे। मुनि उदकनूं भाजन मुकीने विसामें बेट्ठा। एहवें अकसमात कागडें झडप मारी, पांणि ढली गयुं। मुनिने कषाय उपनो। तिवारें मुनिइं कागडाने सराप दीधो, ''जा रे! दुष्ट पापी पंखी ताहरुं इहां काम नहीं!'' तदाकालथी ए तीर्थ उपरथी कागडो गयोः । मुनिइं विचारु, जे माहरा परणाम बगड्या, तिम बीजाय कोयना बगडे, ते सारु नहीं, ते माटे सदाय फासुं पांणि हज्यो। तदा कालथी ते ठेकाणें उलखझोल थई। ए अजितनाथ परमेश्वरजी आव्या। ते मुनीनें कह्युं, ''तुमारी कार्यनी सिधी इहां छें । ते मुंनी तिहां अणसण करी मोक्षें गया। तिवार पछि अजितनाथ परमेश्वरजीना समवसरणनी रचना थईं । ते समवसरणनें विषें बेंसीनें देसना कही। धर्मदेसना सांभली अनेंक प्रांणि वितरागनी वाणी चितनें विषे आंणि प्रतिबोध पांमी चारित्र लेई सकल कर्मः क्षय करी परम पद पाम्यां। नमो श्री अजिताय नमः।12।

ए श्रि सिद्धाचलें ने विषें सगर चक्रवर्त्ति तेहुना पूत्र जिनकुमार साठ हजार ते सगर चक्रवर्तीनी आज्ञा मांगीने अष्टापद तिर्थे पोता। ते तिर्थनी जात्रा करीने घणी रें[2] पाम्यां। अ (ने) जाणुं जे आगले पंचम काल विषम छे, एतलां माटे तिर्थ पछवाडे खाइं होइं तो तिर्थनूं रोखोपुं थाई, एहवुं विचारीनें ते दंडरत्नें करीने अष्टापद पछवाडें हजार जोजन एकनी खाइ करी।

ते खाइ खोदतां भुवनपतिना देवताना भुवननें विषें उपघात थावा लागो। तिवारें भुवनपतिना देवता कोपायमांन थावा लागा। तिवारें एक कोरे जोवें तो अष्टापद तिर्थ, एक कोरे सगर चक्रवर्त्तिना पुत्र, एहवो विचारीनें कोप समावीनें जिनुकुमरने

2. यहां पूर्ति के लिए निशानी की गई है मगर मूल पाठ में कहीं पर भी वह पूर्ति नहीं पाई जाती है जिससे यहां पूर्ति नहीं की गई है।

आविनें कहुं, ''हे राजपुत्रो! तुमें हवें खाई खोदसो मां। अमारा भुवननें विषें उपद्रव्य थाइं छें।'' इंम कहीने भुवनपतिना देवतां ठेकाणें गया।

तिवार पछि जिनकुमारे विचारुं, ''जे खाइं तो केतलेंक कालें पुराय, एतला माटे पाणी होय तो रुंडूं'' इंम विचारि डंडरत्नें करी गंगानदीनो प्रवाह वाल्यो। तिणें खाइं भराणी। तिवारें भुवनपतिना घरनें विषें पाणीनो उपद्रव्य थयो। तिवारें नागकुमार देवता कोपायमान थइनें अगनिज्वालाइं करीनें बालि भस्म करयाः। तिवारें प्रधानें लोकें वीचार कस्यो, 'जें हवे चक्रवर्ति नइं जेइनें सुं मुख देखाडीइं ते माटे आपण पण सर्व सैन्य चय खडकीने बली मरीइं।'

एहवें इंद्रें अव(ध) ज्ञानें जोउं, जे माहा अनरथ थातो देखीनें गरडा ब्राह्मणनूं रुप करी लसकरमैंः आवीनें लसकरनें समझावी, सैन्य लेईनें अज्योध्याइं आवीने, विप्रेनें रुपेः, पुत्रनूं कलेवर खंधे लेईं नगरमें आवी चक्रवर्तीना दरबारे नजिक आवी विलाप करवा लागो। ते विलाप सांभलिनें चक्रवर्ति पोते ब्रामण पासे आव्यो। ब्राह्मणनें पुछुं। तिवारें ब्राह्मणें कह्युं, ''माहरे पुत्र ए कंधे ज छे, तेहने सापें डस्यो। तेहना घणाय उपाय करया, पण न उतरयो। एहवें एक उपाय छे (ले) रह्यो छे। जो कुमारी भस्म मले तो ए पुत्र सजीवन थायें। ते तुं तो प्रजापाल चक्रवर्त्ति छे। मुझने भस्म पेदास करी आप।'' तिवारें सगर चक्रवर्त्ति विप्रने लेई नगरमां फिरो। कुमारि राख किहांये न जडि। तिवारें सगर चक्रवर्त्तिइं कह्युं, ''माहरा घरमां कुमारी रीख्या छे।'' तिवारें सगरनी माता कहे, ''आपणा घरनी राख कुमारी नथी।'' तिवारें द्विज घणो विलापं करवा लागो। तिवारें सगर चक्रवर्त्ति अनित्य भावनाइं करी समझाववा लागो। तिवारें विप्र बोल्यो, ''समझाववूं सोहिलूं पण समंझवुं दोहिलूं।'' तिवारें सगर चक्रवर्ति कहे, ''ए बीहुं वात सोहिली छे।'' एहवी वात करं छे एहवामां साठ हजार पुत्रनो अभाव थयानी खबर आवी। तिवारें इंद्रे पोतानुं मूल स्वरूप प्रगटः किधु। चक्रवर्त्तिने समझावें। एतलें अजितनाथ अरिहा आवी समोसरया। एहवें वधामणी सांभलि चक्रवर्त्त इंद्र सहीत आवी श्री वीतरागनें वांदिने धर्म सांभलवा बेठा। तिहा देसनामां श्री वीतरागें श्रीवीमलाचलनो महात्तम वर्णवुं। श्री वीतरागनी वाणी साभलि चीत्त प्रसन थयुं। श्री सिद्धाचलजी ने भेटवाने हर्ष थयो संघ सहित।

तिहां एहवी खबर आवि, जे गंगा नदीना प्रवाहमां नगर–देश भणाणा छे, तिवारें जिनकुमा(र)नो पुत्र, भगीरथ तेहनें आज्ञा करी, सगर चक्रवर्ति संघ सहित श्री सिद्धाचलजीइं आव्या। तिर्थनो उद्धार कीधो। एहवें इंद्रें वीनती करी जे श्री सिद्धाचलेंजी जेहवूं अद्भुत तिर्थ छें अनें आगलें काल तो विषम छें, एतला माटें समुद्र लावो तो तीर्थनुं रखोपुं थाइं। एहवें भगिरथ पण गंगाने ठेकाणे करि आव्यां। सूस्तीक देवताने हुकम करयोः। दरिओ सिधाद्री पछवाडे लावो। तिवारें स्वस्तिक देवता दरीओ लेइनें श्री विमलाचलजीइं लेई आव्यो। तिवारें इंद्रे सागरनें विनती करी। दरिओ पिस गाउ वेगलो रहें। तिवारें सागरने वीनती करी। आज्ञाइं दरिओ विस गाउ वेगलो रहो।

एहवां श्री अजितनाथनें वांरे। सगर चक्रवर्तिइं संघ काढीने उधार करयो।

श्री अजित प्रभु श्री सिद्धाचलजथी विहार करतां हवा, पोतानुं सासन सिंहसेन प्रमुख 95 गणधर, एक लाख साधु, फालगुण प्रमुख एक लाख त्रीस हजार 30 साध्वी, बे लाख 98 हजार श्रावक, पांच लाख चोपन हजार श्राविश्रा(का)। साढा च्यारस्यें धनूष देहमांन, बोहोत्तर लाख पूर्वनुं आउखु, कंचन वरण शरीर, गज लंछन, सहस्र पुरुष संघाते दिक्षा लिधी।

हजार पुरुष साथे श्री समेतसिखर उपरें सिद्धिपद वरयां।

एहवा श्री अजितनाथ बिजा परमेस्वरजीनेः बारं बार वांदु छुंः। नमोस्तुः श्री मुक्तिगिरि। श्री विमलाचल गिरीनें नमोनमः।2। श्री श्री श्रीः

हिन्दी अनुवाद

2. अजितनाथजी

अजितनाथ प्रभुजी ने सिद्धाचल पर चातुर्मास किया। उनके सुधर्मा नामक शिष्य अपने शिष्य के साथ पानी का कलश लेकर प्रभु दर्शनार्थ आ रहे थे। दोपहर का समय होने से विश्राम के लिए बैठे तो वह पानी का कलश पास में रखा हुआ था। यकायक एक कौआ उस पर झपका और पानी गिर गया। मुनि क्रोधित हो गये। उन्होंने सोचा, ''इस कौअे के कारण जिस तरह मेरे मानसिक भाव बिगड़े, ऐसा भविष्य में किसी और के साथ ऐसा न हो इसलिए उन्होंने कौए को शाप देते हुए कहा, ''हे दुष्ट काक! यहाँ तेरी कोई आवश्यकता नहीं है।'' इसी दिन से तीर्थ पर कौआ नहीं दिखाई दे रहा है। मुनि ने अन्य सर्व मुनि को प्रासुक जल प्राप्त हो, ऐसा निर्माण किया, तभी से वहाँ उलखझोल हुई है।

मुनि ने अजितनाथजी के दर्शन किये। उन्होंने मुनि से कहा, ''तुम्हारे कार्य की सिद्धि इस स्थल पर है इसलिए मुनि ने वहाँ आमरणांत अनशन व्रत ग्रहण किया और मोक्ष प्राप्त किया।''

देवताओं ने अजितनाथ प्रभुजी के समसरण की रचना की। भगवान ने धर्मदेशना कही। अनेक भव्य प्राणियों ने प्रतिबोधित होकर चारित्रधर्म, अनशन व्रत ग्रहण कर सिद्धपद-मोक्षपद प्राप्त किया। अजितनाथ प्रभुजी को नमस्कार।1।

सगर चक्रवर्ती के जिनकुमार प्रमुख 60,000 पुत्रों ने अष्टापद पर्वत की रक्षार्थ खाई बनाने का सोचा। पिता सगर चक्रवर्ती की आज्ञा लेकर अष्टापद पर्वत की ओर चले। वहां खाई बनाना आरम्भ किया। मिट्टी निकालने से भुवनपति देवता के भुवन--नागलोक में मिट्टी की वृष्टि होने लगी तो भुवनपति के देवता क्रोधायमान हो गये। फिर भी अष्टापद पर्वत और चक्रवर्ती के पुत्रों को लक्ष्य में लेकर, क्रोध को अंकुशित करते नम्र स्वर में खाई बनाने से इन्कार करते हुए कहा, ''हे राजपुत्र ! यहाँ खाई मत करो, हमारे भुवन में उत्पात्त-उपद्रव हो रहा है।''

जिनकुमार ने खाई का कार्य बंद करवाया, मगर सोचा, ''यह खाई को भरने में बहुत समय लगेगा अगर उसमें पानी भरा जाए तो अच्छा रहेगा।'' ऐसा सोचकर उन्होंने दंडरत्न से पानी का प्रवाह उस ओर लिया और उधर पानी भर गया। उसी समय भुवनपति के घर में पानी का उपद्रव होने लगा। अब नागकुमार देवता क्रोधित हो उठे और अपनी अग्निजाल से उन्होंने 60,000 सगरपुत्रों को जलाकर भस्मीभूत कर दिया।

प्रधान आदि सैन्य भय से कांपने लगे कि अब चक्रवर्ती को कैसे अपना मुंह दिखाएंगे? अच्छा होगा कि हम समग्र सैन्य इधर ही अग्निस्नान कर लें। इंद्र ने अपने अवधिज्ञान से देखा कि यह तो महा अनर्थ हो रहा है। वे वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप बनाकर लश्कर समक्ष उपस्थित हुए। सैनिकों के साथ वे अयोध्या पहुंचे। सगर चक्रवर्ती के महल के सामने कंधे पर अपने पुत्र का मृतदेह लेकर खड़े हुए विलाप करने लगे। चक्रवर्ती ने ब्राह्मण से विलाप का कारण पूछा तो उसने बताया कि, ''मेरा इकलौता पुत्र सर्प दंश से मर रहा है, उसे बचाने का अनेक प्रयत्न किये मगर एक भी सफल नहीं रहा। अगर मुझे कुमारी भस्म [जिसके घर में कभी मृत्यु नहीं हुई है, उनसे घर की भस्म (राख)] मिल जाये तो वह बच सकता है। आप तो प्रजापालक चक्रवर्ती है तो ऐसी भस्म मुझे उपलब्ध करवा दें।'' चक्रवर्ती विप्र को लेकर समग्र नगर में घूमे मगर कहीं से भी कुमारी भस्म प्राप्त नहीं हुई। उन्होंने अपने घर में कुमारी भस्म के लिए पूछा तब उनकी माता ने कहा, ''अपने घर की भस्म भी कुमारी नहीं है।'' वृद्ध ब्राह्मण जोर से विलाप करने लगा, तब चक्रवर्ती उनको अनित्य भावना-संसार प्रणाली से समझाने-आश्वास्त करने लगे, तब ब्राह्मण ने कहा, ''अन्य को समझाना तो सरल है, मगर स्वयं समझना कठिन-दुर्लभ है।'' चक्रवर्ती ने कहा, ''ऐसा नहीं है। दोनों सरल-स्वाभाविक हैं।'' ऐसा वार्तालाप चल रहा था तब ही चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्रों के अभाव-मृत्यु के समाचार आ पहुंचे। इन्द्र ने अपना असली स्वरूप बनाया। चक्रवर्ती को समझाने लगा, उसी समय अजितनाथजी वहाँ पधारे। इन्द्र सहित चक्रवर्ती प्रभु दर्शनार्थ उपस्थित हुए। प्रभु ने अपनी देशना में श्रीविमलाचल की महिमा बतलाई। सब प्रसन्न हुए। सिद्धाचलजी

दर्शनार्थ पहुंचने को उत्सुक हुए। सगर चक्रवर्ती ने संघ सहित सिद्धाचलजी की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में संदेशा प्राप्त हुआ कि गंगा नदी के प्रवाह से नगर–देश इत्यादि में पानी भर गया है। चक्रवर्ती ने जान्हुका पुत्र भागीरथ को गंगा का प्रवाह अवरोध करने की आज्ञा दी और वे संघ सहित सिद्धाचलजी पहुंचे। सगर चक्रवर्ती ने जीर्णोद्धार करवाया।

इन्द्र ने चक्रवर्ती को विनती करते हुए कहा, ''सिद्धाचलजी अनुपम, अद्‌भुत तीर्थ है। आने वाला काल अतिविषम है, इससे तीर्थ की रक्षा के लिए समुद्र लाया जाए तो अच्छा होगा। चक्रवर्ती की आज्ञानुसार भगीरथ गंगा को लेकर आया। उन्होंने स्वस्तिक देवता को समुद्र पीछे लाने के लिए आदेश दिया। स्वस्तिक देवता समुद्र लेकर सिद्धाचलजी पहुंचे। इन्द्र ने सगर चक्रवर्ती को समुद्र बीस गाऊ दूर रखने की सूचना दी।''

सगर–चक्रवर्ती ने संघसहित तीर्थयात्रा प्रभुपूजन–भक्ति किया। तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया।

सिद्धाचलजी से विहार करते हुए प्रभु ने अपने परिवार के साथ प्रस्थान किया। आपने 1,000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी। आपके परिवार में सिंहसेन प्रमुख 95 गणधर, 1,00,000 साधु, फाल्गुण प्रमुख 1,30,000 साध्वियाँ, 2,98,000 श्रावक और 5,54,000 श्राविकाएँ थीं।

आपका देहमान 450 धनुष था। आपका वर्ण कंचन (सुवर्ण) है। आपका लाञ्छन गज है। आपकी कुल आयु बहत्तर लाख पूर्व थी।

श्री मुक्तिगिरि, श्री विमलाचलजी गिरि को भावपूर्वक वंदन।

दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

[*Under the illustration:* //bījā śrīAjitanātha-parameśvarajī neṃ pariṇāma hojo 2}

//śrīSidhācalajī upareṃ // Ajitanātha-parameśvarajīḥ comāsu rahyā. tihāṃ Sudharma ehaveṃ nāmeṃ potā no siṣya sātheṃ pāṃṇī no saṃbala leī śrīSidhācalajī upare prabhuji nāṃ darśana neṃ āveṃ cheṃ. ehave madhyāna saṃmeṃ thayā cheṃ. muṃnī udaka nūṃ bhājana muṃkīneṃ visāmeṃ beṭṭhā. ehaveṃ akasamāta kāgaḍeṃ jhaḍapa mārī. pāṃṇi ḍhalī gayuṃ. muni neṃ kaṣāya upano. tivāreṃ muniiṃ kāgaḍā neṃ sarāpa dīdho "jā re duṣṭa pāpī paṃṣī, tāharu ihāṃ kāma nahīḥ." tadā <ka>kāla thī e tīrtha upara thī kāgaḍo gayoḥ. muniiṃ vicārūṃ jeṃ "māharā paraṇāma bagaḍyā. tima bījā ya koyaṃ nā bagaḍeṃḥ. te sāru nahī. te māṭeṃ sadā ya phāsuṃ pāṃṇi hajyo". tadā kāla thī te ṭheṃkāṃṇeṃ Ulaṣājhola thaī. e Ajitanātha-parameṃśvarajī āvyā. te munī niṃ kahyu "tumārī kārya nī sidhī ihāṃ cheṃ". te munī tihāṃ aṇasaṇa karī mokṣeṃ gayā. tivāra pachi Ajitanātha-parameśvarajī nā samavasaraṇa nī (ra)canā thaī. te samavasaraṇa neṃ viṣeṃ besīneṃ desanā kahī. dharma-desanā sāṃbhalī. aneṃka prāṃṇi vitarāga nī vāṃṇī cita ne viṣeṃ āṃṇi, pratibodha pāṃmī, cāritra lei, sakala karma-kṣaya karī, parama-pada pāmyā / namo śrīAjitāya namaḥ // 12

e śrīSiddhācaleṃ viṣe Sagaracakravartti. tehu nā pūtraḥ Jinakumara sāṭṭha hajāra. te Saga(ra)cakravarttī nī ājñā māgīneṃ Aṣṭāpada-tirtheṃ potā te tīrtha nī jātrā karīneṃ ghaṇī reṃ[2] pāmyāṃ a(ne) jāṇuṃ je "āgaleṃ paṃcama kāla viṣama cheṃ. etalāṃ māṭeṃ tirtha pachavāḍe ṣāi hoiṃ, to tirtha nūṃ roṣo(p)uṃ thāiṃ". ehavūṃ vicārineṃ te da(ṇ)ḍa-ratneṃ karīneṃ Aṣṭāpada pachavāḍeṃ hajāra jojana eka ni ṣāi karī.

2 At this point a sign indicating that an addition has to be taken from the margin is visible, but the addition itself is missing.

te ṣāi ṣodatāṃ Bhavanapati nā devatā nā bhuvana neṃ viṣeṃ upaghāta thāvā lāgo. tivāreṃ Bhuvanapati nā devata kopāyamāna thāvā lāgā. tivāreṃ eka koreṃ joveṃ to Aṣṭāpada-tirtha eka kore Sagaracakravartta nā putra ehavo vicārīneṃ kopa samāvīneṃ Jinukumara neṃ āvīneṃ kahuṃ "he rāja-putro, tumeṃ haveṃ ṣāiṃ ṣodaso māṃ. amārā bhuvana neṃ viṣeṃ upadravya thāiṃ cheṃ." iṃma kahī <bhu> Bhuvanapati nā devatā ṭhekāneṃ gayā.

tivāra pachi Jinakumareṃ vicāruṃ je "ṣāi jo ketaleṃka kāleṃ burāya. etalā māṭe pāṇī hoiṃ to ruṃḍūṃ." iṃma vicāri daṇḍa-ratneṃ karī. Gaṃgā nadī no pravāha vālyo. tiṇe ṣāi bharāṇī. tivāreṃ Bhuvanapati nā ghara neṃ viṣeṃ pāṇi no upadravya thayo. tivāreṃ Nāgakumāra-deva<da>tā kopāyamāna thaineṃ, agani-jvālāiṃ karīneṃ vāli bhasma karyā. tivāreṃ pradhāneṃ lokeṃ vīcāra karyo "jehaveṃ cakravartti naiṃ jeineṃ suṃ muṣa deṣāḍīiṃ te māṭeṃ āpaṇā paṇa sarva sainya caya ṣaḍakīne balī marīiṃ".

ehaveṃ indreṃ ava(dhi)jñāneṃ jouṃ je māhā anaratha thāto deṣīneṃ Garaḍā vrāhamaṇa nūṃ rūpa karī, lasakara meṃ āvīneṃ, lasakara neṃ samajhāvī, sainya leineṃ, Ajyodhyāiṃ āvīneṃ, vipre neṃ rupeḥ putra nūṃ kalevara ṣandheṃ leī, nagara meṃ āvī, cakravartti nā darabāreṃ najika āvī, vilāpa karavā lāgo. te vilāpa sāṃbhalineṃ cakravarti pote vrāmaṇa pāseṃ āvyo. vrāhmaṇa neṃ puchuṃḥ. tivāreṃ vrāhmaneṃ kahyūṃḥ "māhare pūtra e kandhe ja cheṃ. tehaneṃ sāpeṃ ḍasyo. teha nā ghaṇāya upāya karyā paṇa na utaryo. ehaveṃ eka upāya che(le) rahyo cheṃ. jo kumārī bhasma male, to e putra sajīvana thāyeṃ. tuṃ to prajāpāla cakravartti cheṃḥ. mujha ne bhasma pedāsa karī āpa". tivāreṃ Sagaracakravartti vipra neṃ leī nagara māṃ phiro. kumāri rāṣa kihāṃyeṃ na jaḍi. tivāreṃ Sagaracakravarttiiṃ kahuṃ "māharā ghara māṃ kumāri rīṣyā cheṃ". tivāreṃ Sagara nī mātā kaheṃ "āpaṇā ghara nī rāṣa kumārī nathī". tivāre dvija ghaṇo vilāpa karavā lāgo. tivāreṃ Sa(ga)racakravartti anitya-bhāvanāiṃ karī samajhāvavā lāgo. tivāreṃ vipra bolyo "samājhāvavūṃ sohilūṃ, paṇa samajhavu dohilūṃ". tivāre Sā(ga)racakravartti kaheṃ "e bīhuṃ vāta sohilī cheṃ". ehavī vāta karaṃ cheṃ. ehavāṃ mā sāṭha hajāra putra no abhāva thayā nī ṣavara āvī. tivāreṃ iṃdre potā nuṃḥ mūla-svarūpa pragaṭa kidhuṃ. cakravartti ne samajhāveṃ. etaleṃ Ajitanātha arihā āvī samosaryā. ehave vadhāmaṇī sāṃbhali cakravartti iṃdra sahīta āvī. śrīVītarāga neṃ vāṃdineṃ dharmaḥ sāṃbhalavā beṃṭhā. tihāṃ desanā māṃ śrīVītarāgeṃ śrīVīma(lā)cala no mahātama varṇavuṃ. śrīVītarāga nī vāṃṇī sābhali cīta prasana thayuṃ. śrīSiddhācalajī neṃ bheṭavā neṃ harṣa thayo saṃgha-sahita.

tihāṃ ehavī ṣabara āvi je Gaṃgā-nadī nā pravāha māṃ nagara-deśa bhaṇāṇā che. tivāreṃ Jinakumā(ra) no putra Bhagīratha teha neṃ ājñā karī Sagaracakravartti saṃgha-sahita śrīSiddhācalajīiṃ āvyā. tirtha no uddhāra kīdho. ehaveṃ iṃdreṃ vīnatī karī je "śrīSiddhācaleṃjī jehavūṃ adabhuta tirtha cheṃ aneṃ āgaleṃ kāla to viṣama cheṃ. etalā māṭeṃ samudra lāvo, to tirtha no raṣopuṃ thāiṃ. ehaveṃ Bhagiratha paṇa Gaṃgā neṃ ṭhekāṇeṃ kari āvyā. Sūstika-devatā ne hukama karyoḥ "dario Siddhādrī pachavāḍeṃ lāvo". tivāreṃ Svastika-devatā darīo leineṃ śrīVimalācalajīi lei āvyo. tivāreṃ iṃdreṃ Sāgara neṃ vinatī karī "dario visa gāu vegalo raheṃ". tivāreṃ Sāgara neṃ vīnatī karī āṃjñāi "dario vīsa gāu vegalo raho".

ehavā śrīAjitanātha neṃ vāreṃ Sagaracakravarttiiṃ saṃgha kāḍhīneṃ uddhāra karyo.

śrīAjitaprabhu śrīSiddhācalaji thī vihāra karatā havā potā nuṃ sāsana Siṃhasena-pramuṣa 95 gaṇadhara, eka lāṣa sādhu, Phālaguṇa-pramuṣa eka lāṣa trīsa hajāra 30 sādhavī, be lāṣa 98 hajāra śrāvaka, pāṃca lāṣa copana hajāra śrāvikā, sāḍhā cyāra syeṃ dhanūṣa deha-māṃna, bohottara lāṣa pūrva nu āuṣu, kaṃcana-varaṇa-sarīra, gaja-laṃchana, sahasra-puruṣa saṃghāteṃ dikṣā lidhī. hajāra puruṣa sātheṃ śrīSameta-siṣara upareṃ sidhi-pada varyā. ehavā śrīAjitanātha bijā paramesvarajī neṃ // vāra vāra vānduṃ chuṃ // namo stu śrīMuktigirī // śrīVimalācalagirī neṃ namo namaḥ //2// śrī śrī śrīḥ

३.

श्री संभवनाथजी

3. Śrī Sambhavanāthajī

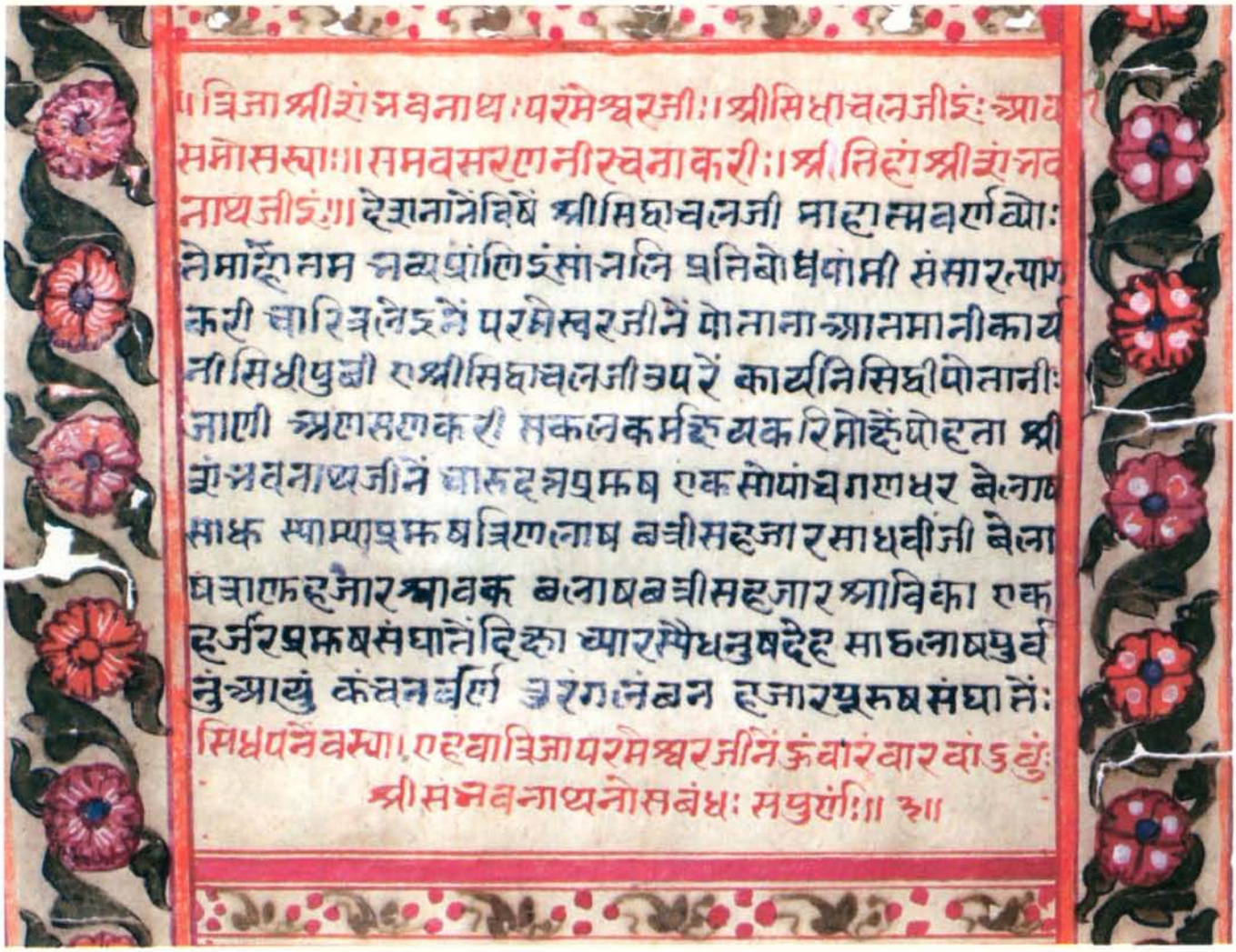

मूल पाठ

त्रिजा श्री संभवनाथ परमेश्वरजी।3

श्री सिद्धाचलजीइंः आवी समोसरया। समवसरणनी रचना करी। श्री तिहां श्री शंभवनाथजीइं, देशनानें विषे श्री सिधाचलजी माहात्म वर्णव्यो, ते माहातम भव्य प्राणिइं सांभलि प्रतिबोध पांमी, संसार त्याग करी, चारित्रा लेइनें परमेश्वरजीने पोताना आतमानी कायनी सिधी पुछी। ए श्री सिद्धाचलजी उपरें कार्यनि सिद्धि पोतानीः जाणी अणसण करी, सकल कर्म क्षय करि मोक्षें पोहता। श्री शंभवनाथजीनें चारुदत्त प्रमुख एकसो पांच गणधर, बे लाख साधु, स्याम्या प्रमुख त्रिण लाख छत्रीस हजार साधवीजी, बे लाख त्राणु हजार श्रावक, छ लाख छत्रीस हजार श्राविका, एक हजार प्रमुख (पुरुष) संघाते दिक्षा। च्यारस्यै धनुष देह, साट्ठ लाख पूर्वनुं आयु, कंचन वर्ण, तुरंग लंछन, हजार पुरुष संघातेंः सिद्धप(द) ने वरया। एहवा त्रिजा परमेश्वरजीनें हुं बारंबार वांदु छुंः। श्री संभवनाथनो संबंध संपूर्णः। 3।

हिन्दी अनुवाद

3. संभवनाथजी

आपने 1,000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या अंगीकार की थी।

श्री संभवनाथजी सिद्धाचल पर पधारे। इन्द्रों ने समवसरण की रचना की। आपने देशना में श्री सिद्धाचलजी का माहात्म्य दर्शाया। भव्य प्राणियों ने प्रतिबोधित होकर संसार का त्याग करके प्रव्रज्या ग्रहण की। उन्होंने प्रभु से अपने आत्मा की सिद्धि विषयक चर्चा की। अपने आत्मा की कार्यसिद्धि वहीं सिद्धाचल पर जानकर उन्होंने वहां अनशन व्रत शुरू किये, सकल कर्म क्षय कर सिद्धत्व, मोक्ष प्राप्त किया।

आपके परिवार में चारुदत्त प्रमुख 105 गणधर थे। 2,00,000 साधु, श्यामा प्रमुख 3,36,000 साध्वियाँ, 2,93,000 श्रावक और 6,36,000 श्राविकाएँ थीं।

आपका देहमान 400 धनुष ऊँचा था। आपका वर्ण कंचन (सुवर्ण) है। आपका लांछन तुरंग (अश्व) है। आपकी कुल आयु साठ लाख पूर्व थी। 1,000 पुरुषों के साथ आपने सिद्धपद–मोक्ष प्राप्त किया।

तीसरे तीर्थंकर श्री संभवनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

// trijā śrīŚambhavanāthaḥ-parameśvarajīḥ // śrīSidhāṃcalajīiṃḥ āvī samosaryāḥ. samavasaraṇa nī racanā ḱarīḥ. śrī tihāṃ śrīŚambhavanāthajīiṃ deśanā ne viṣeṃ śrīSiddhācalajī māhātma varṇavyoḥ. te māhātama bhavya-prāṇiiṃ sāṃbhali pratibodha pāmi. saṃsāra-tyāga karī, cāritra leineṃ, paramesvarajī neṃ potā nā ātamā nī kārya nī sidhī puchī. e śrīSiddhācalajī upareṃ kārya ni siddhī potā nīḥ jāṇī, aṇasaṇa karī, sakala karma kṣaya kari, mokṣe pohatā. śrīŚambhavanāthajī neṃ Cārudatta-pramuṣa eka so pāṃca gaṇadhara, be lāṣa sādhu, Syāmyā-pramuṣa triṇa lāṣa chatrīsa hajāra sādhavījī, be lā. trāṇu hajāra śrāvaka, cha lāṣa chatrīsa hajāra śrāvikā, eka hajāra pramuṣa[3] saṃghāteṃ dikṣā, cyāra syai dhanuṣa deha, sāṭṭha lāṣa purva nuṃ āyuṃ, kaṃcana-varṇa, turaṃga-laṃchana, hajāra puruṣa saṃghāteṃ sidhapa(da) ne varyā // ehavā trijā parameśvarajī neṃ huṃ vāra vāra vāṃduṃ chuṃḥ. śrīSabhavanātha no sambandhaḥ saṃpurṇaḥ // 3 //

3. The word which is usually found at this place is *puru ṣa*.

४.

श्री अभिनंदनस्वामीजी

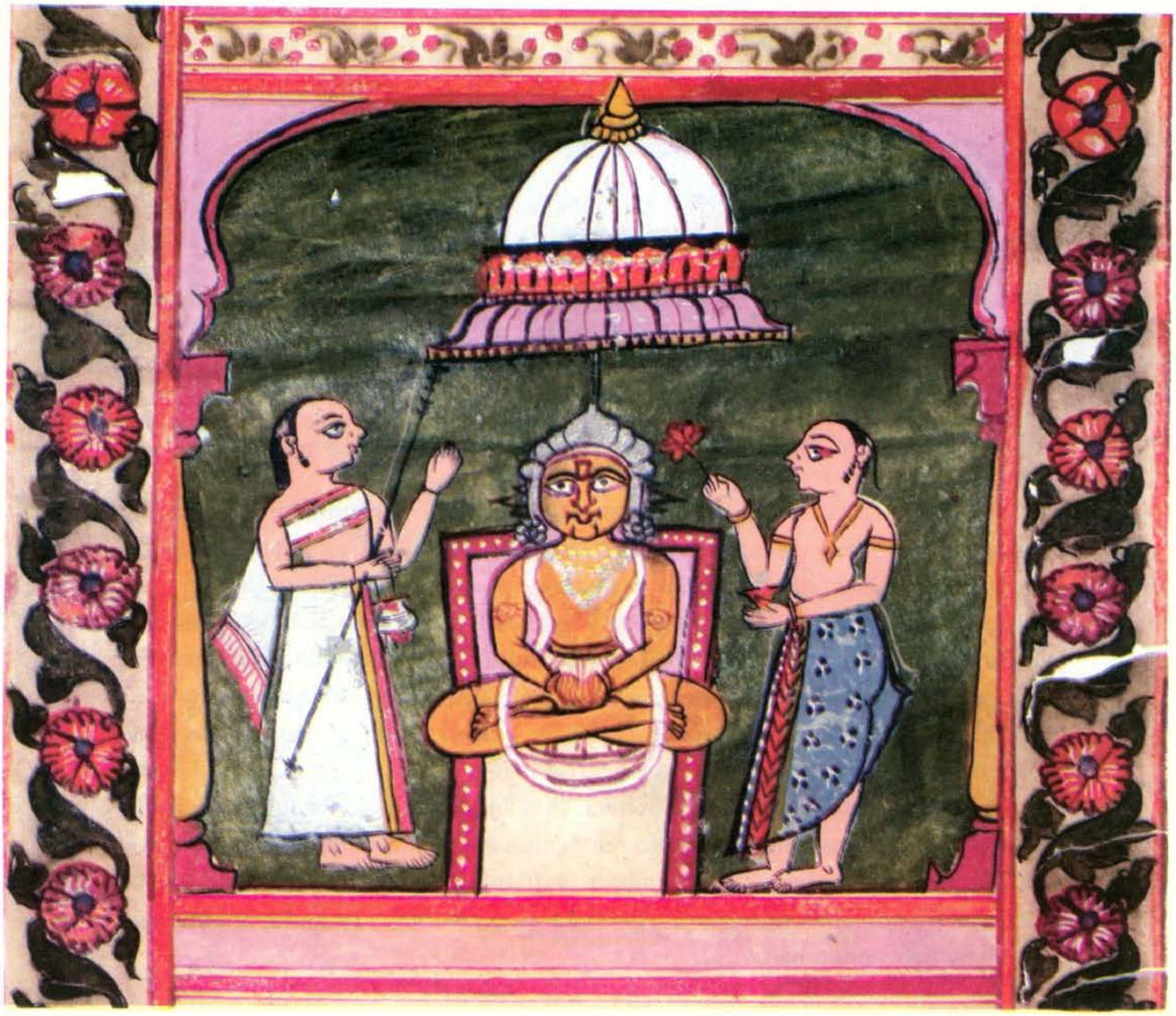

4. Śrī Abhinandanasvāmījī

॥ हवें चोथा ॥ श्री अभिनंदनस्वांमि । श्री सिद्धाचलजी । आवी
समोसर्या : च्यारनिकायनां देवता । समवसरणनिरचनाकरि
श्री अभिनंदनस्वांमि त्रीगडें बेसि श्री सिद्धाचलजीनो माहात
मप्ररुप्युं ॥ अनेकजनवयांणि श्री सिद्धाचलजीनो मोटो महिमा
जांणि वारिवलेइ अणसणकरी मोक्षपोहता श्री सिद्धाचल
नामछें तेपुरोंनांमछें एतिर्थनेंविषें अतितकालें अनागतका
लें वर्त्तमानकालें एत्रिणकालनेंविषें अनंता तिर्थकर:
अनंतागणधर अनंता आचार्ज अनंताउपाध्याय अनंता
मुनिरा अनंतिसाधवीउ अनंताश्रावक अनंतिश्राविका ए
तिर्थनेंविषें सिधथया परमपदपांम्या तेनन्नामाटें सिद्धाचल
पर्वतें श्रीपुंडरिकगणधर सीधवर्या तेदीवसथी एती र्थः
नूंनामपुंडरीक: श्री अभिनंदनप्रभुनें वारें
सेत्रुंजयएहवूंनामथयु तेकहेंछें पुर्वेश्रुकराजनेंपाछलेंभवें
जितसत्रुराजा च्यारआहारनो अभिग्रहलीधो श्री सिद्धाचल
जीभेटुं तिवारें आहारकरूं एहवा अभिग्रहसहित आचार्जस
हित चउविधिसंघसहित पगेहिंडतां श्री सिद्धाचलजीनी जात्रा
इंनिकल्या मार्गें आवतां कासमीरदेसनी अटवी आवी एह
वेंसरीरनोधमनो पुदगलिकछें राजानुंसरीर अनपांणिविनं
अटकें तिवारेंसर्वसंघें लोकेंमलिनेंराजानेंकहें अभिग्रह:
मुको पारणुंकरो जिनमतनेंबेप्रकारेंछे एकउत्सर्ग अनेंबी:
जो अपवाद एहवुंसंघनाकहथीसांभली राजानुंमन लगार:
मात्रनगुंनहीं तिवारेंसर्वसंघचेंताउरथयो एहवेंसुर्जतो अस्त
थयो राउपडिसर्वेंसुइरह्या एहवें कवडजक्ष आवी आचार्य
नेंस्वप्नदीधुं प्रधाननेंस्वपनदिधुं: ॥ च्यार अधिकारिपुरुषनें
स्वपनेंदिधुं दिनप्रहरलेंरएकचढसे । श्री सिद्धाचलजीनो दर्श
नकुंसर्वनेंकाराबीस प्रभातेंसर्वजाग्या: हर्षपाम्या उछाहथ
यो संघतिहांथीउपड्यो दिनप्रहरएक जेतलेंथयो तेतलेंक
वडजक्षें कासमीरदेसनीसिमनेंविषे: ॥ नवोश्रीसिधाचलप्रग
टकिधो सर्वसंघलोकें: राजाप्रमुखें जात्राकरी अभिग्रहपूरो
थयो तिहांथी श्रीश्रीसंघवेरांणो हवेंजितसत्रुराजा प्रभुदर्श
नकरें पाछोबाहरथयोनिकलें इंमसातआठवारराजगया
आव्या तिवारेंप्रधानकहें स्वामिइहांरहो तिवारेंराजाकहेंज
मेंकहोतो अमेंइहांरहेसुं इंमकहिनें राजातिहांरह्या विमल
पुरनगरवसाव्युं तिहांराजा अनेंहंसिनामास्त्रि अनेंबीजीसा
रसीनामास्त्री अनेंहंसानामाप्रधान एत्रणेतिहांरह्या परमेश्व
रजीनीपुजाकरें एहवेंएकसमेंआव्यो रुपेंमोटेसुं ...

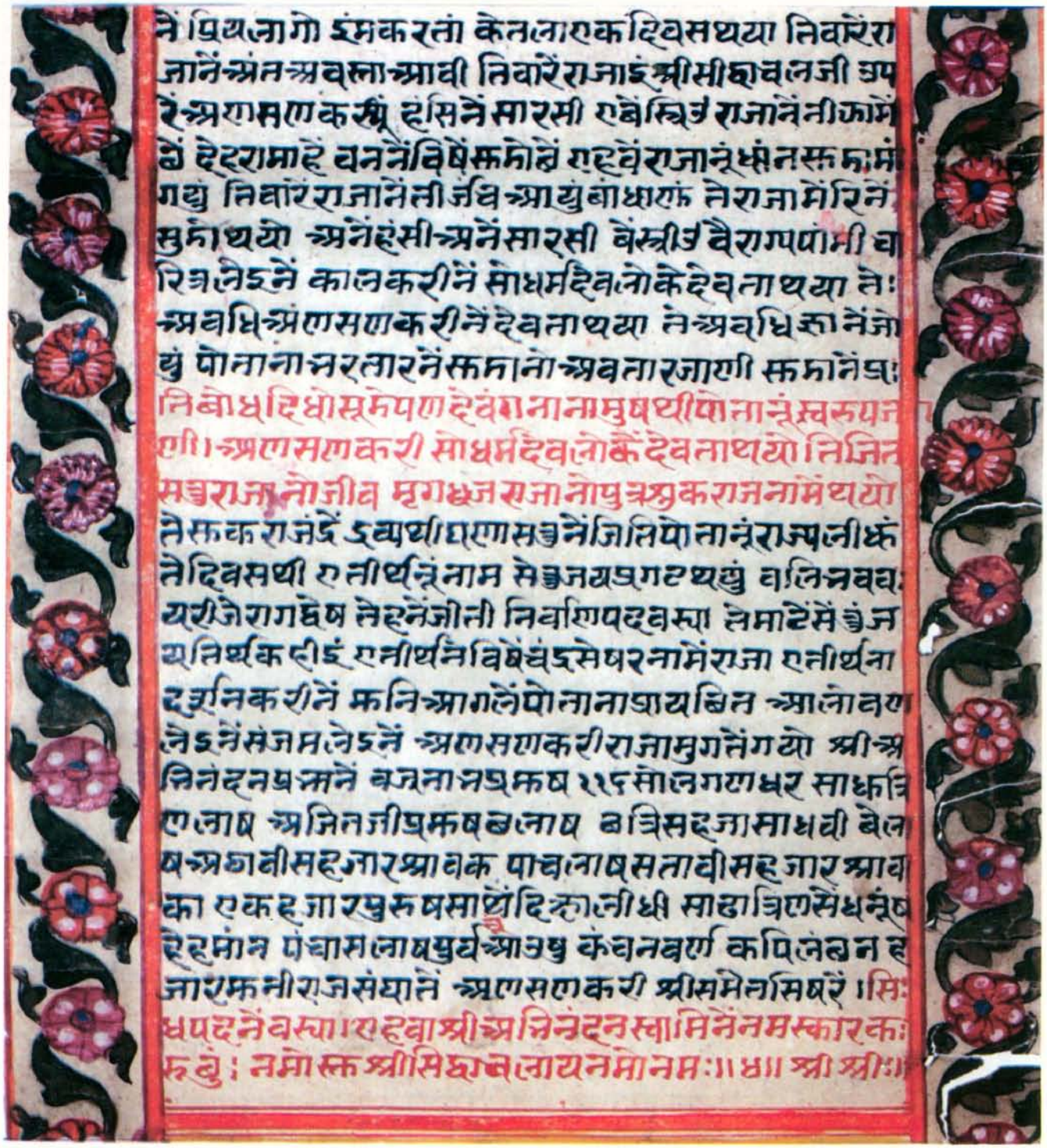

मूल पाठ

हवें चोथा श्री अभिनंदन स्वांमि।

श्री सिद्धाचलजी आवी समोसरया। च्यार निकायना देवता समवसरणनि रचना करि। श्री अभिनंदन स्वामि त्रीगडें बेसि श्री सिद्धाचलजीनो माहातम प्ररुपुं। अनेक भव्य प्रांणि श्री सिद्धाचलजीनो मोटो महिमा जांणि, चारित्र लेइ अणसण करी मोक्ष पोहता। श्री सिद्धाचल नाम छे, ते गुणें नाम छे। ए तिर्थने विषे अतित कालें, अनागत कालें, वर्तमान कालें ए त्रिाण कालनें विषे अनिंता तिर्थंकर, अनंता गणधर, अनंता आचार्जि, अनंता उपाध्याय, अनंता मुनिरा(य), अनंति साधवीओ, अनंता श्रावक, अनंति श्राविका ए तीर्थने विषे सिध थया, परम पद पांम्यां। तेतला माटे सिद्धाचल पर्वतें श्री पुंडरिक गणधर सीध वरया। ते दिवसथी ए तीर्थनुं नांम पुंडरीकः। श्री अभिनंदन प्रभुने वारें शेत्रुंजय एहवूं नाम थयुं ते कहे छे।

पूर्व श्रुकराजानें पाछलें भवें जितशत्रु राजा। च्यार आहारनो अभिग्रह लीधो। श्री सिद्धाचलजी भेटुं तिवारें अ(आ)आहार करुं एहवा अभिग्रह सहित, आचार्ज सहित, चतुर्विध संघ सहित, पगें हिंडतां श्री सिद्धाचलजीनी जात्राइं निकल्या। मार्गे आवतां आवतां कासमीर देसनी अटवी आवी। एहवें शरीरनो धर्म तो पुद्गलिक छे। राजानुं सरीर अन–पांणि विना अटकुं। तिवारें सर्व संघे, लोकें मलिं राजानें कहें, ''अभिग्रहः मुको, पारणुं करो।'' जिनमत बे प्रकारे छे, 'एक उत्सर्ग अने बीजो अपवाद' एहवूं संघना मुखथी सांभली राजानूं मन लगार मात्रा डग्युं नहीं। तिवारें सर्व संघ चंतातुर थयो।

एहवें सुर्ज तो अस्त थयो। रात्रा पडि, सर्वे सूई रह्या। एहवें कवडजक्ष आवी आचार्यने सुप(न) दीधुं, प्रधानने सुपन दीधुं। च्यार अधिकारि पुरुषनें सुपनें दिधुं। दिन प्रहर एक चढ्यो। श्री सिद्धाचलजीनां दर्शन हुं सर्वने करावीस। प्रभातें सर्व जाग्यां। हर्ष पाम्यां। उछाह थयो। संघ तिहांथी उपड्यो। दिन प्रहर एक जेतलें थयो, तितले कवडजक्षें कासमीर देसनी सेमनें विषें नवो श्री सिधाचल प्रगट किधा। सर्व संघ लोकेः राजा प्रमुखें जात्रा करी। अभिग्रह पूरो थयो। तिहांथी श्रीश्री संघ वेराणो ।

हवें जितसत्रु राजा प्रभु दर्शन करें, पाछो बाहर निकलें । इम सात–आठ वार राजा गया–आव्या। तिवारें प्रधान कहे, ''स्वामि! इहां रहो।'' तिवारें राजा कहे, ''तुमें कहो तो अमे इहां रहेसुं।'' इम कहिने राजा तिहां रह्यां। विमलपुर नगर वसावूं।

तिहां राजा अने हंसि नामा स्त्रि अने बीजी सारसी नामा स्त्री अने हंसा नाम प्रधान ए त्राणें तिहां रह्यां। परमेश्वरजीनी पुजा करें।

एहवें एक सुडो आव्यो। रुपे रुडो देखी राजाने प्रिय लागो। इंम करतां केतला एक दिवस थया तिवारें राजानें अंत अवस्ता आवी। तिवारें राजांइ श्रीसीधाचलजी उपरें अणसण करयूं। हंसिनें सारसी ए बें स्त्रिओ राजानें नीसामें छें। देहरा मांहें वननें विषें सुडो छे। एहवें राजानुं धान सुडामां गयुं। तिवारें राजाने तीर्जच आयुं बांधाणु। ते राजा मेरिने सुडो थयो अने हंसी अने सारसी बे स्त्रीओ वैराग्य पांमी चारित्रा लेइनें काल करीने सोधर्म देवलोके देवता थया। ते अवधि अणसण करीने देवता थया। ते अवधिज्ञानें जोयुं। पोताना भरतारने सुडानो अवतार जांणी सुडाने प्रतिबोध दिधो। सूडे पण देवंगनाना मुखथी पोतानूं स्वरूप जांणी अणसण करी सौघर्म देवलोकें देवता थयो।

ति जितसत्रु राजानो जीव मृगध्वज राजानो पुत्र श्रुकराज नामें थयो। तें शुक राजंद्रें द्रव्यथी घणा सत्रुनें जिति पोतानूं राज्य लीधुं। ते दिवसथी ए तीर्थनूं नाम सेत्रुजय प्रगट थयुं। बलि भव वयरी जे रागद्वेष तेहने जीती निर्वाण पद वरया। ते माटे सेंत्रुंजय तिर्थ कहीइं। ए तीर्थने विषे चंद्रसेखर नामें राजा। ए तीर्थना दर्शन करीनें मुनि आगलें पोताना प्रायश्चित आलोवणं लेईनें, संजम लेईनें अणसण करी राजा मुगतें गयो ।

श्री अभिनंदनप्रभा(भु)ने वज्रनाभ प्रमुख 116 सोल गणधर, साधु त्रिण लाख, अजितजी प्रमुख छ लाख छत्रिस हजा(र) साधवी, बे लाख अट्ठावीस हजार श्रावक, पांच लाख सत्तावीस हजार श्राविका, एक हजार पुरुष साथे दिक्षा लीधी।

साढा त्रिणसें धनूंष देहमान, पचास लाख पुर्व नूं आउखुं, कंचन वर्ण, कपि लंछन, हजार मुनीराज संघाते अणसण करी श्री समेतसिखरें सिध पदने वरया। एहवां श्री अभिनंदन स्वामिने नमस्कार करुं छुं। नमोस्तु श्री सिद्धाचलाय नमोनमः।4। श्री श्रीः

हिन्दी अनुवाद

4. अभिनंदन स्वामीजी

अभिनंदन प्रभु सिद्धाचल पधारे। देवता ने समवसरण की रचना की। प्रभु ने धर्मदेशना में सिद्धाचल तीर्थ का माहात्म्य प्रदर्शित किया। तीनों काल अतीत, अनागत और वर्तमान में अनंत तीर्थंकर गणधर, आचार्य, साधु इत्यादि अनेक भव्य जीवों ने यहां से सिद्धपद प्राप्त किया है। ऋषभदेवजी के प्रथम गणधर पुंडरीकजी ने यहां से सिद्धपद प्राप्त किया है, जिससे यह तीर्थ पुंडरीकगिरि से प्रचलित है।

अभिनंदन प्रभु के समय में इस तीर्थ का नाम शत्रुंजय हुआ, इसकी कथा यहां निरुपित की गई है। जितशत्रुराजा ने शत्रुंजय तीर्थ की महिमा सुनी। चतुर्विध संघ के साथ उन्होंने शत्रुंजय तीर्थ की पदयात्रा शुरू की। उन्होंने अभिग्रह किया कि

शत्रुंजय दर्शन के बाद ही वे चारों प्रकार के आहार ग्रहण करेंगे। रास्ता बहुत लंबा था। क्रमशः चलते काश्मीर के अटवी प्रदेश में पहुंचे। लंबे दिनों तक चलने से और आहार नहीं ग्रहण करने से राजा के स्वास्थ्य पर विपरीत असर हुआ। समस्त संघ ने राजा को अभिग्रह पूर्ण करके आहार ग्रहण करने के लिए समझाया। उन्होंने जिनमत के दोनों स्वरूप उत्सर्ग और अपवाद मार्ग से भी समझाये, फिर भी राजा तो अपनी प्रतिज्ञा–अभिग्रह पर दृढ़–अडिग थे। समग्र संघ चिंतित था।

अपने ज्ञान से कर्पटयक्ष भी इस परिस्थिति को जाना। रात्रि का समय हो गया था। आधी रात समग्र संघ निद्राधीन था। कर्पटयक्ष ने आचार्य, राजा, प्रधान आदि चार प्रमुख पुरुषों को रात्रि में स्वप्न में आकर आश्वासन दिया कि राजा सहित समग्र संघ को कल ही वे शत्रुंजय दर्शन करवाएंगे। कर्पटयक्ष ने काश्मीर प्रदेश की सीमा में एक नया सिद्धाचलजी प्रगट किया। राजा सहित समग्र संघ ने दर्शन किए। वहां हर्षोत्सव, महोत्सव मनाया गया। चारों तरफ प्रभुभक्ति–अटूट श्रद्धा और दृढ़ सम्यक्त्व का वातावरण फैला हुआ था। राजा की प्रसन्नता–हर्ष की कोई सीमा न थी। खुशी के मारे वे सात–आठ बार मंदिर में गये, बाहर आये। प्रधान ने राजा के मन को माप लिया कि अभी भी राजा शत्रुंजय दर्शन से तृप्त नहीं हुए हैं। प्रधान ने राजन् को वहां रुकने की विनती की। राजा स्वयं भी वहां रुकना चाहते थे। उन्होंने प्रधान की बात स्वीकार कर ली और अपनी दोनों पत्नियां हंसी और सारसी के साथ वहीं अपना निवास स्थान बना लिया। वहां विमलपुर नगर की स्थापना की।

एक दिन बड़ा सुन्दर, आकर्षक शुक वहां आ पहुंचा। उसे देखते ही राजा लालायित हो गये। हंसी और सारसी दोनों सात्विक, धर्मप्रेमी, भक्तिवती सुश्राविकाएं थीं। दोनों धर्मकार्य में प्रवृत्त रहती थीं। क्रमशः राजा का आयु पूर्ण होने वाला था। देह पौद्गलिक है तो मरना, उत्पन्न होना उसका स्वभाव है –स्वाभाविक क्रम है। राजा की अंतिम घड़ियां थीं। दोनों पत्नियां उन्हें धर्मकार्य में प्रवृत्त करती थीं, फिर भी राजा का मन, समग्र चेतना मानो शुक में अवस्थित थी और उन्होंने तिर्यंच आयुबंध प्राप्त किया। राजा का जीव शुक रूप उत्पन्न हुए।

हंसी और सारसी ने भी राजा के मृत्यु पश्चात् चारित्र धर्म ग्रहण किया। उत्तम प्रकार की चारित्राराधना, तपाराधना करते दोनों ने स्वर्गलोक–देवलोक प्राप्त किया। अपने ज्ञान से पूर्व पति का शुक रूप जानकर उन्हें प्रतिबोधित किया। शुक ने भी प्रतिबोधित होकर आमरणांत अनशन व्रत किया और सौधर्म देवलोक में देवत्व प्राप्त किया।

वहां से शुकदेव मृगध्वज नृप के वहां शुकराज रूप में उत्पन्न हुए। उन्होंने बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के दुश्मनों पर विजय प्राप्त की। अपने प्रतिस्पर्धी राजा को अपने बल–शौर्य और द्रव्य की शक्ति से पराजित किया। अंतःशत्रु राग–द्वेष–मोह–माया–लोभ रूप कषाय पर धर्माराधना–तपाराधना से विजय प्राप्त किया और सिद्धपद प्राप्त किया, तभी से यह तीर्थ शत्रुंजय (शत्रु पर विजय दिलाने वाला) तीर्थ माना जाता है।

चंद्रशेखर नृप ने तीर्थदर्शन–यात्रा की। अपने कर्मों की आलोचना–प्रायश्चित करके चारित्रधर्म अंगीकार किया। आमरणांत अनशन व्रत ग्रहण किया और सिद्धपद–मोक्ष प्राप्त किया।

आपने 1000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी। आपके परिवार में वज्रनाभ प्रमुख 116 गणधर, 3,00,000 साधु, अजितश्री प्रमुख 6,36,000 साध्वियाँ, 2,28,000 श्रावक, 5,27,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 350 धनुष था। आपका वर्ण कंचन था। आपका लांछन कपि है। आपकी कुल आयु पचास लाख पूर्व की थी।

1000 मुनिराजों के साथ आपने सिद्धाचलजी पर अनशन व्रत ग्रहण किये और सिद्धपद–मोक्षपद प्राप्त किया।

श्री शत्रुंजय तीर्थ को भावपूर्वक वंदन।

चौथें तीर्थंकर श्री अभिनंदनजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

// haveṃ cothā śrīAbhinandana-svāmi / śrīSiddhācalajī āvī samosaryā. cyāra nikāya nā devatā samavasaraṇa ni racanā kari. śrīAbhinandana-svāmi trī-gaḍeṃ besi śrīSidhācalajī no māhātama prarupuṃ. aneka bhavya-prāṃṇi śrīSiddhācalajī no moṭo mahimā jāṃṇi, cāritra lei, aṇasaṇa karī, mokṣa pohatā. śrīSiddhācala nāma cheṃ te guṇeṃ nāma cheṃ. e tirtha neṃ viṣeṃ atita-kāleṃ, anāgata-kāleṃ, varttamāna-kāleṃ, e triṇa kāla neṃ viṣeṃ anintā<ka> tirthaṃkaraḥ, anantā gaṇadharā, anantā ācārja, anantā upādhyāya, ananta muni-rā(ja), ananti sādhavīo, anantā śrāvaka, ananti śrāvikā, e tirtha neṃ viṣeṃ sidha thayā, parama-pada pāṃmyā. tetalā māṭeṃ Siddhācala-parvateṃ śrīPuṇḍarika-gaṇadhara sīdha varyā. teṃ dīvasa thī e tīrtha nūṃ nāṃma Puṇḍarīkaḥ. śrīAbhinandana-prabhu neṃ vāreṃ Setruṃjaya ehavūṃ nāma thayu. te kahe cheṃ.

pūrve Śukarāja neṃ pāchaleṃ bhaveṃ Jitasatru-rājā cyāra āhāra no abhigraha līdho. śrīSiddhācalajī bheṭuṃ. tivāreṃ "ahāra karūṃ", ehavā abhigraha-sahita ācārja-sahita caturvidha-saṃgha-sahita pageṃ hiṃḍatāṃ śrīSidhācalajī nī jātrāiṃ nikalyā. mārge āvatā 2 Kāsamīra-desa nī aṭavī āvī. ehaveṃ sarīra no dharma to pudagalika cheṃ. rājā nu sarīra anapāṃṇi vināṃ aṭakuṃ. tivāreṃ sarva saṃgheṃ lokeṃ mali rājā<jā> neṃ kaheṃ "abhigrahaḥ muko, pāraṇuṃ karo. jina-mata be prakāra cheṃ, eka utsarga aneṃ bījo apavāda." ehavūṃ saṃgha nā mūṣa thī sāṃbhalī rājā nū mana lagāraḥ mātra ḍagyuṃ nahī. tivāreṃ sarva-saṃgha caṃtātura thayo.

ehaveṃ śurja to asta thayo. rātra paḍi sarve śūī rahyā. ehaveṃ kavaḍa-jakṣa āvī ācārja neṃ supa(na) didhuṃḥ. pradhāna ne supana dīdhuṃ, cyāra adhikāri puruṣa neṃ supaneṃ didhuṃ. dina-prahara eka caḍhyo. "śrīSiddhācalajī nāṃ darśana huṃ sarva neṃ karāvīsa". prabhāteṃ sarva jāgyāḥ. harṣa pāmyā. uchāha thayo. sa(ṃ)gha tihāṃ thī upaḍyo. dina prahara eka jetaleṃ thayo, titale kavaḍa-jakṣeṃ Kāsamīra-desa nī sema neṃ viṣeḥ navo śrīSidhācala pragaṭa kidho. sarva saṃgha lokeḥ rājā-pramuṣeṃ jātrā karī. abhigraha pūro thayo. tihāṃ thī śrīśrīsaṃgha verāṇo. haveṃ Jitasatru-rājā prabhu-darśana kareṃ. pācho bāhara <thaya> nikaleṃ. iṃma sāta āṭha vāra rāja gayā āvyā. tivāreṃ pradhāna kaheṃ "svāmi ihāṃ raho". tivāreṃ rājā kaheṃ "tumeṃ kaho, to ameṃ ihāṃ raheṃsuṃ". iṃma kahineṃ rājā tihāṃ rahyāṃ. Vimalapura-nagara vasāvūṃ. tihāṃ rājā aneṃ Haṃsi-nāmā stri aneṃ bījī Sārasī nāma strī aneṃ Haṃsā nāma pradhāna, e traṇeṃ tihāṃ rahyā. parameśvarajī nī pujā kareṃ.

ehaveṃ eka suḍo āvyo. rupeṃ ruḍo deṣī rājā neṃ priya lāgo. iṃma karatāṃ ketalā eka divasa thayā. tivāreṃ rājā neṃ aṃta avastā āvī. tivāreṃ rājāiṃ śrīSīddhācalajī upareṃ aṇasaṇa karyūṃ. Haṃsi neṃ Sārasī, e beṃ strio rājā neṃ nījhā meṃ cheṃ. deharā māheṃ vana neṃ viṣeṃ suḍo cheṃ. ehaveṃ rājā nūṃ dhāṃṇa suḍā māṃ gayuṃ. tivāreṃ rājā neṃ tīrjaṃca āyuṃ bāṃdhāṇuṃ. te rājā meṃrineṃ suḍo thayo aneṃ Haṃsī aneṃ Sārasī be strīo vairāgya pāṃmī, caritra leineṃ, kāla karīneṃ, Sodharma-devaloke devatā thayā. te avadhi aṇasaṇa karīneṃ devatā thayā. te avadhi-jñāneṃ joyuṃ potā nā bharatāra neṃ suḍā no avatāra jāṇī, suḍā neṃ pratibodha didho. sūṃḍe paṇa devaṃganā nā muṣa thī potā nūṃ svarupa jāṇī, aṇasaṇa karī Sodharma-devalokeṃ devatā thayo. ti(vāreṃ) Jitasatru-rājā no jīva Mṛgadhvaja rājā no putra Śukarāja nāṃmeṃ thayo. te Suka-rājaṃdreṃ dravya thī ghaṇā satru neṃ jiti potā nūṃ rājya līdhuṃ. teṃ divasa thī e tīrtha nūṃ nāma Setrujaya pragaṭa thayuṃ. vali bhava vayarī je rāga-dveṣa tehaneṃ jītī nirvāṇa-pada varyā. te māṭeṃ Seṃtruṃjaya tirtha kahīiṃ. e tīrtha neṃ viṣeṃ Candraseṣara nāmeṃ rājā e tīrtha nā darśana karīneṃ, muni āgaleṃ potā nā prāyachita ālo(ca)ṇa leineṃ, saṃjama leineṃ, aṇasaṇa karī rājā mugateṃ gayo.

śrīAbhinandanaprabh(u) neṃ Vajranābha-pramuṣa 116 sola gaṇadhara, sādhu triṇa lāṣa, Ajitajī-pramuṣa cha lāṣa chatrisa hajā(ra) sādhavī, be lāṣa aṭṭhāvīsa hajāra śrāvaka, pāca lāṣa satāvīsa hajāra śrāv(i)kā. eka hajāra puruṣa sātheṃ dikṣā līdhī. sāḍhā triṇa seṃ dhanūṣa deha-māṃṇa, paṃcāsa lāṣa purva nūṃ āuṣuṃ, kaṃcana-varṇa, kapi-laṃchana, hajāra munī-rāja saṃghātеṃ aṇasaṇa karī śrīSameta-siṣareṃ sidha-pada neṃ varyā. ehavā śrīAbhinandana-svāmi neṃ namaskāra karu chuṃḥ. namo stu śrīSiddhācalāya namo namaḥ //4// śrī śrīḥ //

५.

श्री सुमतिनाथजी

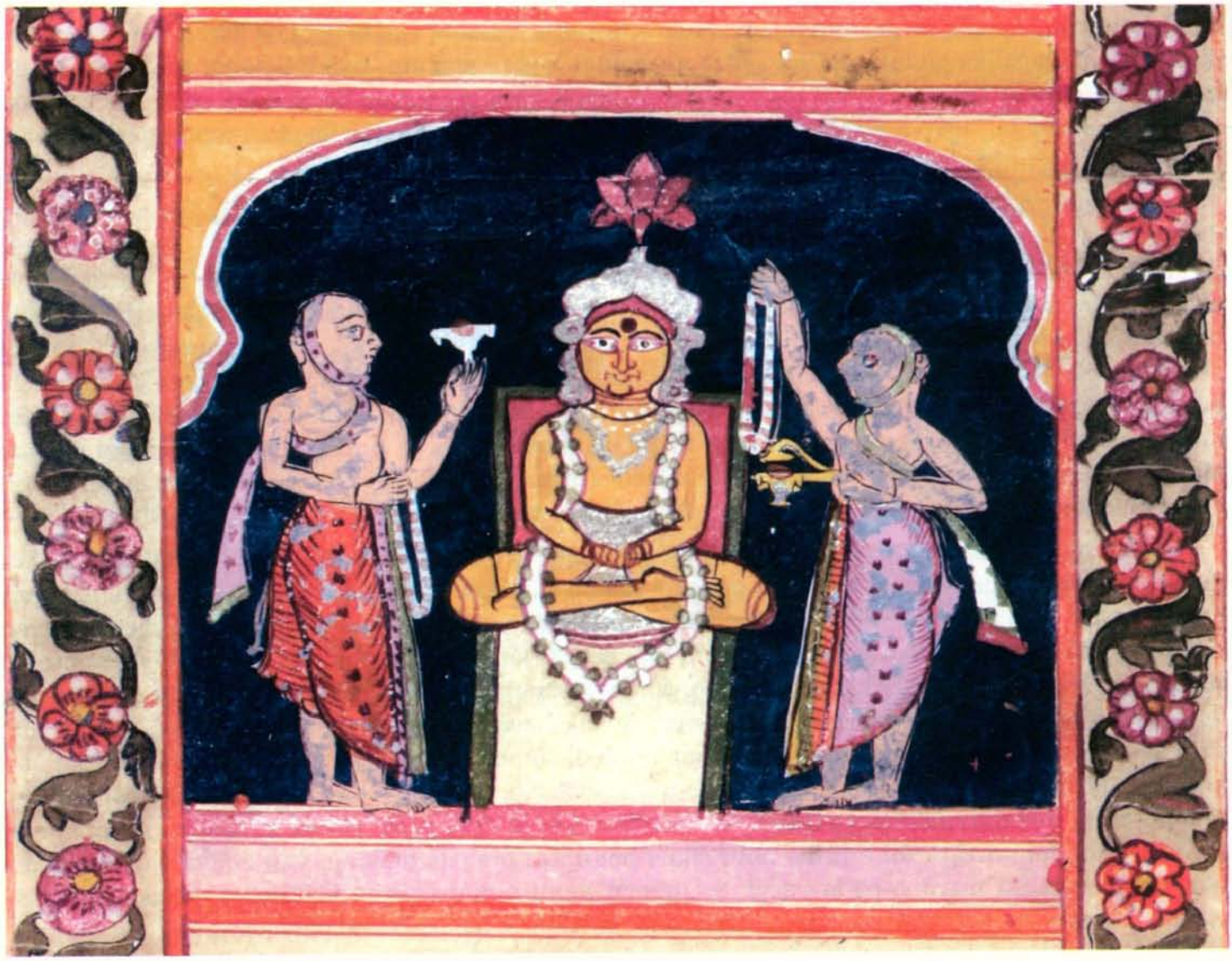

5. Śrī Sumatināthajī

मूल पाठ

हवे पांचमा सुमतिनाथ अरिहंत।

श्री सिध खेत्रें पध्यारया। देवताइं समवसरणनी रचना करी। ते त्रिगडें बेसि देसनाने विषइं श्री सिधाच(ल)जी महिमा भलि रीते वर्णव्यो। केतलां एक भव्य प्रांणि प्रतिबोध पामी, तिर्थनो महिमा मोटो जाणी, वैराग आंणी, चारित्र लेई, अणसण करी सिधपदनं वरया। श्री सुमितनाथजीइं सहस्र पुरुष संघाते व्रत लीधुं।

चमर प्रमुख सो 100 गणधर, त्रिण लाख वीस हजार साधु, तापि प्रमुख पांच लाख त्रिस हजार साधवी, बे लाख अढार हजार श्रावक, पांच लाख सोल हजार श्राविका। त्रिण्यसें धनूष देहमांन, चालिस लाख पुर्वनुं आयुं, कंचन वर्ण सरीर, क्रौच लंछन, एक हजार मुनी संघाते श्री समतसीखरजि उपरें सिद्धपदनें वर्या। एहवा श्री सुमतिनाथने वांदु छुंः। नमोस्तुः। श्रीशेत्रुंजय पर्वताय नमोनमः। श्री विमलाचलाय नमोनमः।5। श्री श्री

हिन्दी अनुवाद

5. सुमतिनाथजी

आपने 1000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या अंगीकार की थी।

विचरण करते हुए आपश्री सिद्धक्षेत्र पर पधारें । वहां देवता ने समवसरण की रचना की। अपनी देशना में आपने सिद्धाचलजी का माहात्म्य बतलाया। उससे प्रतिबोधित होकर, तीर्थ का माहात्म्य सविशेष समझकर भव्य प्राणियों ने दीक्षा ग्रहण की, अनशन व्रत ग्रहण किये और सिद्धपद–मोक्षपद प्राप्त किया।

आपके परिवार में चरम प्रमुख 100 गणधर थे। 3,20,000 साधु, तापि प्रमुख 5,30,000 साध्वियां, 2,18,000 श्रावक और 5,16,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 300 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कंचन (सुवर्ण) है। आपका लांछन क्रौंच है। आपकी कुल आयु 40 लाख पूर्व थी।

अपना अंतिम समय नजदीक जानकर 1000 मुनियों के साथ आप सम्मेतशिखरजी पधारे। वहां अनशन व्रत ग्रहण किये और सिद्धत्व प्राप्त किया।

श्री शत्रुंजयतीर्थ को भावपूर्वक वंदन। श्री विमलाचल तीर्थ को भावपूर्वक वंदन।

पाँचवे तीर्थंकर श्री सुमतिनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

//haveṃ pāṃcamā Sumatināṭha-arihanta // śrīSidha-ṣetreṃ padhyāryā. devatāiṃ samavasaraṇa nī racanā karī. te tri-gaḍeṃ besi desanā neṃ viṣaiṃ śrīSidhāca(la)jī mahimā bhali rīteṃ varṇavyo. ketalā eka bhavya-prāṃṇi pratibodha pāṃmī, tirtha no mahimā moṭo jāṃṇī, vairāgī āṃṇī, cāritra leī, aṇasaṇa karī, sidha-pada neṃ varyā. śrīSumatināthajīiṃ sahasra puruṣa saṃghāteṃ vrata līdhuṃ. Camara-pramuṣa so100 gaṇadhara, triṇa lāṣa vīsa hajāra sādhu, Tāpi-pramuṣa pāṃca lāṣa trisa hajāra sādhavī, be lāṣa aḍhāra hajāra śrāvaka, pāṃca lāṣa sola hajāra śrāvikā, triṇya seṃ dhanūṣa deha-māṃna, cālīsa lāṣa purva nūṃ āyuṃ, kaṃcana-varṇa-sarīra, krauca-laṃchana. eka hajāra munīḥ-saṃghāteṃ śrīSamata-sīṣaraji upareṃ sidha-pada neṃ varyā. ehavā śrīSu(ma)tinātha neṃ vāṃduṃ chuṃ // namo stuḥ // śrīŚetruṃjaya-parvatāya namo namaḥ // śrīVimalācalāya namo namaḥ // 5 // śrī śrī.

६.

श्री पद्मप्रभुजी

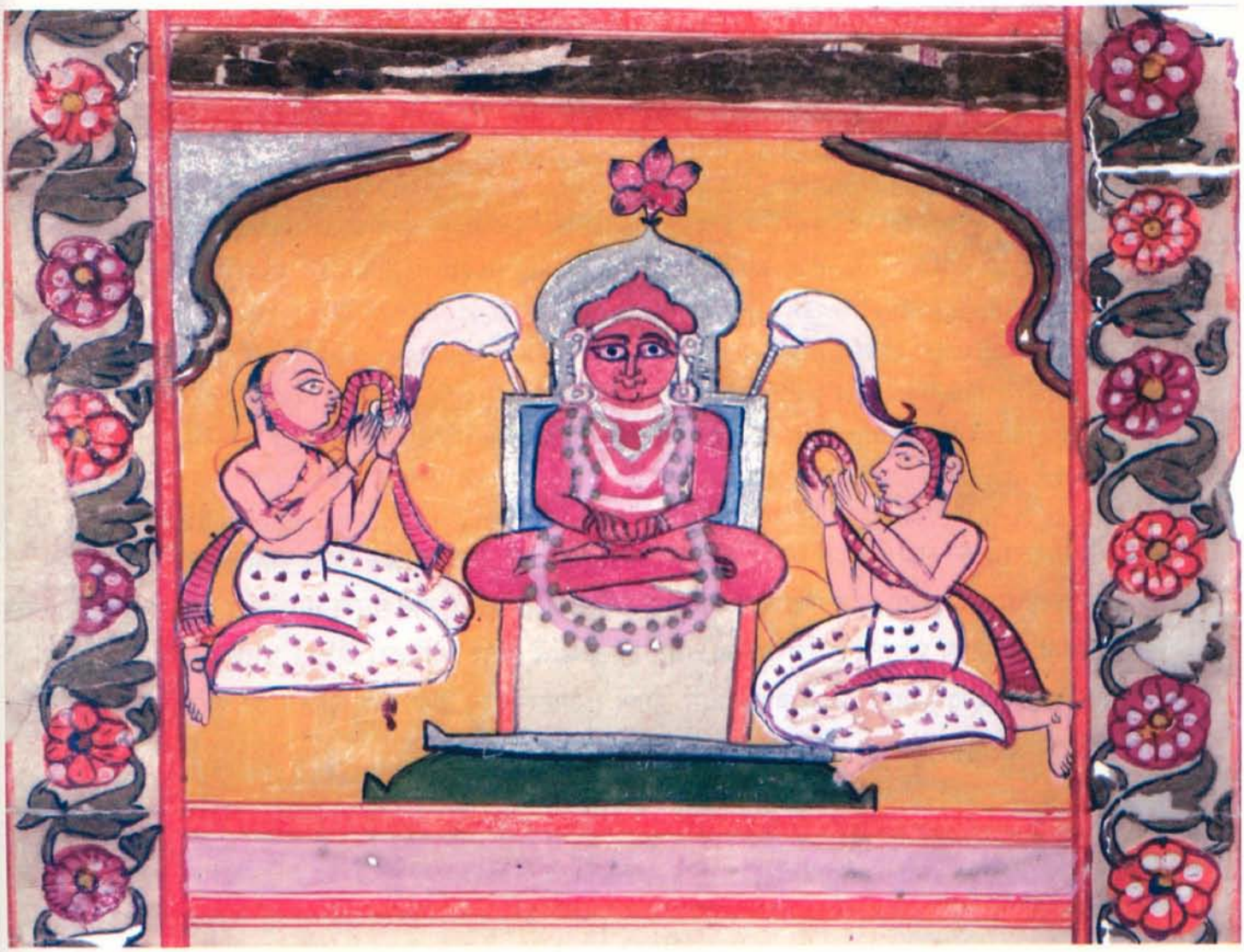

6. Śrī Padmaprabhujī

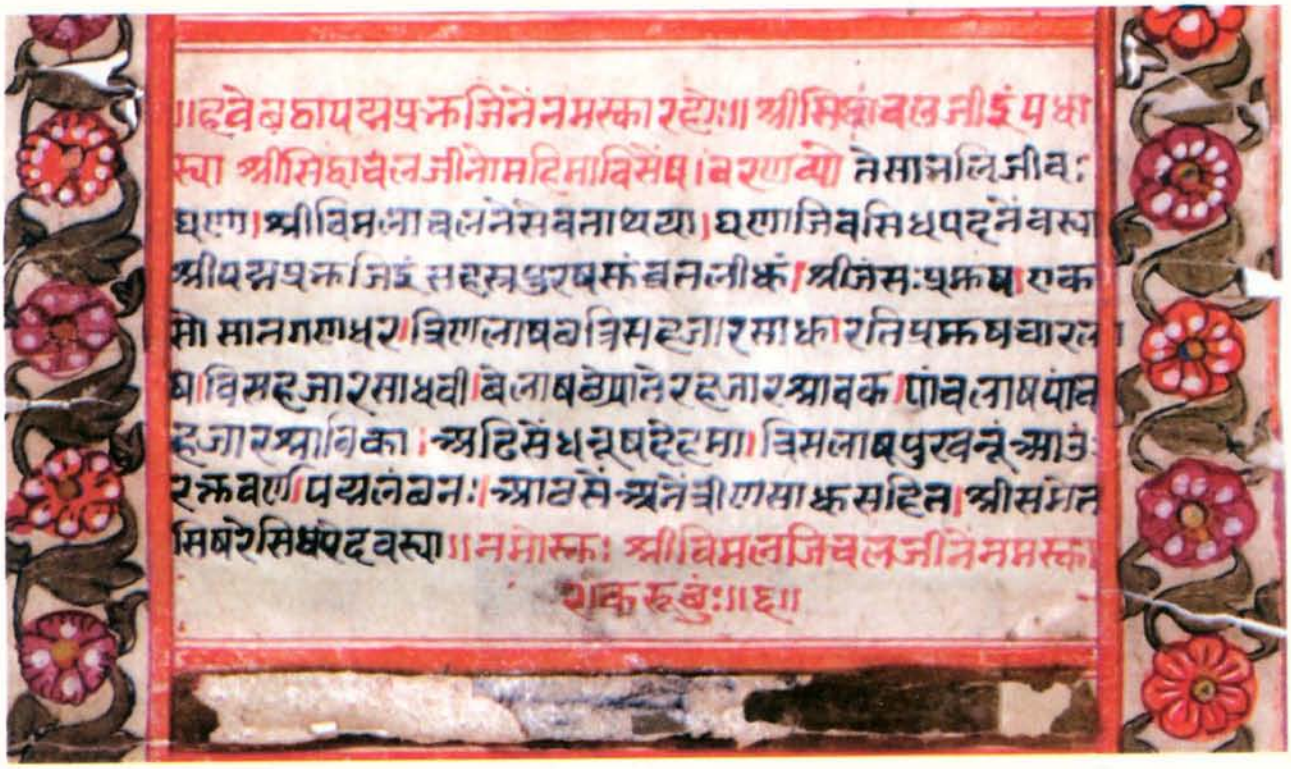

मूल पाठ

हवे छट्ठा पद्मप्रभुजिने नमस्कार होः। 6

श्री सिधाचलजीइं पधारया। श्री सिधाचलजीनो महिमा विसेष वरणव्यो। ते सांभलि जीवः घणा श्री विमलाचलनें सेवतां थया। घणां जिव सिधपदनें वरयां। श्री पद्मप्रभुजिइं सहस्र पुरुष सुं व्रत लीधुं। श्री जसः प्रमुख एकसो सात गणधर, त्रिण लाख छत्रिस हजार साधु, रति प्रमुख चार लाख विस हजार साधवी, बे लाख छेयातेर हजार श्रावक, पांच लाख पांच हजार श्राविका। अढिसें धनूष देहमा(न), त्रिस लाख पूरवनूं आउं, रक्त वर्ण, पद्म लंछनः। आठसें अने त्रीण साधु सहित श्री समेतसिखरे सिद्धपद वरया। नमोस्तुः श्री विमलजिचलजीनें नमस्कार करुं छुंः।6।

हिन्दी अनुवाद

6. पद्मप्रभुजी

आपने 1,000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या अंगीकार की थी।

विचरण करते हुए आप सिद्धाचलजी पधारें। अपनी देशना में सिद्धाचलजी की महिमा बताई। उससे प्रतिबोधित होकर भव्य-प्राणियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की और सिद्धपद-मोक्षपद प्राप्त किया।

आपके परिवार में श्रीयश (सुव्रत) प्रमुख 107 गणधर थे। 3,36,000 साधु, रति प्रमुख 4,20,000 साध्वियां, 2,76,000 श्रावक और 5,05,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 250 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण रक्त है। आपका लांछन पद्म (रक्त कमल) है। आपकी कुल आयु तीस लाख पूर्व की थी। आपका निर्वाण समय समीप जानकर आप सम्मेतशिखर पर पधारें।

आप 803 साधु सहित वहां पहुंचे। आपने अनशन व्रत ग्रहण किये और सिद्धत्व–मोक्षपद प्राप्त किया।

श्री विमलाचलजी तीर्थ को भावपूर्वक वंदन।

छट्ठे तीर्थंकर श्री पद्मप्रभुजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

// have chaṭṭhā Padmaprabhujī neṃ namaskāra hoḥ // śrīSiddhācalajīiṃ padhāryā. śrīSiddhācalajī no māhimā viṣeṃ <ṣa>[4] / varaṇavyo. te sābhali jīvaḥ ghaṇā śrīVimalācala neṃ sevatā thayā. ghaṇā jīva sidha-pada neṃ varyā. śrīPadmaprabhujiiṃ sahasra puruṣa suṃ vrata līdhuṃ. ŚrīJasaḥ-pramuṣa eka so sāta gaṇadhara, triṇa lāṣa chatrisa hajāra sādhu, Rati-pramuṣa cāra lāṣa visa hajāra sādhavī, be lāṣa cheyātera hajāra śrāvaka, pāṃca lāṣa pāṃca hajāra śrāvikā, aḍhi seṃ dhanūṣa deha mā. trisa lāṣa purava nūṃ āuṃḥ, rakta-varṇa, padma-laṃchanaḥ, āṭha seṃ aneṃ trīṇa sādhu-sahita śrīSameta-siṣareṃ sidha-pada varyā // namo stu śrīVimalajicalajī neṃ namaskāra karuṃ chuṃ // 6//

4 Mistake or sign to note an abridgment: what has been said in full for the preceding Jinas is implied here as well.

७.

श्री सुपार्श्वनाथजी

7. Śrī Supārśvanāthajī

मूल पाठ

हवे सातमा श्री सुपार्श्वस्वामि।

एक हजार पुरुष संघाते व्रत लिधुं। विधार्भ प्रमुखः पंचाणुं गणधर, त्रिण लाख साधु, सांमा प्रमुख च्यार लाख त्रीणुं हजार साधवी, बे लाख सतावन हजार श्रावक, च्यार लाख त्राणुं हजार श्राविका, बसें धनुष देहमांन, विस लाख पूर्वनुं आउं, स्वस्तिक लंछन, कंचन वर्ण। विचरतां श्री सिधाचलजीनो सपर्स्य करी पांचसे मुनि संघाते श्री समेतशिखरे सिधपदने वर्याः। नमोस्तु श्री पुंडरिक पर्वतः। श्री सिधाद्री विमलाद्रीने नमस्कार होज्योंः।7। सुपार्श्वस्वामिनो संबंधः श्रीः।

हिन्दी अनुवाद

7. सुपार्श्वनाथजी

आपने 1,000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या अंगीकार की थी।

आपके परिवार में विधार्भ (विदर्भ) प्रमुख 95 गणधर थे। 3,00,000 साधु, सोमा प्रमुख 4,93,000 साध्वियां, 2,57,000 श्रावक और 4,93,000 श्राविकाएँ थीं।

आपका देहमान 200 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कंचन (सुवर्ण) है। आपका लांछन स्वस्तिक है। आपकी कुल आयु बीस लाख पूर्व की थी।

अपना निर्वाण समय समीप जानकर आप पांच सौ मुनियों के साथ सम्मेतशिखर पर पधारे। वहां आपने अनशन व्रत ग्रहण किये और निर्वाण पद–सिद्धत्व प्राप्त किया।

श्री पुंडरिकगिरि, श्री सिद्धाचल–विमलाचल तीर्थ को भावपूर्वक वंदन।

सातवें तीर्थंकर श्री सुपार्श्वनाथजी को भक्ति–भाव पूर्वक वंदन।

Transliteration

//haveṃ sātamā śrīSupārśva-svāṃmi / eka hajāra pūraṣa saṃghāte vrata lidhuṃ. Vidhārbha-pramuṣaḥ paṃcāṇuṃ gaṇadhara, triṇa lāṣa sādhu, Sāṃmā-pramuṣa cyāra lāṣa trīṇūṃ hajāra sādhavī, be lāṣa satāvana hajāra śrāvaka, cyāra lāṣa trāṇuṃ hajāra śrāvikā, ba seṃ dhanuṣa deha-māṃna, viṣa lāṣa purva nūṃ āuṃ, svastika-laṃchana, kaṃcana-varṇa. vicaratā śrīSidhācalaji no saparsya karī pācaseṃ muni saṃghāteṃ śrīSameta-siṣareṃ sidha-pada neṃ varyāḥ. namo stu śrīPuṇḍarika-parvataḥ śrīSidhādrī Vimalādrī neṃ namaskāra hojyoḥ //7// Śupārśva-svāmi no sambandhaḥ // śrīḥ //

८.
श्री चंद्रप्रभुजी

8. Śrī Candraprabhujī

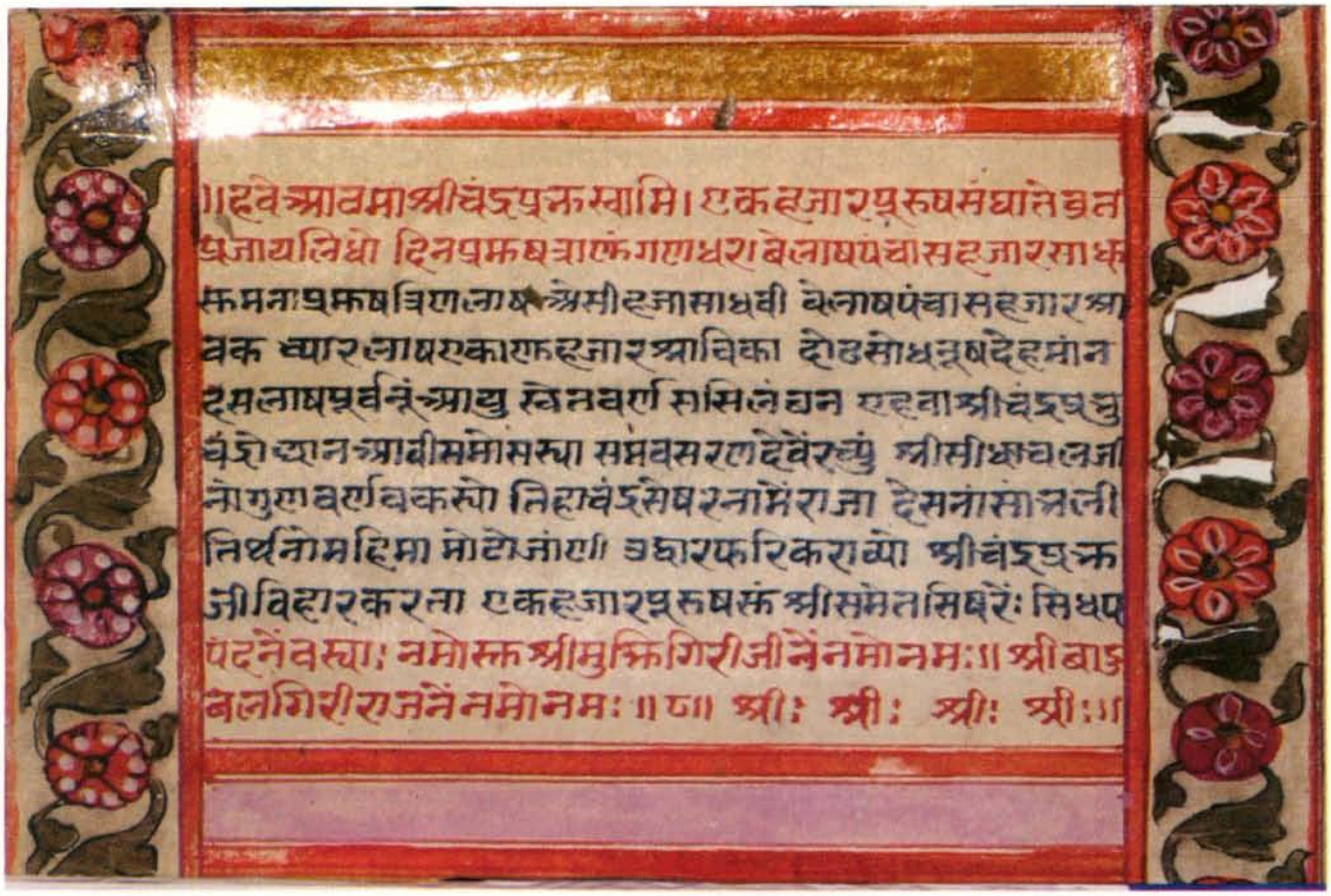

मूल पाठ

हवे आठमा श्री चंद्रप्रभु स्वामि।

एक हजार पुरुष संघाते व्रत प्रजाय लिधो। दिन प्रमुख त्राणुं गणधर, बे लाख पचास हजार साधु, सुमना प्रमुख त्रिण लाख अेंसी हजा(र) साधवी, बे लाख पचास हजार श्रावक, च्यार लाख एकाणु हजार श्राविका, दोढसो धनूष देहमान, दस लाख पूर्वनुं आयु, स्वेत वर्ण, ससि लंछन, एहवा श्री चंद्रप्रभु चंद्रोद्यान आवी समोसरया। समवसरण देवें रच्युं। श्री सिधाचलजीनो गुण वर्णव करयो। तिहां चंद्रसेखर नामें राजा। देशना सांभली तिर्थनो महिमा मोटो जांणी, उधार फरि कराव्यो। श्री चंद्रप्रभुजी विहार करतां एक हजार पुरुष सुं श्रीसमेतशिखरेः सिधपदने वरयाः। नमोस्तु श्री मुक्तिगिरिजीनें नमोनमः। श्री बाहुबल गिरिराजनें नमोनमः।8। श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः।

हिन्दी अनुवाद

8. चंद्रप्रभुजी

आपने 1000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या अंगीकार की थी।

आपके परिवार में दत्त प्रमुख 93 गणधर थे। 2,50,000 साधु, सुमन (सुमना) प्रमुख 3,80,000 साध्वियां, 2,50,000 श्रावक और 4,91,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 150 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण सफेद (गौर) है। आपका लांछन शशि (चंद्र) है। आपकी कुल आयु 10 लाख पूर्व की थी।

अपना निर्वाण काल समीप जानकर आप चंदोद्यान पधारे। देवों ने समवसरण की रचना की। अपनी धर्मदेशना में सिद्धाचलजी पर्वत का माहात्म्य बतलाया। प्रभु की देशना सुनकर भव्य प्राणी तीर्थ का माहात्म्य समझकर वहां आये। इससे प्रतिबोधित होकर चंद्रशेखर राजा ने वहां जीर्णोद्धार करवाया।

अपना निर्वाण समय समीप जानकर आप 1000 साधुओं के साथ श्री सम्मेतशिखर पर पधारें। वहां आपने अनशन व्रत ग्रहण किये और सिद्धत्व–मोक्षपद प्राप्त किया।

मुक्तिगिरिजी, श्री बाहुबल गिरिराज को भावपूर्वक वंदन।

आठवें तीर्थंकर श्री पद्मप्रभु को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

// have āṭhamā śrīCandraprabhu-svāmi / eka hajāra pūruṣa saṃghāteṃ vrata prajāya lidho. Dina-pramuṣa trāṇuṃ gaṇadhara, be lāṣa paṃcāsa hajāra sādhu, Sumanā-pramuṣa triṇa lāṣa esī hajā(ra) sādhavī, be lāṣa paṃcāsa hajāra śrāvaka, cyāra lāṣa ekāṇu hajāra śrāvikā, doḍha so dhanūṣa deha-māṃna, dasa lāṣa pūrva nūṃ āyu, sveta-varṇa, sasi-laṃchana. ehavā śrīCandraprabhu Candrodyāna āvī samosaryā. samavasaraṇa deveṃ racyuṃ. śrīSīdhācalajī no guṇa varṇava karyo. tīhā Candraseṣara nāmeṃ rājā desanāṃ sāṃbhalī, tīrtha no mahimā moṭo jāṃṇī, uddhāra phari karāvyo. śrīCandraprabhujī vihāra karatā eka hajāra pūruṣa suṃ śrīSameta-siṣareṃḥ sidha-pada neṃ varyāḥ. namo stu śrīMuktigirījī neṃ namo namaḥ // śrīBāhubala-girī-rāja neṃ namo namaḥ //8// śrī śrī śrī śrī //

९.

श्री सुविधिनाथजी

9. Śrī Suvidhināthajī

मूल पाठ

नवमा श्री श्रुवधिनाथजीः परमेश्वरजी।

एक हजार पुरुष संघाते व्रत लीधुंः। वाराह प्र(मु)खः एसी गणधर। बे लाख मु(नि) ग(?) वारुणि प्रमुखः एक लाख विस हजार साधवी, बे लाख ओगणत्रिस हजार श्रावक, च्यार ला(ख) इकोतर हजार श्राविका। एकसो धनूष देहमांन, बें लाख पूर्वनुं आयुं, स्वेत वर्ण, मगर लंछन। विचरतां श्री सिद्धाचलजीइं आव्या। श्री सिद्धाचलजी भेटी एक हजार पुरुष संघाते श्रीसमेतसिखरे सिधपद वरयां। नमोस्तुः श्री सिद्धाद्रीः। श्री विमलाचलजीनेंः नमस्कार हज्योः।9

हिन्दी अनुवाद

9. सुविधिनाथजी

आपने 1000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में वराह प्रमुख 80 गणधर थे। 2,00,000 साधु, 1,20,000 साध्वियां, 2,29,000 श्रावक और 4,71,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 100 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण श्वेत (सफेद–गौर) है। आपका लांछन मगर (मकर) है। आपकी कुल आयु दो लाख पूर्व की थी।

आयुष्य काल की समाप्ति निकट जानकर आप 1000 मुनियों के साथ सम्मेतशिखर पर पधारें। वहां अनशनपूर्वक कायोत्सर्ग अवस्था में चार घनघाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान–केवलदर्शन पाया।

नौवें तीर्थंकर श्री सुविधिनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

navamā śrīŚuvadhināthajīḥ-parameśvarajīḥ eka hajāraḥ puruṣa saṃghāteṃ vrata līdhuṃ. Bārāha-pra(mu)ṣa esī gaṇadhara, be lāṣa mu(ni)<ga> Vāruṇi-pramuṣaḥ, eka lāṣa vīsa hajāra sādhavī, be lāṣa ogaṇatrīsa hajāra śrāvaka, cyāra lā. ikotara hajāra śrāvikā, eka so dhanūṣa deha-māṃna, beṃ lāṣa pūrva nūṃ āyuṃ, sveta-varṇa, magara-laṃchana. vicaratā śrīSiddhācalajīiṃ āvyā, śrīSiddhācalajī bheṭī eka hajāra pūruṣa saṃghāteṃ śrīSamata-siṣare sidha-pada varyāḥ. namo stu śrīSiddhādrīḥ śrīVimalācalajī neṃḥ namaskāra hajyoḥ // 9 //

१०.

श्री शीतलनाथजी

10. Śrī Śītalanāthajī

मूल पाठ

हवे दसमा श्री सीतलनाथ परमेश्वरजीः।

एक हजार पुरुष संघाते दिक्ष्या। नंद प्रमुख एकासी गणधरः, एक लाख साधु, सुजसा प्रमुखः एक लाख छ हजार साधवी, बे लाख अगन्यासी हजार श्रावक, च्यार लाख अठावन हजार श्राविका। नेउ धनुष देहमांन, एक लाख पूर्व आयु, कंचन वर्ण, श्रीवछ लंछन। ते सितल परमेश्वरजी श्री सिधाचलजीइं आव्या। देसना देइ भव्य जीवनें प्रतिबोधता एक हजार पुरुष संघातें श्रीसमेतसिखर परवतेः मोक्षे पध्यारयाः। नमोनमः श्री पुंडरिक गिरीः विमला गिरीने नमोनमः।10। श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः।

हिन्दी अनुवाद

10. शीतलनाथजी

आपने 1000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में नंद प्रमुख 81 गणधर थे। 1,00,000 साधु, सुयशा (सुजसा) प्रमुख 1,06,000 साध्वियां, 2,79,000 श्रावक और 4,58,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 90 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कंचन (सुवर्ण) है। आपका लांछन श्रीवत्स है। आपकी कुल आयु एक लाख पूर्व थी।

अपना निर्वाण समय नजदीक जानकर आप सिद्धाचलजी–सम्मेतशिखर पर पधारें। वहां आपने अपनी देशना से भव्य जीवों को प्रतिबोधित किया। वहां आपने एक हजार मुनियों के साथ अनशन व्रत ग्रहण किए। शेष कर्मों का क्षय करके आपने मोक्षपद प्राप्त किया।

श्री पुंडरिकगिरि, श्री विमलाचल को वंदन।

दसवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथजी को भक्ति–भाव पूर्वक वंदन।

Transliteration

//haveṃ dasamā śrīSītalanātha-parameśvarajīḥ eka hajāra pūruṣa saṃghāteṃ dikṣyā. Nanda-pramuṣaḥ ekāsī gaṇadharaḥ, eka lāṣa sādhuḥ, Sujasā-pramuṣaḥ eka lāṣa cha hajāra sādhavī, be lāṣa aganyāsī hajāra śrāvakaḥ, cyāra lāṣa aṭṭhāvana hajāra śrāvikā, neu dhanuṣa deha-māṃna, eka lāṣa pūrva āyu, kaṃcana-varṇa, śrīvacha-laṃchana. te Sitala-parameśvarajī śrīSiddhācalajīiṃ āvyā. desanā dei bhavya-jīva neṃ pratibodhatā eka hajāra pūruṣa saṃghāteṃ śrīSameta-siṣara paravateṃ mokṣeṃ padhyāryāḥ. namo namoḥ śrīPuḍarikagirīḥ Vimalāgirī neṃ namo namaḥ // 10 // śrīḥ śrīḥ śrīḥ śrīḥ śrīḥ śrīḥ śrīḥ śrīḥ śrīḥ.

११.
श्री श्रेयांसनाथजी

11. Śrī Śreyāṃsanāthajī

मूल पाठ

हवे इग्यारमा श्री श्रेयांसप्रभुजी।

एक हजार पु(रु)ष सुं दिक्षाः, कस्तुभ प्रमुख छ्योतेर गणधरः, चौरासि हजार मुनिराज, धारणि प्रमुख एक लाख त्रिस हजार साधवी, बें लाख उगणियासी हजार श्रावक, च्यार लाख अडतालीस हजार श्राविका। अेंसि 80 धनूष देहमांन, चोरासी लाख वरसनूं आउं, कंचन वरण सरीर, खंडग लंछन। एहवा श्री श्रेयस परमेश्वरजीः श्री विमलाचलगिरीइं पधारया। श्री विमलाचलनो वर्णव करयोः। विहार करतां एक हजार पुरुष संघातें समेतसिखरें मोक्ष पद वरया। नमोस्तु विमलगिरी राज श्री सिधाचलजीनें नमस्कार हजोः।11।श्रीः श्रीः।

हिन्दी अनुवाद

11. श्रेयांसनाथजी

आपने 1,000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में कौस्तुभ (गोशुभ), प्रमुख 76 गणधर थे। 84,000 साधु, धारिणी प्रमुख 1,30,000 साध्वियां, 2,79,000 श्रावक और 4,48,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 80 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कंचन है। आपका लांछन खड्गी (गेंडा) है। आपकी आयु पूरे चौरासी लाख वर्ष की थी।

अपना निर्वाण काल समीप जानकर आप विमलाचल गिरि–सम्मेतशिखर पधारे। वहां आपने विमलाचल की महिमा दिखाई। आपने एक हजार मुनियों के साथ अनशन व्रत ग्रहण किए और मोक्ष पद प्राप्त किया।

श्री विमलगिरिराज–सम्मेतशिखरजी को भावपूर्वक वंदन।

ग्यारहवें तीर्थंकर श्री श्रेयांसनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

//haveḥ īgyāramā śrīŚreyāṃsa-prabhujī eka hajāra pū(ru)ṣa suṃ dikṣāḥ // Kastubha-pramuṣa chyotera gaṇadharaḥ, caurāsi hajāra munirāja Dhāraṇi-pramuṣa eka lāṣa trisa hajāra sādhavī, beṃ lāṣa ugaṇiyāsī hajāra śrāvaka, cyāra lāṣa aḍatālīsa hajāra śrāvikā, eṃsi 80 dhanūṣa deha-māṃna, corāsī lāṣa varasa nūṃ āuṃ, kaṃcana-varaṇa-sarīra, ṣaṃḍaga-laṃchana. ehavā śrīŚreyaṃsa-parameśvarajīḥ śrīVimalācalagirīiṃ padhār(y)ā. śrīVimalācala no varṇava karyoḥ. vihāra karatā eka hajāra puruṣa saṃghāteṃ Saṃmeta-siṣareṃ mokṣa-pada varyā // namo stu Vimalagirīrāja śrīSiddhācalajī neṃ namaskāra hajoḥ //11 // śrīḥ // śrīḥ//

१२.

श्री वासुपूज्यजी

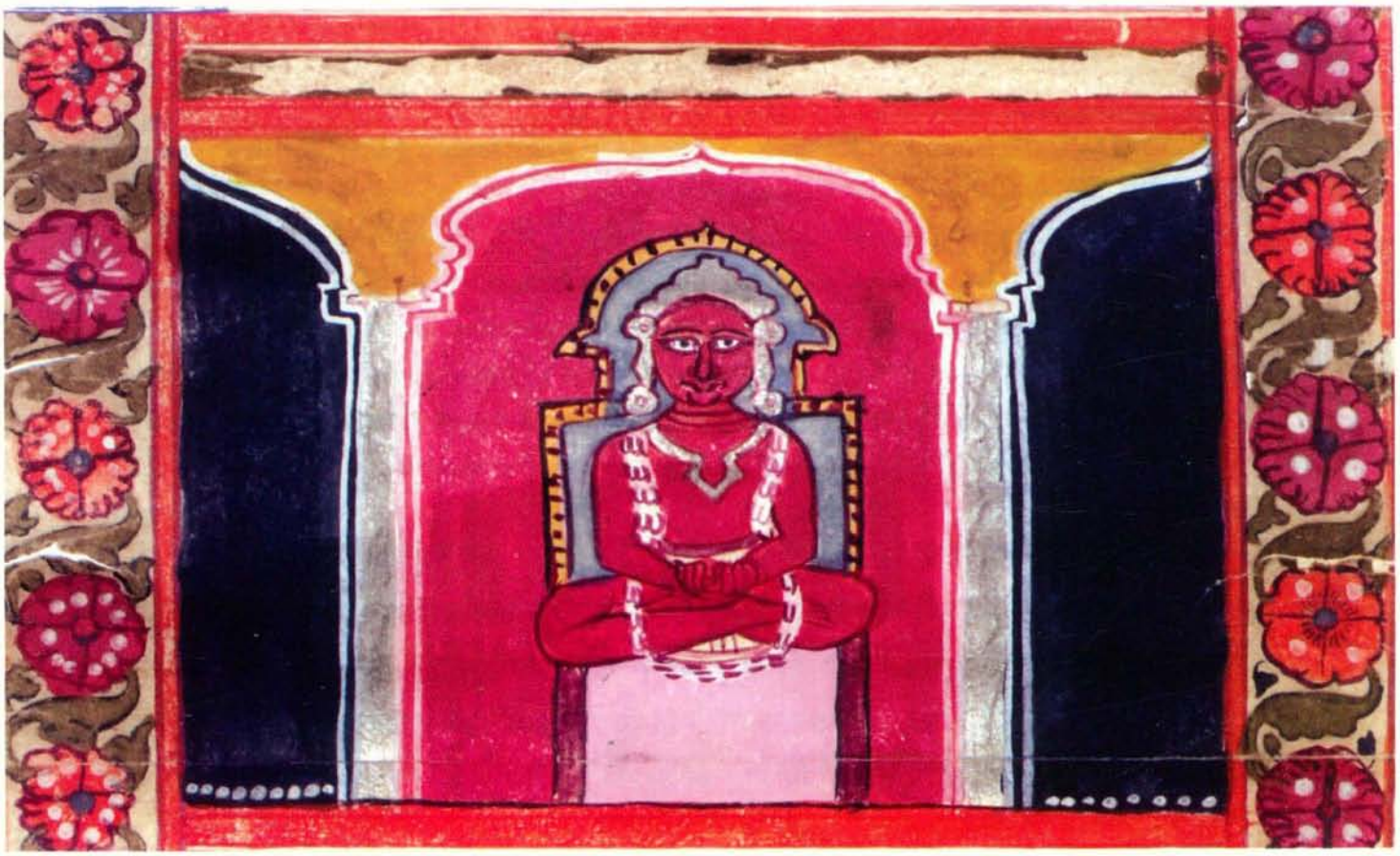

12. Śrī Vāsupūjyajī

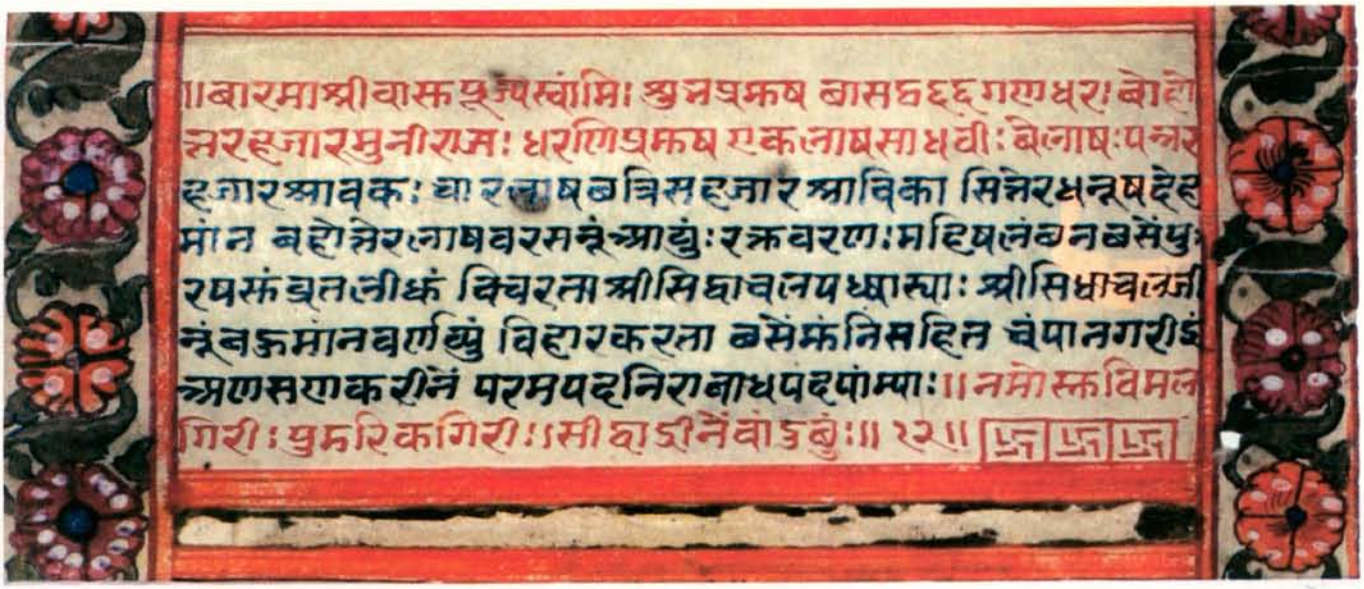

मूल पाठ

बारमा श्री वासुपूज्य स्वांमिः।

श्रुभ प्रमुख छासट्ठ 66 गणधर, बोहोत्तर हजार मुनीराजः, धरणि प्रमुख एक लाख साधवीः, बे लाखः पन्नर हजार श्रावकः, चार लाख छत्रिस हजार श्राविका। सित्तेर धनूष देहमांन, बहोत्तेर लाख वरसनुं आयुंः। रक्त वरणः, महिष लंछनं, छसें पुरुष सुं व्रत लीधुं। विचरतां श्री सिधाचल पध्यारयाः। श्री सिधाचलनुं बहुमांन वर्णव्युं। विहार करतां छसें मुनि सहित चंपानगरीइं अणसण करीने परम पद निराबाध पद पाम्यां। नमोस्तु विमलगिरीः, पुंडरिकगिरीः सीधाद्रीनें वांदु छुंः।12।

卐卐卐

हिन्दी अनुवाद

12. वासुंपूज्यजी

आपके परिवार में श्रुभ (सुधर्मा) प्रमुख 66 गणधर थे। 72,000 साधु, धरणी प्रमुख 1,00,000 साध्वियां, 2,15,000 श्रावक और 4,36,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 70 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण रक्त है। आपका लांछन महिष है। आपकी आयु पूरे 72 लाख वर्ष की थी।

विचरण करते आप सिद्धाचलजी पर पधारें। अपनी देशना में आपने सिद्धाचलजी का माहात्म्य सविस्तार दर्शाया। अपना मोक्षकाल समीप जानकर आप 600 मुनियों के साथ चंपानगर पधारे। वहां आपने 600 मुनियों के साथ अनशन व्रत ग्रहण किया। शेष कर्मों का क्षय करके आपने परमपद निर्वाण प्राप्त किया।

विमलगिरि, पुंडरीकगिरि, सिद्धाद्री को भावपूर्वक वंदन।

बारहवें तीर्थंकर श्रीवासुपूज्यजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

//bāramā śrīVāsupūjya-svāṃmiḥ Śubha-pramuṣa chāsaṭṭha 66 gaṇadhara, bohottara hajāra munirājaḥ, Dharaṇi-pramuṣa eka lāṣa sādhavīḥ, be lāṣa pannara hajāra śrāvakaḥ, cāra lāṣa chatrisa hajāra śrāvikā, sittera dhanuṣa deha-māṃna, bahottera lāṣa varasa nūṃ āyuṃḥ, rakta-varaṇaḥ, mahiṣa-laṃchana. cha seṃ puraṣa suṃ vrata līdhuṃ. vicaratā śrīSiddhācala padhyāryāḥ. śrīSidhācalajī nūṃ bahu-māṃna varṇavyuṃ. vihāra karatā cha seṃ muṃni-sahita Caṃpā-nagarīiṃ aṇasaṇa karīneṃ, parama-pada nirābādha-pada pāṃmyāḥ // namo stu Vimalagirīḥ Puṇḍarika-girīḥ // Sīddhādrī neṃ vāṃdu chuṃ // 12 // [*3 svastikas*].

१३.

श्री विमलनाथजी

13. Śrī Vimalanāthajī

मूल पाठ

हवे तेरमाः विमलनाथ परमेश्वरजीः।

एक सहस्र पुरुषस्युं दिक्ष्या। मंदीर प्रमुख सतावन गणधर, (अ)डसट्ठ हजार मुंनिः, एक लाख आठसें साधवी, बे लाख आट्ठ हजारः श्रावक, च्यार लाख चोविस हजार श्राविका। साठ धनुष देहमांन, साठ लाख वरसनुं आयुंः, हेम वरण, सुअर लंछनः, विहार करतां विमलगिरीइं पधारया, सिधगिरीनो वर्णव करी, विचरता श्री समेतसिखरेजी उपरें अणसण करी छ हजार मुनिराजस्युं सिधपदेने वरया। एहवा श्री विमल परमेस्वरजी नें नमस्कार हज्योः। नमोस्तु सिधगिरीः पुंडरिकगिरिने वांदु छुं।13। श्रीः। श्रीः

हिन्दी अनुवाद

13. विमलनाथजी

आपने 1,000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में मंदीर (मन्दर) प्रमुख 57 गणधर थे। 68,000 साधु, 1,00,800 साध्वियां, 2,08,000 श्रावक और 4,24,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 60 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण हेम (सुवर्ण) हैं। आपका लांछन सुअर (वराह) है। आपकी कुल आयु पूरे साठ लाख साल की थी।

विचरण करते हुए आप विमलजी पधारे। वहां आपने सिद्धगिरि का माहात्म्य दर्शाया। अपना निर्वाण काल समीप जानकर छः हजार मुनियों के साथ आपने अनशन व्रत ग्रहण किये और मोक्ष प्राप्त किया।

सिद्धगिरि, पुंडरीकगिरि को भावपूर्वक वंदन।

तेरहवें तीर्थंकर श्री विमलनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

//haveṃ teramāḥ Vimalanātha-parameśvarajīḥ eka sahasra puruṣa syuṃ dikṣyāḥ. Mandīra-pramuṣa satāvana gaṇadhara, (a)ḍasaṭṭha hajāra muṃniḥ, eka lāṣa āṭha seṃ sādhavī, be lāṣa āṭṭha hajāra śrāvakaḥ, cyāra lāṣa covisa hajāra śrāvikā, sāṭṭha dhanuṣa deha-māṃna, sāṭṭha lāṣa varasa nuṃ āyuṃḥ, hema-varaṇa, suara-laṃchanaḥ. vihāra karatā Vimalagirīiṃ padhāryā. Sidhagirī no varṇava karī, vicaratā śrīSameta-siṣarejī upareṃ aṇasaṇa karī, cha hajāra muni-rāja syuṃ sidha-padeṃ neṃ varyā. ehavā śrīVimala-parameṃsvarajī neṃ / namaskāra hajyoḥ namo stu Sidhagirīḥ Puṃḍarikagiri neṃ vāṃduṃ chuṃḥ // 13 // śrīḥ // śrīḥ //

१४.
श्री अनंतनाथजी

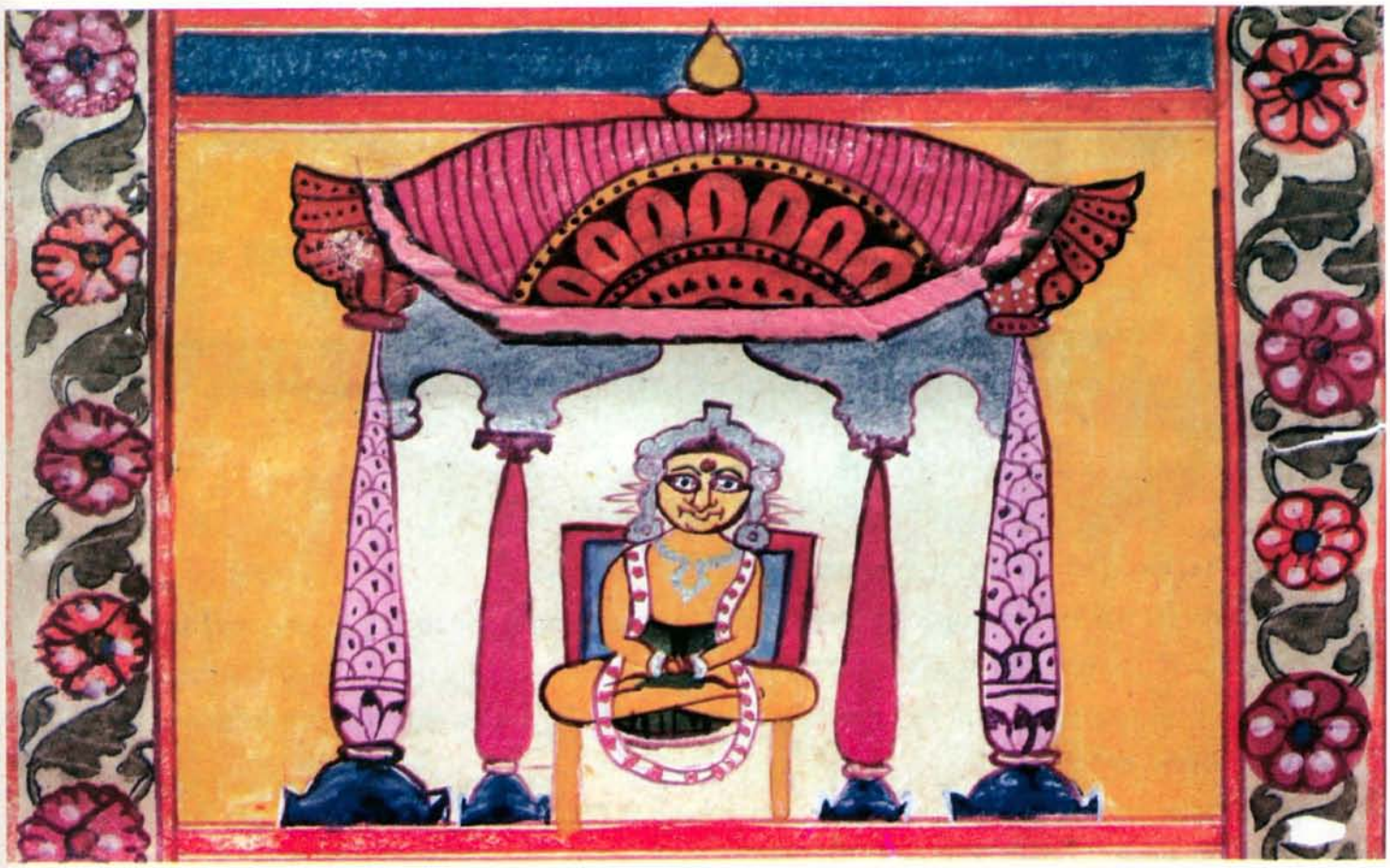

14. Śrī Anantanāthajī

मूल पाठ

हवे चोउदमाः अनंतनाथ भगवान्ः।

एक हजार पुरुष स्युं व्रत लिधुं। जस प्रमुख पंचास गणधर, पचास हजार मुनि, पद्मावति प्रमुख बासट्ठ हजार साधवी, बे लाख हजार श्रावक, च्यार लाख दस हजार श्राविका। पचास धनूष देहमांन। त्रिस लाख वरसनूं आयु, कंचन वर्ण, सिंचाणो लंछन, विचरता श्री सिधाचलजीइं आव्या। श्री वीमलाचल, वर्णवि विहार करतां सात हजार पुरुषस्युं श्रीसमेतसिखरें सिधपद वर्‌या। श्री अनंतनाथ जिनेश्वरनें वांदु छुं। नमोस्तु सकल तीर्थराजने पुंडरिक गिरिराजने नमस्कार होज्यो।14।

हिन्दी अनुवाद

14. अनंतनाथजी

आपने 1,000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में जश (यश) प्रमुख 50 गणधर थे। 50,000 साधु, पद्मावती प्रमुख 62,000 साध्वियां, 2,06,000 श्रावक और 4,10,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 50 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कंचन (सुवर्ण) है। आपका लांछन सिंश्येन है। आपकी कुल आयु पूरे तीस लाख साल की थी।

विचरण करते हुए आप श्रीसिद्धाचलजी पधारें। अपनी देशना में विमलाचल की महिमा प्ररूपित की। अपना निर्वाण समय नजदीक जानकर आपने 7,000 साधुओं के साथ सम्मेतशिखर पर एक मास का अनशन व्रत ग्रहण किया और निर्वाण प्राप्त किया।

सकल तीर्थराज श्री पुंडरीक गिरिराज को भावपूर्वक वंदन।

चौदहवें तीर्थंकर श्री अनंतनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

// haveṃ coudamāḥ Anantanātha-bhagavānḥ eka hajāra puruṣa syuṃ vrata lidhuṃ. Jasa-pramuṣa pacāsa gaṇadharaḥ, pacāsa hajāra muniḥ, Padmāvati-pramuṣa bāsaṭṭha hajāra sādhavī, be lāṣa cha hajāra śrāvaka, cyāra lāṣa dasa hajāra śrāvikā, paṃcāsa dhanūṃṣa deha-māṃna, trisa lāṣa varasa-nūṃ āyuṃ, kaṃcana-varṇa, siṃcāṇo-laṃchana. vicaratā śrīSidhācalajīiṃ āvyā. śrīVīmalācala varṇavi vihāra karatā sāta hajāra puruṣa suṃ śrīSameta-siṣareṃ sidha-pada varyā. śrīAnantanātha-jineśvara neṃ vāṃduṃ chuṃ. namo stu sakala tīrtha-rāja neṃ Puṇḍarika-girirāja neṃ namaskāra hojyo // 14//

१५.
श्री धर्मनाथजी

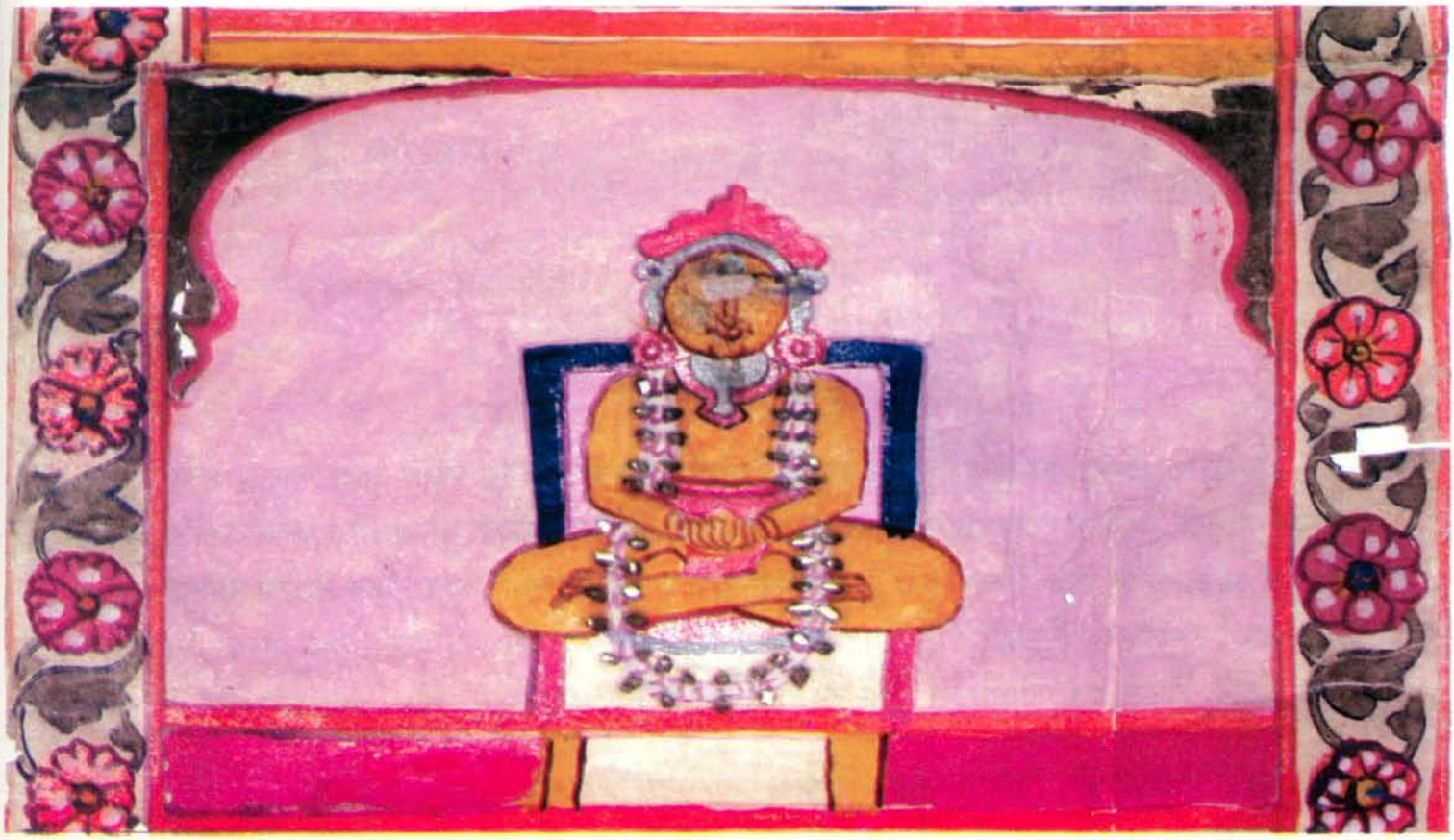

15. Śrī Dharmanāthajī

मूल पाठ

हवें पनरमा धरमनाथ स्वामिः।

एक हजार पुरुषसुं व्रत लिधुं। अरिष्ट प्रमुखः त्रेतालीस गणधर, चोसट्ठ हजार साधु, बासट्ठ हजार अने च्यारस्यें साधवी, बे लाख च्यार हजार श्रावक, चार लाख तेर हजार श्राविका। पीस्तालीस धनूंष देहमांन, दस लाख वर्ष आउं, कंचन वर्णः, वज्र लंछन। विचरतां श्री विमलगिरीइं पधार्‌या। घणां जीवनें तिर्थनो महिमा कहि, विहार करतां समतसिखरेंः आट्ठस्यें मुंनी सहीतः श्री धर्मनाथ परमेस्वर सिधपदे वरया, मोक्ष पाम्याः। नमोस्तु श्री सिधाचल, विमलाचल पर्वताय ने(न)मो नमं नमस्कार होज्योः। 15। श्रीः श्रीः।

हिन्दी अनुवाद

15. धर्मनाथजी

आपने 1000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में अरिष्ट प्रमुख 43 गणधर थे। 64,000 साधु, 62,400 साध्वियां, 2,04,000 श्रावक और 4,13,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 45 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कंचन (सुवर्ण) है। आपका लांछन वज्र है। आपकी आयु पूरे दस लाख वर्ष की थी।

विचरण करते हुए आप विमलगिरिजी पधारें। अपनी देशना में भव्य जीवों को तीर्थ महिमा दर्शाया। अपना निर्वाण समय नजदीक जानकर 800 मुनियों के साथ सम्मेतशिखर पहुंचे। वहाँ आपने अनशन व्रत ग्रहण किये और परमपद–मोक्षपद प्राप्त किया।

श्री सिद्धाचल, विमलाचलजी को भावपूर्वक वंदन।

पन्द्रहवें तीर्थंकर श्रीधर्मनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

// haveṃ panaramā Dharamanātha-svāmiḥ eka hajāra pūruṣa suṃ vrata lidhuṃ. Ariṣṭa-pramuṣaḥ tretālīsa gaṇadhara, cosaṭṭha hajāra sādhu, bāsaṭṭha hajāra aneṃ cyāra syeṃ sādhavī, be lāṣa cyāra hajāra śrāvaka, cāra lāṣa tera hajāra śrāvikā, pīstālīsa dhanūṣa deha-māṃna, dasa lāṣa varṣa āuṃ, kaṃcana-varṇaḥ, vajra-laṃchana. vicaratā śrīVimalagirīiṃ padhāryā. ghaṇā jīva neṃ tirtha no mahimā kahi. vihāra karatā Samata-siṣareṃḥ āṭṭha syeṃ munī sahīta śrīDharmanātha-paramesvara sidha-pade vaṃryā. mokṣa pāṃmyāḥ. namo stu śrīSiddhācala Vimalācala parvatāya nemo nama namaskāra hojyoḥ // 15//

१६.

श्री शांतिनाथजी

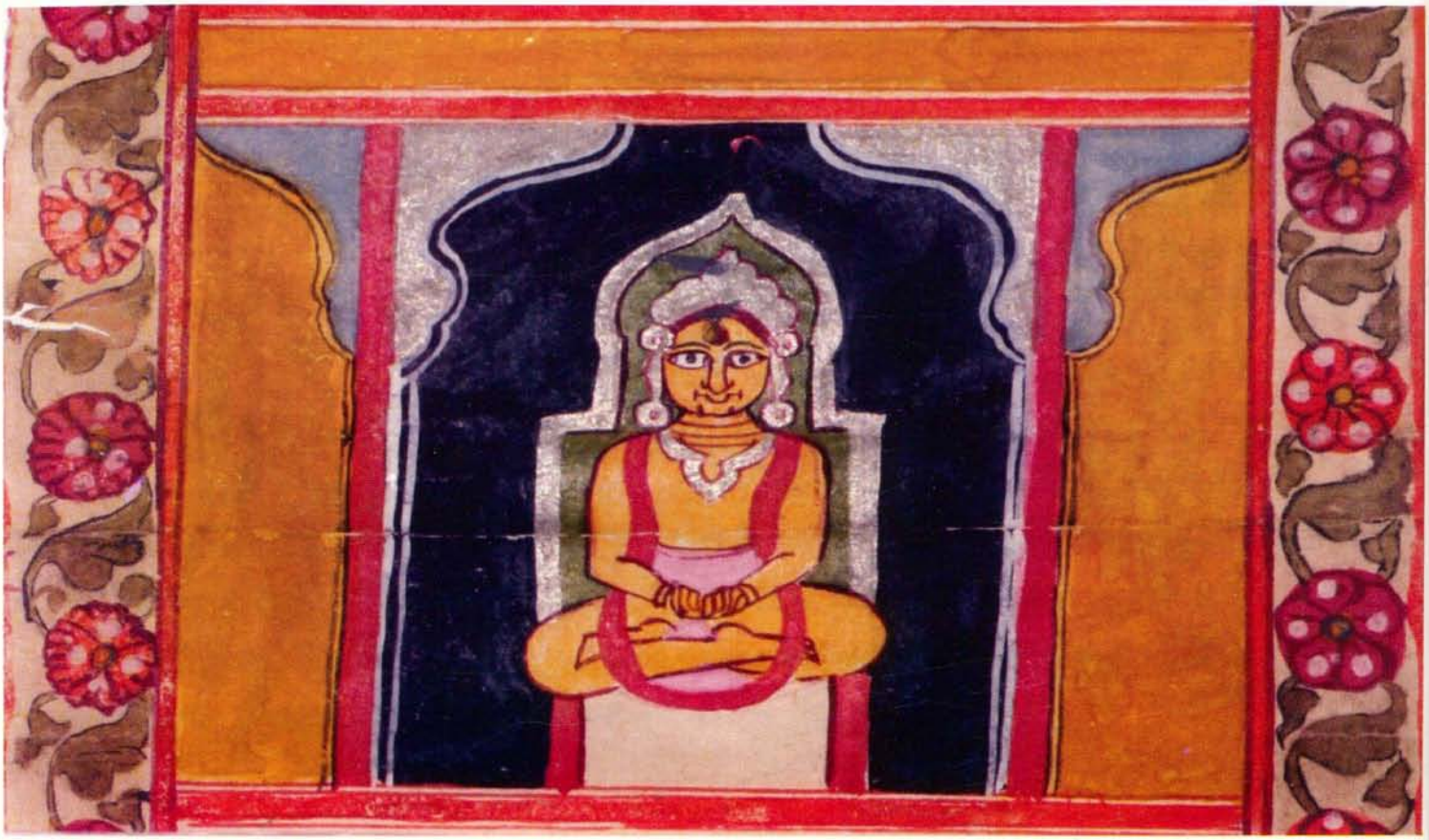

16. Śrī Śāntināthajī

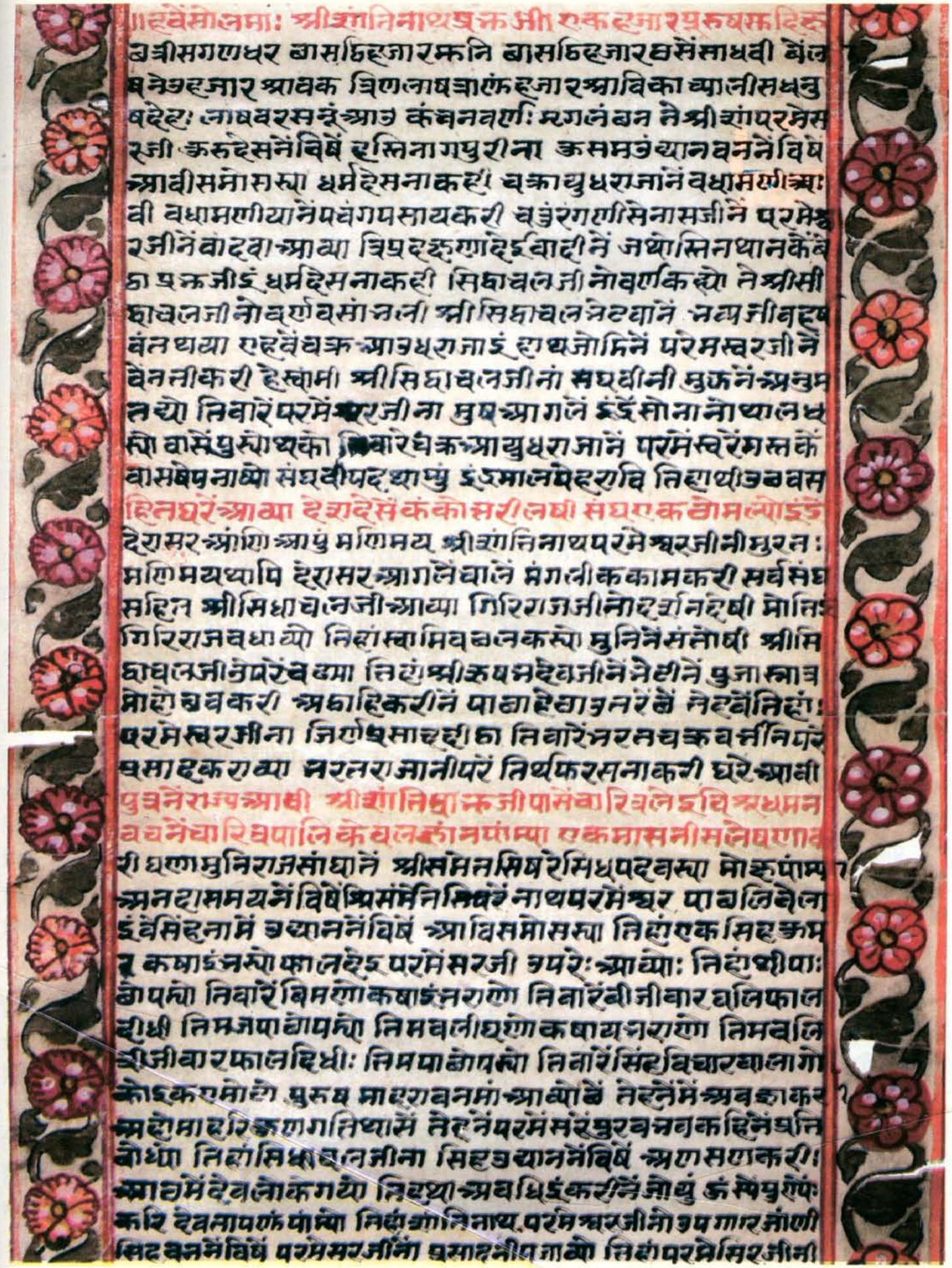

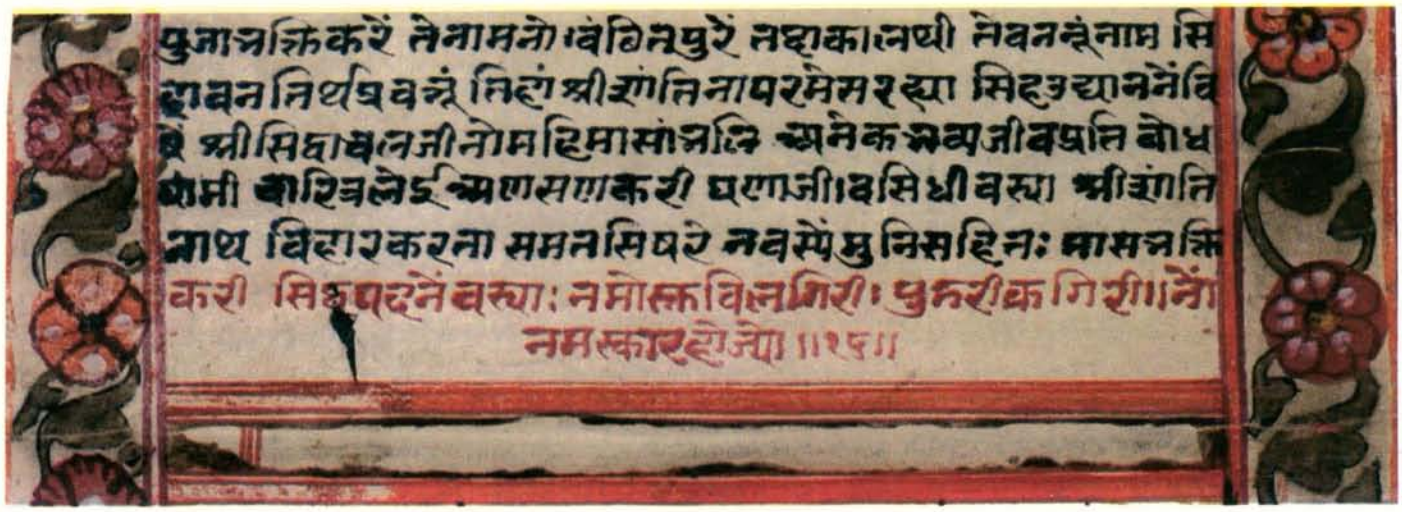

मूल पाठ

हवे सोलमाः श्री शांतिनाथ प्रभुजी।

एक हजार पुरुषसुं दिक्षा। छत्रीस गणधर, बासट्ठि हजार मुनि, बासट्ठि हजार छसें साधवी, बें लाख नेउ हजार श्रावक, त्रिण लाख त्राणुं हजार श्राविका। च्यालीस धनूष देहः, लाख वरसनूं आउं, कंचन वर्ण, मृग लंछन।

ते श्री शां(ति) परमेसरजी कुरुदेशनें विषें, हस्तिनागपुरीना कुसुम उंद्यान वननें विषे आवी समोसरया। धर्मदेसना कही। चक्रायुध राजाने वधामणी आवी। वधामणीयाने पचंग पसाय करी चतुरंगणी सेना सजीनें, परमेसरजीने वांदवा आव्या। त्रिप्रदक्षणा देई वांदीनें जथोस्तित थानकें बेट्ठा। प्रभुजीइं धर्मदेशना कही। सिधाचलजीनो वर्ण(व) कह्यो। ते क्षा सीद्धाचलजीनो वर्णव सांभली, श्री सिधाचल भेटवानें भव्य जीव हर्षवंत थया। एहवें चक्रआउध राजाइं हाथ जोडिनें परमेस्वरजीने विनंती करी, ''हे स्वामी! श्री सिधाचलजीनां संघवीनी मुझने अनुमत द्यो।'' तिवारें परमेश्वरजीनां मुख आगलें इंद्रे सोनानो थाल धरयो, वांसे पुरयो थको, तिवारें चक्रआयुध राजानें परमेंस्वरें मस्तकें वासखेप नाख्यो। संघवी पद थाप्युं। इंद्रमाल पेहरावि, तिहांथी उछव सहित घरें आव्या। देशदेसें कंकोत्तरी लखी। संघ एकठो मलयो। इंद्रे देरासर आंणि आपुं। मणिमय श्री शांतिनाथ परमेश्वरजीनी मुरतः मणिमय थापि देरासर आगलें चालें। मंगलीक काम करी सर्व संघ सहित श्री सिधाचलजी आव्या। गिरिराजानो दर्शन देखी मोतिइं गिरिराज वधाव्यो। तिहां स्वामिवछल करयो। मुनिने संतोषी श्री सिधाचलजी उपरें चढ्या। तिहां श्री ऋषभदेवजी नें भेटीनें पुजा-स्नात्र मोहोछव करी, अट्ठाहि करीने पाछा हेठा उतरें छें, तेहवें तिहां परमेस्वरजीना जिर्ण प्रसाद दीट्ठा। तिवारें भरत चक्रवर्त्तीनि परें प्रसाद कराव्या। भरत राजानी परें तिर्थ फरसना करी घरे आवी पुत्रने राज्य आपी, श्री शांतिप्रभुजी पासे चारित्र लेइ विश्रूध मन वचनें चारित्र पालि केवलज्ञांन पांम्या। एक मासनी संलेखणा करी घणा मुनिराज सांघाते श्री समेतसिखरे सिधपद वरयां, मोक्ष पाम्यां।

अनदा समयनें विषे श्रि संतिनाथ परमेश्वर पाछलि वेलाइं सिंह नामें उद्यान नें विषें आवि समोसरयां। तिहां एक सिंहकुमर कषाइ भरयो फाल देइं परमेंसरजी उपरेंः आव्यो। तिहांथी पाछो पड्यों तिवारें बिमणो कषाइं भराणो। तिवारें बीजी वार वलि फाल दीधीः, तिम ज पाछो पड्यों। तिम वली घणो कषाय भराणो। तिम वलि त्रीजी वार फाल दिधी, तिम पाछो पड्यो। तिवारें सिंह विचारवा लागो, ''कोईक ए मोटो पुरुष माहरां वनमां आव्यो छे, तेहने में अवज्ञा करी। अहो! माहरि कुण गति थासें?'' तेहने परमेसरें पुरवभव कहिनें प्रतिबोध्यो। तिहां सिधाचलजीना सिंह उद्यानने विषे अणसण करी। आठमे देवलोके गयो। तिहथी अवधिइं करीनें जोयुं। हु स्यें पुण्यें करि देवतापणुं पाम्यो। तिहां शांतिनाथ परमेश्वरजीनो उपगार जांणी सिंहवननें विषें परमेसरजीनो प्रसाद नीपजाव्यो। तिहां परमेसिरजीनी पुजा भक्ति करें, तेना मनोवंछित पुरें। तदाकालथी ते वननूं नाम 'सिंहवन तिर्थ' प्रवत्तूं।

तिहां श्री शांतिना(थ) परमेसर रह्या सिंह उद्यानने विषे, श्री सिधाचलजीनो महिमा सांभलि, अनेक भव्य जीव प्रतिबोध पांमी चारित्र लेई अणसण करी घणा जीव सिधी वर्‌या। श्री शांतिनाथ विहार करतां समतसिखरें नवस्यें मुनि सहितः मास भक्ति करी सिधपदने वरयाः। नमोस्तु वि(म)लगिरीः, पुडरीकगिरी ने नमस्कार होज्यो।16।

हिन्दी अनुवाद

16. शांतिनाथजी

आपने 1000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में 36 गणधर थे, 62,000 साधु, 62,600 साध्वियां, 2,90,000 श्रावक और 3,93,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान चालीस धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कंचन है। आपका लांछन मृग है। आपकी आयु पूरे एक लाख वर्ष की थी।

विचरण करते हुए क्रमशः आप कुरुदेश के हस्तिनागपुरी के कुसुम नामक उद्यान में पधारें। चक्रायुध राजा को प्रभु के शुभागमन की बधाईयां दी गई। राजा ने उसको पंचांग द्रव्य से प्रतिलाभित किया। अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ प्रभु दर्शनार्थ आये। तीन प्रदक्षिणा–वंदन विधि करके यथोचित स्थान ग्रहण किया। प्रभु ने देशना में सिद्धाचलजी का माहात्म्य निरुपित किया। चक्रायुध नृप भी वहां दर्शनार्थ जाने हेतु उत्सुक हो गये। उन्होंने प्रभु से संघवी पदवी की अनुमति के लिए विनम्र विनती की। इन्द्र ने प्रभु समक्ष वासक्षेप, इंद्रमाला इत्यादि युक्त सुवर्णथाल प्रस्तुत किया। प्रभु ने राजा के मस्तक पर वासक्षेप से और गले में इन्द्रमाला पहनाकर संघवी पद पर नियुक्त किया। चक्रायुध अपने घर वापिस लौटे, हर्षोत्सव किया। विविध देशों में निमंत्रण पत्रिकाएं भेजकर समस्त संघ को आमंत्रित किया। इंद्र देरासर ले आए, जिसमें शांतिनाथ प्रभु की मणिमय प्रतिमा का स्थापन किया। आगे प्रभु की मंगलमय मूर्तियुक्त देरासर और पीछे चतुर्विध संघ सिद्धाचलजी पहुंचे। सुवर्ण–मोती से तीर्थ का पूजन किया। स्वामी–वात्सल्य किया। प्रभु की पूजा, अर्चना, भक्ति, स्नात्र–पूजा इत्यादि धार्मिक क्रिया से विविध अट्ठाई महोत्सव सम्पन्न किये। वहां रास्ते में परमेश्वरजी के जीर्ण प्रासाद देखकर भरत चक्रवर्ती की तरह नये प्रासाद का निर्माण किया, तीर्थोद्धार किया। घर वापिस लौटे और पुत्र को राज्यभार सौंपकर स्वयं चारित्र ग्रहण किया। विशुद्ध मन से चारित्र पालन किया। संयमाराधना–तपाराधना की। अनेक मुनियों के साथ एक मास का अनशन, संलेखना के साथ सिद्धपद प्राप्त किया।

क्रमशः विचरण करते प्रभु वेलाइंसिंह नामक उद्यान में पहुंचे। वहां एक सिंह कषाय से प्रेरित प्रभुजी पर उछलने के लिए दौड़ा, कूदने लगा, फिर वह सफल नहीं हो पाया, जिससे वह और क्रोधित हो उठा। उसने दुगुना बल लगाकर प्रभु पर वार करने का प्रयत्न किया फिर भी वह निष्फल रहा। अब तो क्रोध की सीमा न रही थी। अपना समग्र बल इकट्ठा करके झपका, फिर भी वही निष्फलता। सोचने लगा, ''यह कोई महापुरुष हैं। मैंने उनकी विराधना–अवज्ञा की है। यह मेरी बड़ी गलती है। अवश्य मुझे दुर्गति मिलेगी।'' प्रभुजी ने उसे अपने पूर्वजन्म से अवगत करवाया। उसे पूर्वजन्म का स्मरण हुआ। प्रभु की देशना से प्रतिबोधित होकर अनशनव्रत अंगीकार किया और आठवें देवलोक में देवत्व प्राप्त किया।

अवधिज्ञान से अपने पूर्वजन्म–सिंहजन्म को देखा। शांतिनाथ प्रभुजी के दर्शन किये और उनकी कृपा उपकार से ही यह देवलोक प्राप्त हुआ है, ऐसा जाना। वहां उसने शांतिनाथ जिन के मन्दिर का निर्माण किया और प्रभु की मणिमय मूर्ति की स्थापना की। वहां की विशेषता है कि जो भक्त सच्चे दिल से शांतिनाथ जिन की पूजा–अर्चना करते हैं, उनकी सर्व कामनाएं पूर्ण होती हैं। इसी समय से इस वन का नामकरण सिंहवन हुआ है।

वहां शांतिनाथ जिन ने धर्मदेशना कही। उन्होंने सिद्धाचलजी की महिमा प्ररूपित की। अनेक भव्य जीव इससे प्रतिबोधित हुए। उन्होंने चारित्र ग्रहण किया, व्रताराधना की। अंत समय में अनशन व्रत अंगीकार किया और मोक्षपद प्राप्त किया।

विचरण करते हुए आप 100 मुनियों के साथ समेतशिखरजी पहुंचे। वहां आपने अनशन व्रतादि व्रताराधना की और सिद्धपद–मोक्षपद प्राप्त किया।

श्रीविमलगिरि, पुंडरीकगिरि को भावपूर्वक वंदन।

सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

haveṃ solamāḥ śrīŚāntinātha-prabhujī eka hajāra puruṣa su dikṣā. chatrīsa gaṇadhara, bāsaṭṭhi hajāra muni, bāsaṭṭhi hajāra cha seṃ sādhavī, beṃ lāṣa neu hajāra śrāvaka, triṇa lāṣa trāṇuṃ hajāra śrāvikā, cyālīsa dhanuṣa dehaḥ, lāṣa varasa nūṃ āu, kaṃcana-varṇaḥ, mṛga-laṃchana.

te śrīŚāṃ(ti)-paramesarajī Kuru-desa neṃ viṣeṃ Hastināgapurī nā Kusama-uṃdyāna vana neṃ viṣeṃ āvī samosaryā. dharma-desanā kahī. Cakrāyudha rājā neṃ vadhāmaṇī āvī. vadhāmaṇīyā neṃ pacaṃga pasāya karī caturaṃgaṇī senā sajīneṃ parameśvarajī neṃ vādavā āvyā. tri pradakṣaṇā deī vā(ṃ)dī neṃ jatostita[5]-thānakeṃ beṭṭhā. prabhujīiṃ dharma-desanā kahī. Siddhācalajī no varṇa kahyo. te śrīSiddhācalajī no varṇava sāṃbhalī śrīSiddhācala bheṭavā neṃ bhavya-jīva harṣavanta thayā. ehaveṃ Cakraāudha-rājāiṃ hātha joḍineṃ paremasvarajī neṃ vinatī karī "he svāṃmī, śrīSiddhācalajī nāṃ saghavī nī mujha neṃ anumata dyo". tivāreṃ parameṃśvarajī nā muṣa āgaleṃ indreṃ sonā no thāla dharyo. vāseṃ puryo thako tivāreṃ Cakraāyudha-rājā neṃ parameṃsvareṃ mastake vāsa-ṣepa nāṣyo. saṃghavī-pada thāpyuṃ. iṃdra-māla peharāvi, tihā thī uchava sahita ghareṃ āvyā. deśa dese kaṃkotarī laṣī. saṃgha ekaṭho malyo. indreṃ derāsara āṃṇi āpuṃ. maṇimaya śrīŚāntinātha-parameśvarajī nī murata maṇimaya thāpi, derāsara āgaleṃ cāleṃ. maṃgalīka kāma karī sarva saṃgha-sahita śrīSidhācalajī āvyā. girirājajī no darśana deṣī motīiṃ girirāja vadhāvyo. tihāṃ svāmivachala karyo. muni neṃ saṃtoṣī śrīSiddhācalajī upareṃ caḍhyā. tihāṃ śrīṚṣabhadevajī neṃ bheṭī neṃ pujā snātra māhochava karī, aṭṭhāhi karīneṃ, pāchā heṭhā utareṃ cheṃ. tehaveṃ tihāṃ paramesvarajī nā jīrṇa prasāda dīṭṭhā. tivāreṃ Bharata-cakravarttī ni pareṃ prasāda karāvyā. Bharata-rājā nī pareṃ tirtha-pharasanā karī. ghare āvī putra neṃ rājya āpī, śrīŚāntiprabhujī pāseṃ cāritra lei, viśudha mana vacaneṃ cāritra pāli kevala-jñāna pāṃmyā. eka māsa nī saleṣaṇā karī. ghaṇā munirāja sāṃghāteṃ śrīSameta-siṣare sidha-pada varyā, mokṣa pāṃmya.

anadā samaya neṃ viṣeṃ śrīSantinātha parameśvara pāchali velāiṃ Siṃha nāmeṃ udyāna neṃ viṣeṃ āvi samosaryā. tihāṃ eka siha-kumara kaṣāiṃ bhaṃryo phāla dei parameṃsarajī upareḥ āvyoḥ. tihāṃ thī pācho paḍyo. tivāreṃ vimaṇo kaṣāiṃ bharāṇo, tivāreṃ bījī vāra vali phāla dīdhī. tima ja pācho paḍyo. tima valī ghaṇo kaṣāya bharāṇo, tima vali trījī vāra phāla dīdhiḥ. tima pācho paḍyo. tivāreṃ siṃha vicāravā lāgo "koika e moṭo puruṣa māharā vana māṃ āvyo cheṃ. tehaneṃ meṃ avajñā karī aho māhari kuṇa gati thāseṃ?" tehaneṃ parameṃsareṃ purava-bhava kahineṃ pratibodhyo. tihāṃ Sidhācalajī nā Siha-udyāna neṃ viṣeṃ aṇasaṇa karī āṭhameṃ devaloke gayo. tiha thī avadhiiṃ karīneṃ joyuṃ "huṃ syeṃ puṇye kari devatāpaṇuṃ pāṃmyo?" tihāṃ Śāntinātha-parameśvarajī no upagāra jāṃṇī Siṃha-vana neṃ viṣeṃ paramesarajī noṃ prasāda nīpajāvyo. tihāṃ paramesirajī nī pujā bhakti kareṃ te nā mano-vaṃchita pureṃ. tadā kāla thī te vana nūṃ nāma Siha-vana tirtha pravattūṃ.

tihāṃ śrīŚāṃtinā(tha)-paramesara (ra)hyā. Siha-udyāna neṃ viṣeṃ śrīSiddhācalajī no mahimā sāṃbhali aneka bhavya-jīva pratibodha pāmī, cāritra leī aṇasaṇa karī, ghaṇā jīva sidhī varyā. śrīŚāṃtinātha vihāra karatā Samata-siṣare nava sye muni-sahitaḥ māsa-bhakti karī, siddha-pada neṃ varyāḥ. namo stu Vi(ma)lagirīḥ Puṇḍarīkagiri // ne namaskāra hojyo //16//

5 For Skt. *yathocita*.

१७.

श्री कुंथुनाथजी

17. Śrī Kuntunāthajī

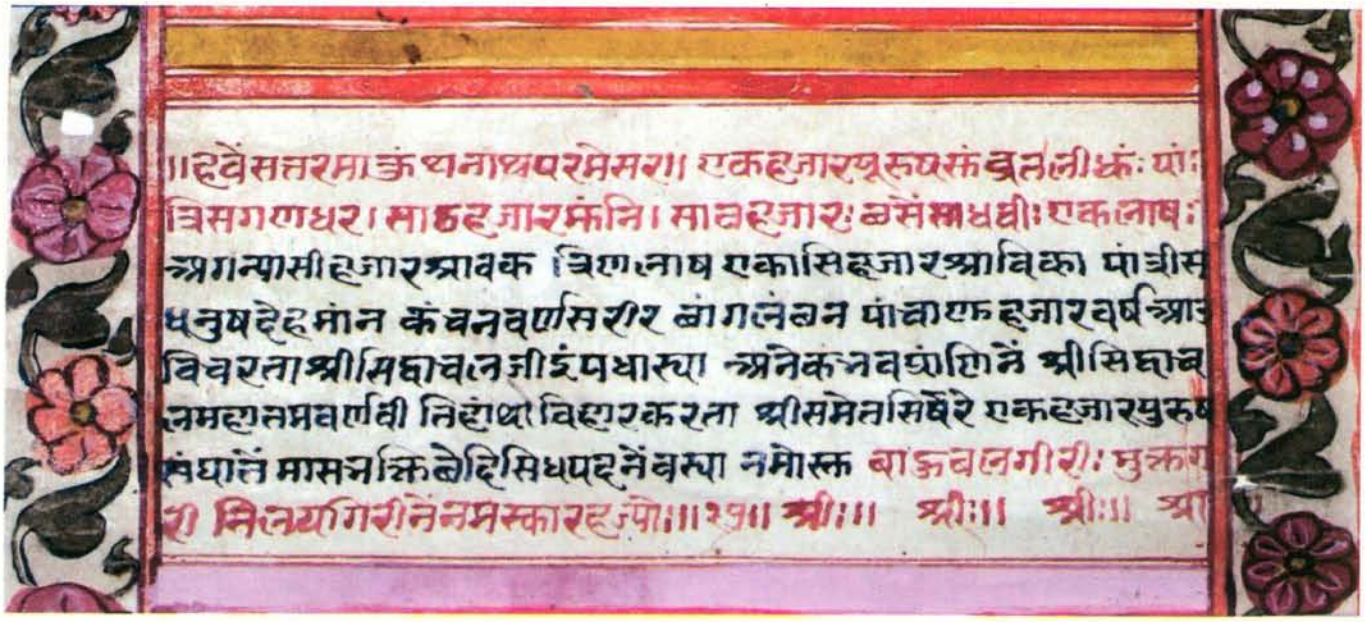

मूल पाठ

हवे सत्तरमा कुंथनाथ परमेसर।

एक हजार पुरुष सुं व्रत लीधुः। पांत्रिस गणधर, साइ हजार मुंनि, साइ हजार छसें साधवी, एक लाख अगन्यासी हजार श्रावक, त्रिस लाख एकासि हजार श्राविका। पांत्रीस धनूष देहमांन, कंचन वर्ण सरीर, छांग लंछन, पांचाणुं हजार वर्ष आउं। विचरतां श्री सिद्धाचलजीइं पधारया। अनेक भव प्रांणिनें श्रीसिद्धाचल महात्तम वर्णवी तिहांथी विहार करतां श्री समेतसिखरें एक हजार पुरष संघाते मास भक्ति छेदि सिधपदनें वरया। नमोस्तु बाहुबलगीरीः मुक्तगीरी, निलयगिरीनें नमस्कार हज्यो।17। श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः।

हिन्दी अनुवाद

17. कुंथुनाथजी

आपने 1,000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में स्वयम्भू (शम्ब) प्रमुख 35 गणधर थे। 60,000 साधु, 60,600 साध्वियां, 1,79,000 श्रावक और 3,81,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 35 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कंचन (सुवर्ण) है। आपका लांछन छाग (अज) है। आपकी कुल आयु 95,000 वर्ष थी।

विचरण करते हुए आप सिद्धाचलजी पधारें। अपना निर्वाण काल समीप जानकर छः हजार मुनियों के साथ आपने अनशन व्रत ग्रहण किया और मोक्षपद प्राप्त किया।

श्री बाहुबलगिरि, पुंडरीकगिरि, निलयगिरि को भावपूर्वक वंदन।

सत्रहवें तीर्थंकर श्री कुंथुनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

// haveṃ sattaramā Kunthanātha-paramesara // eka hajāra pūruṣa suṃ vrata līdhuṃ. pāṃtrisa gaṇadhara, sāṭṭha hajāra muṃnī, sāṭha hajāraḥ cha seṃ sādhavīḥ, eka lāṣa aganyāsī hajāra śrāvaka, triṇa lāṣa ekāsi hajāra śrāvikā, pāṃtrisa dhanuṣa deha-māṃna, kaṃcana-varṇa-sarīra, chāṃga-laṃchana, pāṃcāṇu hajāra varṣa āu. vicaratā śrīSiddhācalajīiṃ padhāryā. aneka bhava-prāṃṇi neṃ śrīSiddhācala mahātama varṇavī, tīhāṃ thī vihāra karatā śrīSameta-siṣare eka hajāra puruṣa saṃghāteṃ māsa-bhakti chedi, sidha-pada neṃ varyā. namo stu Bāhubalagīrīḥ Muktigirī Nilaya-girī neṃ namaskāra hajyoḥ // 17// śrīḥ // śrīḥ // śrīḥ //śrī

१८.

श्री अरनाथजी

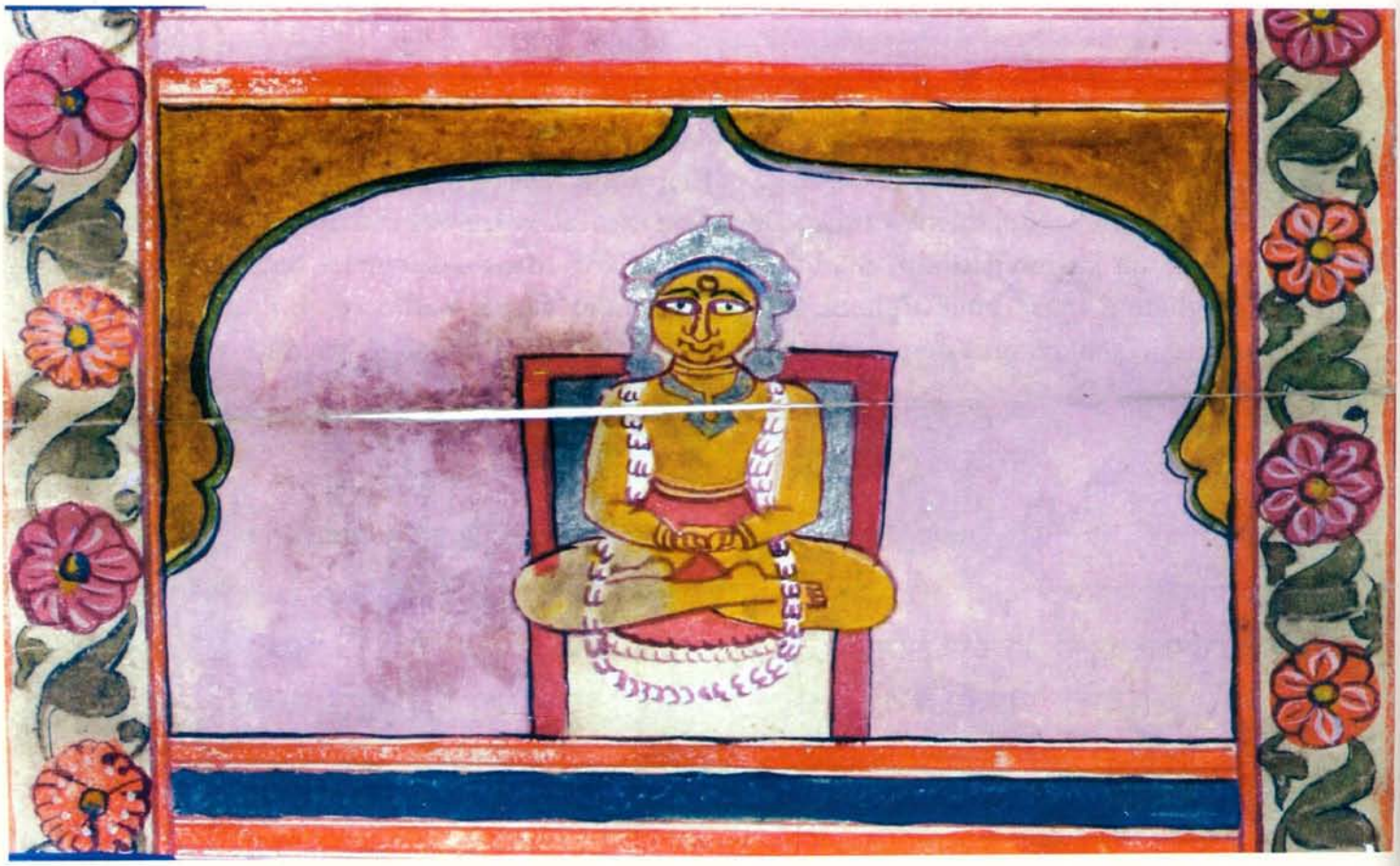

18. Śrī Aranāthajī

मूल पाठ

हवे अढारमाः अरनाथ भगवानः।

एक हजार पुरुष संघातेः व्रत, तेत्रीस गणधरः, पांचास हजार मुनीः, साढ्ढ हजार साधवीः, एक लाख चोरासी हजार श्रावकः, त्रिण लाख बहोतर 72 हजार श्राविकाः। त्रिस धनुष देहमांन, चोरासि हजारं वर्ष आयुः, कंचन वर्ण, नंदावर्त्त लंछन। विचरतां श्री सिधाचलजी पधारया। घणा जीवनें सिधाचलनुं फल वर्णवी, तिहांथि वीहार करतां श्री समेतसिखरें उपरें एक हजार मुनिराजसुः मास भक्तिः अणसण करि सिधपदनें वरया। नमोस्तुः श्री सिधाचलगिरीः विमलाचलिगिरिनेंः नमस्कार होज्योः।18 माः।श्रीः श्री।

हिन्दी अनुवाद

18. अरनाथजी

आपने 1000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में 33 गणधर थे। 50,000 साधु, 60,000 साध्वियां, 1,84,000 श्रावक और 3,72,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 30 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कंचन (सुवर्ण) है। आपका लांछन नंदावर्त्त है। आपकी आयु पूरे 84,000 साल की थी।

विचरण करते हुए आप सिद्धाचलजी पधारें। अनेक भव्य जीवों को आपने सिद्धाचलजी का माहात्म्य दर्शाया। विचरण करते हुए आप सम्मेतशिखर पहुंचे। 1000 मुनियों के साथ आपने एक मास का अनशन व्रत ग्रहण किया और सिद्धपद–मोक्षपद प्राप्त किया।

श्री सिद्धाचलगिरि, विमलाचलगिरि को भावपूर्वक वंदन।

अठारहवें तीर्थंकर श्री अरनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

// haveṃ aḍhāramāḥ Aranātha-bhagavānaḥ / eka hajāra puruṣa saṃghāteṃḥ, vrata teṃtrīsa gaṇadharaḥ, pāṃcāṃsa hajāra munīḥ, sāṭṭha hajāra sādhavīḥ, eka lāṣa corāsī hajāra śrāvakaḥ, triṇa lāṣa bahotara 72 hajāra śrāvikāḥ, trisa dhanuṣa deha-māṃna, corāsi hajāra varṣa āyuḥ, kaṃcana-varṇa, nandāvartta-laṃchana. vicaratā śrīSidhācalajī padhāryā. ghaṇā jīva neṃ Sidhācala nūṃ phala varṇavī tihāṃ thī vīhāra karatā śrīSameta-siṣareṃ upareṃ eka hajāra muni-rāja suḥ māsa-bhaktiḥ aṇasaṇa kari, sidha-pada neṃ varyāḥ. namo stuḥ śrīSiddhācala girīḥ / / Vimālācaligirī neṃḥ namaskāra hojyoḥ //18 mā// śrī śrī.

१९.

श्री मल्लिनाथजी

19. Śrī Mallināthajī

॥हवेः ओगणिसमाः श्रीमल्लिनाथपरमेसरजीः॥त्रिणस्येंपुरुषसंघातें
व्रत अट्ठावीसगणधरः चालिसहजारमुंनी पंचावनहजारसाधवीः॥
एकलाखअनेंत्रासिहजारश्रावक त्रिण्यलाखसीत्तेरहजारश्राविकाः पं
चवीसधनूषदेहमांन निलवर्णः कुंभलंछन पंचावनहजारवर्षआयु
विचरताश्रीसिधाचलपधारया सास्वतोतिर्थवर्णवी श्रीसमेतसिखरें
उपरेंः पांचस्येंमुनीसंघाते॥सिधपदनेंवरया। मोक्षेंपोहताः नमोस्तुः
श्रीसिधगिरीनेंः नमोनमः॥१९॥ श्रीः श्रीः॥ श्रीः॥ श्रीः॥

मूल पाठ

हवे ओगणिसमाः श्रीमल्लिनाथ परमेसरजीः।

त्रिणस्यें पुरुष संघातें व्रत, अट्ठावीस गणधरः, चालिस हजार मुंनी, पंचावन हजार साधवीः, एक लाख अनें त्रासि हजार श्रावक, ा लाख सीत्तेर हजार श्राविका। पंचवीस धनूष देहमांन, निल वर्ण, कुंभ लंछन, पंचावन हजार वर्ष आयु, विचरतां श्री सिधाच. धारया। सास्वतो तिर्थ वर्णवी, श्री समेतसिखरें उपरें पांचस्यें मुनी संघाते सिधपदनें वरया। मोक्षें पोहतांः। नमोस्तुः श्री सिधगिरीनेंः नमोनमः।19।श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः।

हिन्दी अनुवाद

19. मल्लिनाथजी

आपने 300 पुरुषों के साथ दीक्षा अंगीकार की थी।

आपके परिवार में 28 गणधर थे। 40,000 साधु, 55,000 साध्वियां, 1,83,000 श्रावक और 3,70,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 25 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण नील है। आपका लांछन कुंभ (कलश) है। आपकी कुल आयु 55,000 वर्ष की थी।

विचरण करते हुए आप सिद्धाचलजी पधारें। भव्य जीवों को शाश्वत तीर्थ का माहात्म्य समझाया। अपना निर्वाण काल समीप जानकर 500 मुनियों के साथ सम्मेतशिखर पधारें। वहां अनशन व्रत ग्रहण किया और मोक्ष प्राप्त किया।

श्री सिद्धगिरि को भावपूर्वक वंदन।

उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

//haveḥ oganisamāḥ śrīMallinātha-paṃcāvana sarajīḥ / triṇa syeṃ puruṣa-saṃghāteṃ vrata. aṭṭhāvīsa gaṇadharaḥ, cālisa hajāra muṃnī, paṃcāvana hajāra sādhavīḥ, eka lāṣa aneṃ trāsi hajāra śrāvaka, triṇya lāṣa sīttera hajāra śrāvikā, paṃcavīsa dhanūṣa deha-māṃna, nila-varṇa, kuṃbha-laṃchana, paṃcāvana hajāra varṣa āū. vicaratā śrīSiddhācala padhāryā, sāsvato tiratha varṇavī śrīSameta-siṣare uparemḥ pāṃca syeṃ munī saṃghāte. sidha-pada neṃ varyā. mokṣeṃ pohatāḥ. namo stu śrīSidhagirī neṃḥ namo namaḥ // 19// śrīḥ śrīḥ // śrīḥ // śrīḥ //

२०.

श्री मुनिसुव्रतजी

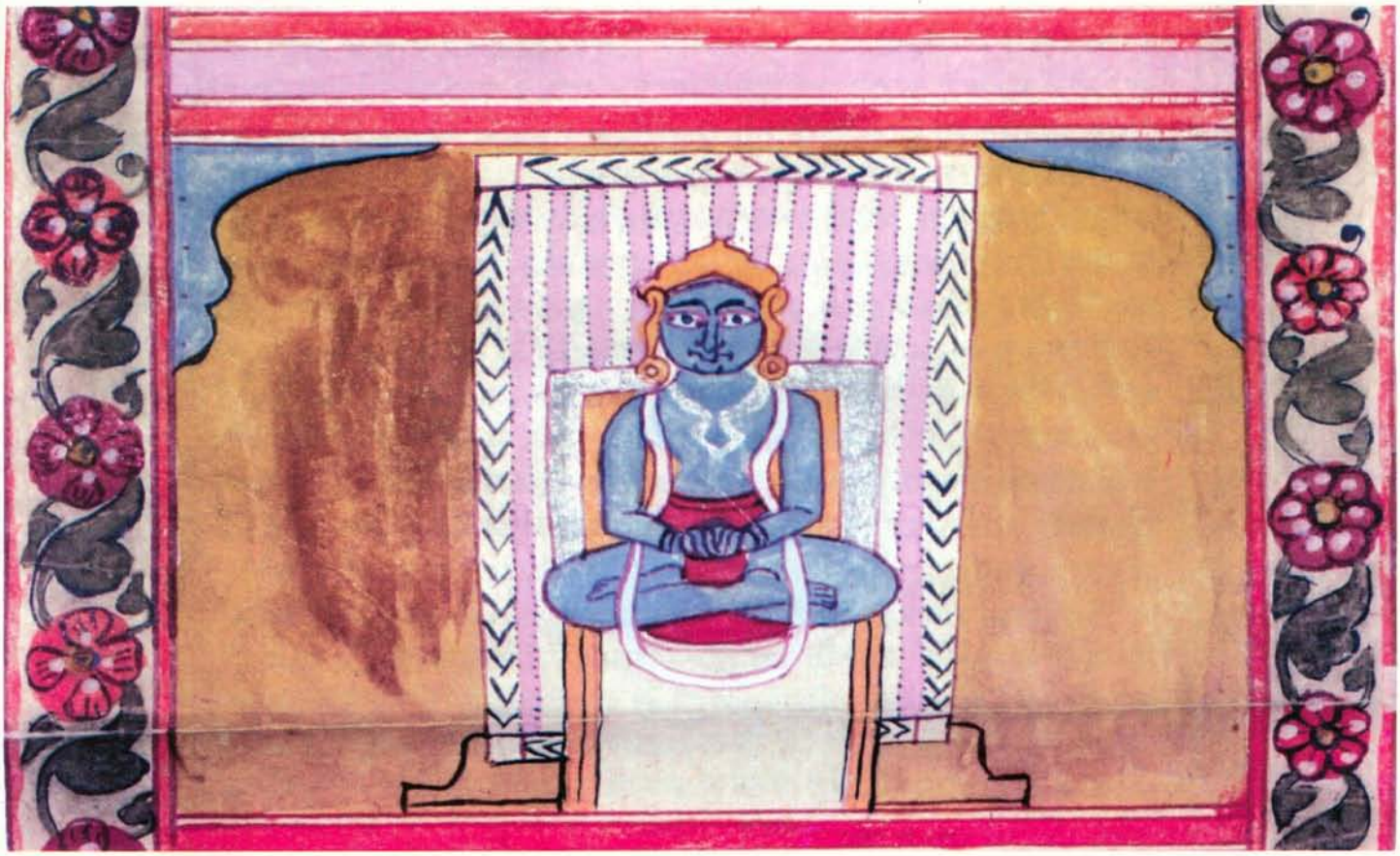

20. Śrī Munisuvratajī

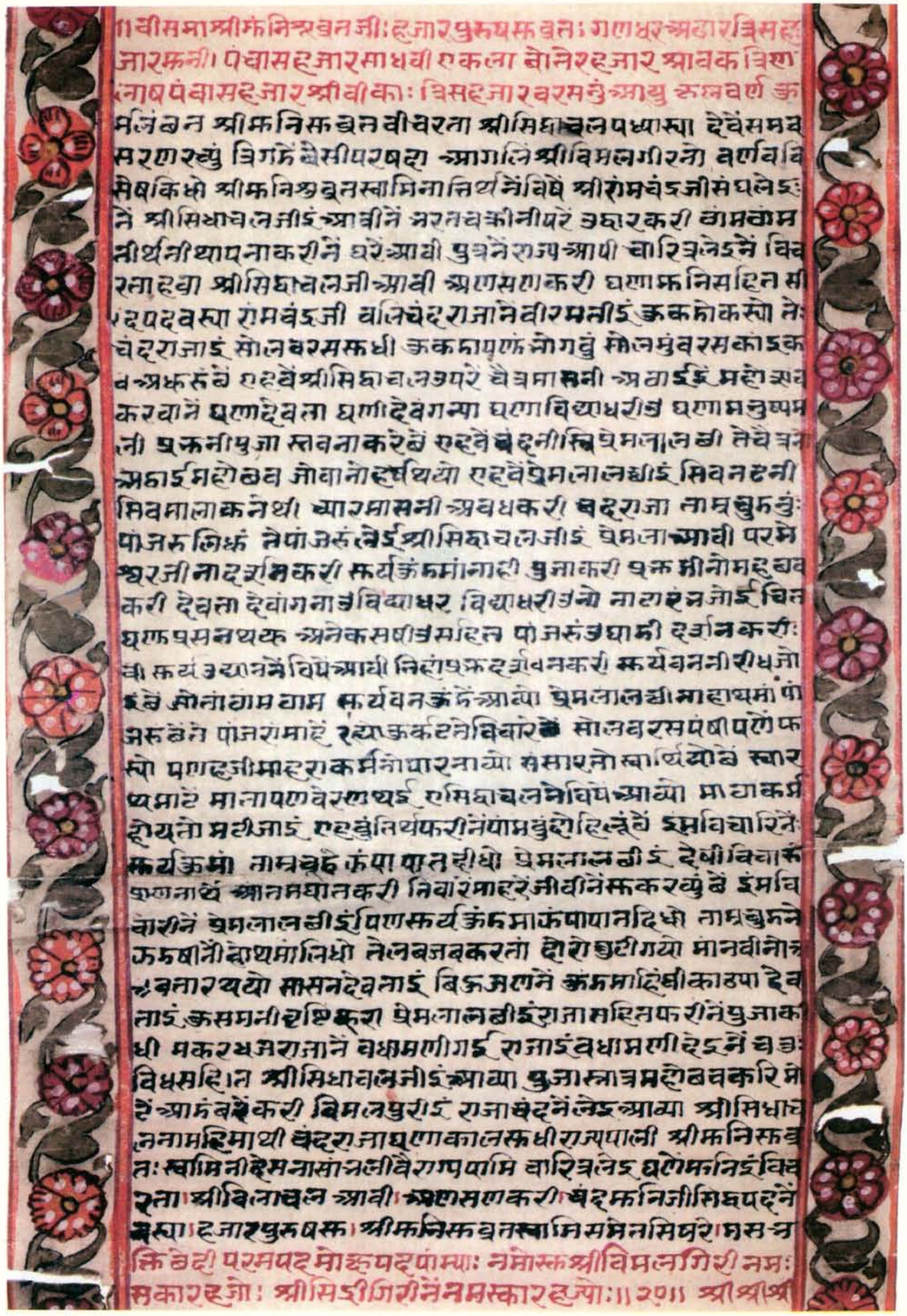

मूल पाठ

वीसमा श्री मुनिसुव्रतजीः।

हजार पुरुषसुं व्रतः। गणधर अढार, त्रिस हजार मुनी, पंचास हजार साधवी, एकला(ख) बोतेर हजार श्रावक, त्रिण लाख पचास हजार श्रावीका। त्रिस हजार वरसनुं आयु, कृष्ण वर्ण, कूर्म लंछन। श्रीमुनिसुव्रत वीचरतां श्रीसिधाचल पध्यारया। देवें समवसरण रच्युं। त्रिगडें बेसी परषदा आगलिं श्री विमलगीरनो वर्णव विसेष किधो।

श्री मुनिसुव्रत स्वामिना तिर्थनें विषे श्रीरामचन्द्रजी संघ लेइनें, श्री सिधाचलजीइं आवीनें, भरत चक्रीनी परें उधार करी ठांम ठांम तीर्थनी थापना करीने घरें आवी, पुत्रनें राज्य आपी चारित्र लेइनें विचरता हवा। श्री सिधाचलजी आवी, अणसण करी, घणा मुनि सहित सिद(द्ध)पद वरया रामचन्द्रजी।

वैलि चंद्र राजाने वीरमतीइं कुकडो कर्यो। ते चंद राजाइं सोल वरस सुधी कुकडापणुं भोगवुं। सोलमुं वरस कांइक अधुरुं छें, एहवें श्री सिद्धाचल उपरें चैत्र मासनी अट्ठाईइं महोत्सव करवाने घणा देवता, घणी देवगन्या, घणा विद्याधरीओ, घणा मनुष्य मली प्रभुनी पुजा स्तवना करे छे। एहवें चंदनी स्त्रि प्रेमलालछी ते चैत्रनो अट्ठाई महोछव जोवानो हर्ष थयो। एहवें प्रेमलालच्छीइं सिवनटनी सिवमाला कनेथी च्यार मासनी अवध करी, चंद राजा ताम्रचुडनुं पांजरु लिधुं। ते पाजरुं लेई श्री सिधाचलजीइं प्रेमला आवी। परमेश्वरजीना दर्शन करी, सूर्यकुंडमां नाही, पुजा करी प्रभुजीनो महछव करी देवता, देवांगनाओ, विद्याधर, विद्याधरीओनो नाटारंभ जोइ चित घणुं प्रसन थयुं। अनेक सखीओ सहित पांजरु उघाडी, दर्शन करावी सूर्यउद्याननें विषे आवी। तिहां प्रभु दर्शन करी, सुर्यवननी रीध जोई छें, जोतां ठाम ठाम सुर्यवन कुंडें आव्यो। प्रेमलालच्छीना हाथमां पांजंरु छे, ते पांजरा मांहें रह्यो कुर्कट ते विचारे छें, 'सोल वरस पंखीषणें फरयो, पण हजी माहरा कर्मनो पार नाव्यो। संसार तो स्वार्थियो छे। स्वारथ माटें माता पण वेरण थई, ए सिधाचलनें विषे आव्यो। माठा कर्म होय तो मटी जाई।' एहवुं तिर्थ फरीनें पामवुं दोहिलूं छे। इम विचारिने सुर्यकुंडमां ताम्रचूडे झंपापात दीधो। प्रेमलालछीइं देखी विचारुं, ''प्राणनाथें आतमघात करी, तिवारें माहरें जीवीने सु करव्युं छे?'' इंम विचारीने प्रेमलालछीइं पिण सुर्यकुंडमां झंपापात दिधो। ताम्रचूडने झडपीनें हाथमां लिधो। ते लवजव करतां दोरो तुटी गयो। मांनवीनो अवतार थयो। सासन देवताइं बिहुजणनें कुंड मांहिथी काढ्यां। देवताइं कुसमनी वृष्टि करी। प्रेमलालछीइं राजा सहित फरीने पुजा कीधी। मकरध्वज राजानें वधामणी गई। राजाइं वधामणी देईने चतुर्विध सहित श्री सिधाचलजीइं आव्या। पुजा स्नात्र महोच्छव करि मोटे आडंबरें करी विमलपुरीइं राजा चंदने लेई आव्या। श्री सिधाचलना महिमाथी चंदराजा घणा काल सुधी राज्य पाली, श्री मुनिसुव्रत स्वामीनी देसना सांभली, वैराग्य पामि, चारित्र लेइ घणे मुनिइं विचरता श्री वि(म)लाचल आवी अणसण करी चंद्रमुनिजी सिधपदनें वर्या।

हजार पुरुषसुं श्रीमुनिसुव्रत स्वामि समेतसिखरे म(मा)सभक्ति छेदी परमपद मोक्षपद पाम्यांः। नमोस्तु श्री विमलगिरी नमः सकार हजोः। श्री सिद्धीगिरीने नमस्कार हज्योः।20।श्री श्री श्री।

हिन्दी अनुवाद

20. मुनिसुव्रतजी

आपने 1000 पुरुषों के साथ दीक्षा अंगीकार की थी।

आप़के परिवार में 18 गणधर, 30,000 साधु, 50,000 साध्वियां, 1,72,000 श्रावक और 3,50,000 श्राविकाएं थीं।

आपका वर्ण कृष्ण हैं[1] आपका लांछन कुंभ (कूर्म) है। आपकी कुल आयु 30,000 वर्ष की थी।

विचरण करते हुए सिद्धाचल पधारे। देवों ने वहां समवसरण की रचना की। अपनी देशना में विमलगिरि–सिद्धाचलजी की महिमा प्रतिपादित की।

मुनिसुव्रत स्वामी के शासनकाल में रामचन्द्रजी चतुर्विध संघ के साथ सिद्धाचलजी पहुंचे। भरत चक्रवर्ती की तरह श्रीरामचन्द्रजी ने भी वहाँ जीर्णोद्धार किया। अनेक स्थानों पर विविध तीर्थ की स्थापना की। घर वापिस लौटते ही अपने पुत्रों को राज्यधुरा सौंपकर स्वयं ने चारित्र ग्रहण किया। अंतिम समय सिद्धाचलजी पहुंचे। अनशन व्रत ग्रहण करके अनेक मुनियों के साथ सिद्धपद–मोक्ष गति प्राप्त की।

चंद्र नृप की विमाता वीरमती ने अपनी तंत्र–मंत्र विद्या से उसे कुर्क्कुट बना दिया। करीब सोलह साल चंद्रनृप ने कुर्क्कुट अवस्था में व्यतीत किये। सोलहवाँ साल चल रहा है। सिद्धाचल पर चैत्र मास की अट्ठाई महोत्सव चल रहा है। देव, देवी, विद्याधर, विद्याधरी, मनुष्य, तिर्यंच आदि समग्र महोत्सव में शामिल है। प्रेमलालछी भी अपनी सखियों के साथ, ताम्रचूड के पंजर में कुर्क्कुट के साथ वहां आ पहुंची। वे सब परमेश्वरजी की पूजा, सूर्यकुंड में स्नान, प्रभु महोत्सव सम्पन्न करके हर्षोल्लास से घूम रहे थे।

सखियों के साथ भ्रमण करते प्रेमलालछी सूर्यउद्यान में आई। वहां उसने पिंजरा खोल रखा था। पिंजरे में कैद पक्षी सोचता है, ''सोलह साल से मैं ऐसे ही पिंजरे में कैद हूं, फिर भी मेरे पाप कर्मों का अंत नहीं है। यह संसार तो बड़ा स्वार्थी है, जहां माता भी शत्रु बन बैठी है। भाग्योदय से सिद्धाचल तक पहुंच सका हूं। अगर इधर प्राण त्याग करूंगा तो पापकर्मोदय भी शांत हो सकते हैं। ऐसा तीर्थ दूसरी बार प्राप्त होना दुष्कर है।'' वह स्वयं सूर्यकुंड में कूद पड़ा। उसे देखते ही प्रेमलालछी ने सोचा, ''अगर मेरे प्राणनाथ ने अपना जीवन त्याग दिया, तो मैं अकेली कैसे जी सकूंगी?'' वह भी सूर्यकुंड में कूद पड़ी। उसने ताम्रचूड को हाथ में पकड़ लिया। वह उससे अपना पिंड छुड़ाना–मुक्त होना चाहता था। इस झपाझपी में उसका धागा टूट गया। उसने अपना असली स्वरूप मनुष्यदेह प्राप्त कर लिया। शासनदेवता ने दोनों को कुंड में से बाहर निकाला। देवता ने दिव्य कुसुमों की वृष्टि की। उन्होंने फिर से प्रभु की पूजा–अर्चना की। मकरध्वज नृप सुसमाचार प्राप्त होते ही चतुर्विध संघ सह शत्रुंजय पहुंचे। महोत्सव–हर्षोत्सव मनाया गया।

चंदराजा ने निष्ठा से लंबे समय तक सुव्यवस्थित रूप से राज्य पालन किया। मुनिसुव्रत प्रभु की देशना से प्रतिबोधित होकर आपने चरित्र ग्रहण किया। अनेक मुनियों के साथ सिद्धाचलजी पहुंचे। अनशन व्रत अंगीकार किये। सिद्धपद–मोक्षपद प्राप्त किया।

श्री सिद्धाचलगिरि, विमलाचलगिरि को भावपूर्वक वंदन।

बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

// vīsamā śrīMuṃnisuvratajīḥ hajāra puruṣa su vrataḥ. gaṇadhara aḍhāra, trisa hajāra munī, paṃcāsa hajāra sādhavī, eka lā. votera hajāra śrāvaka, triṇa lāṣa paṃcāsa hajāra śrāvikāḥ, trisa hajāra varasa nuṃ āyu, kṛṣṇa-varṇa, kurma-laṃchana.[6] śrīMunisuvrata vīcaratā śrīSidhācala padhyāryā. deveṃ samavasaraṇa racyuṃ. tri-gaḍeṃ besī paraṣadā āgaliṃ śrīVimalagīra no varṇava viseṣa kidho.

śrīMuniśuvrata svāmi nā tirtha neṃ viṣeṃ śrīRāṃmacandrajī saṃgha leineṃ, śrīSidhācalajīiṃ āvīneṃ, Bharata-cakrī nī pareṃ uddhāra karī, ṭhāṃma ṭhāṃma tīrtha nī thāpanā karīneṃ, ghareṃ āvī, ṗutra neṃ rājya āpī, cāritra leineṃ, vicaratā havā śrīSiddhācalajī āvī, aṇasaṇa karī, ghaṇā muni sahita sīd(dh)a-pada varyā Rāṃmacandrajī.

vali Canda-rājā neṃ Vīramatīiṃ kukaḍo karyo. te Candra-rājāiṃ sola varasa sudhī kukaḍāpaṇuṃ bhogavuṃ. solamuṃ varasa kāṃika adhuruṃ cheṃ. ehaveṃ śrīSiddhācala upareṃ Caitra-māsa nī aṭhāīīṃ mahotsava karavāneṃ ghaṇā devatā, ghaṇī devagānyā, ghaṇā vidyādharīo, ghaṇā manuṣya malī prabhu nī pujā stavanā kareṃ cheṃ. ehaveṃ Caṃda nī stri Premalālachī te Caitra no aṭṭhāī mahochava jovā no harṣa thayo. ehaveṃ Premalālacchīiṃ Siva-naṭa nī Sivamālā kaneṃthī cyāra māsa nī avadha karī, Cadarājā-tāmracuḍa nuṃ pājaru lidhuṃ. te pāṃjaru leī, śrīSiddhācalajīiṃ Premalā āvī, parameśvarajī nā darśana karī, Surya-kuṃḍa māṃ nāhī, pujā karī, prabhujī no mahachava karī, devatā devāṃganāo vidyādhara vidyādharīo no nāṭārambha joī, cita ghaṇu prasana thayu. aneka saṣīo sahita pāṃjaruṃ oghāḍī, darśana karāvī Sūrya-udyāna neṃ viṣeṃ āvī. tihāṃ prabhu darśana karī, Surya-vana nī rīdha joi cheṃ. jotāṃ ṭhāma ṭhāma Surya-vana-kuṃḍeṃ āvyo. Premalālacchī nā hātha māṃ paṃjaruṃ cheṃ. te pāṃjarā māheṃ rahyo. kurkaṭa te vicāre cheṃ "sola varasa pāṃṣīpaṇeṃ pharyo, paṇa hajī māharā karma no pāra nāvyo. saṃsāra to svārthiyo cheṃ. svāratha māṭeṃ mātā paṇa veraṇa thaī. e Siddhācala ne viṣe āvyo. māṭhā karma hoya to maṭī jāiṃ ehavuṃ tirtha pharīneṃ pāṃmavuṃ dohilūṃ cheṃ." ima vicārine Suryaku(ṃḍa) māṃ tāmracūḍe jhaṃpā pāta dīdho. Premalālachīiṃ deṣī vicārūṃ "prāṇa-nāthe, ātama-ghāta karī tivāreṃ māhareṃ jīvīneṃ su karavyuṃ cheṃ?". iṃma vicārīneṃ Premalālachīiṃ piṇa Surya-kuṃḍa mā jhaṃpā pāta didho. tāmracuḍa ne jhaḍapīneṃ hātha māṃ lidho. te lavajava karatāṃ doro truṭī gayo. māṃnavī no avatāra thayo. sāsana-devatāiṃ bihu jaṇa neṃ kuṃḍa māhiṃ thī kāḍhyāṃ. devatāiṃ kusuma nī vṛṣṭi karī. Premalālachīiṃ rājā sahita pharīneṃ pujā kīdhī. Makaradhaja-rājā neṃ vadhāmaṇī gaī. rājāiṃ vadhāmaṇī deineṃ caturvidha-sahita śrīSidhācalajīiṃ āvyā. pujā-snātra mahochava kari moṭe āḍambareṃ karī Vimalapurīiṃ rājā-Canda neṃ lei āvyā. śrī Sidhācala nā mahimā thī Canda-rājā ghaṇā kāla sudhī rājya pālī, śrīMunisuvrataḥ-svāmi nī desanā sāmbhalī, vairāgya pāmi, cāritra lei, ghaṇeṃ muniiṃ vicaratā, śrīVi(ma)lācala āvī, aṇasaṇa karī, Canda-munijī siddha-pada neṃ varyā.

hajāra puruṣa su śrīMunisuvrata-svāmi Sameta-siṣare masa-bhakti chedī, parama-pada mokṣa-pada pāṃmyāh. namo stu śrīVimalagirī namasākāra hajo / śrīSiddhīgirī neṃ namaskāra hajyoḥ // 20// śrī śrī śrī.

6. Note that the size is missing in this list.

२१.

श्री नमिनाथजी

21. Śrī Namināthajī

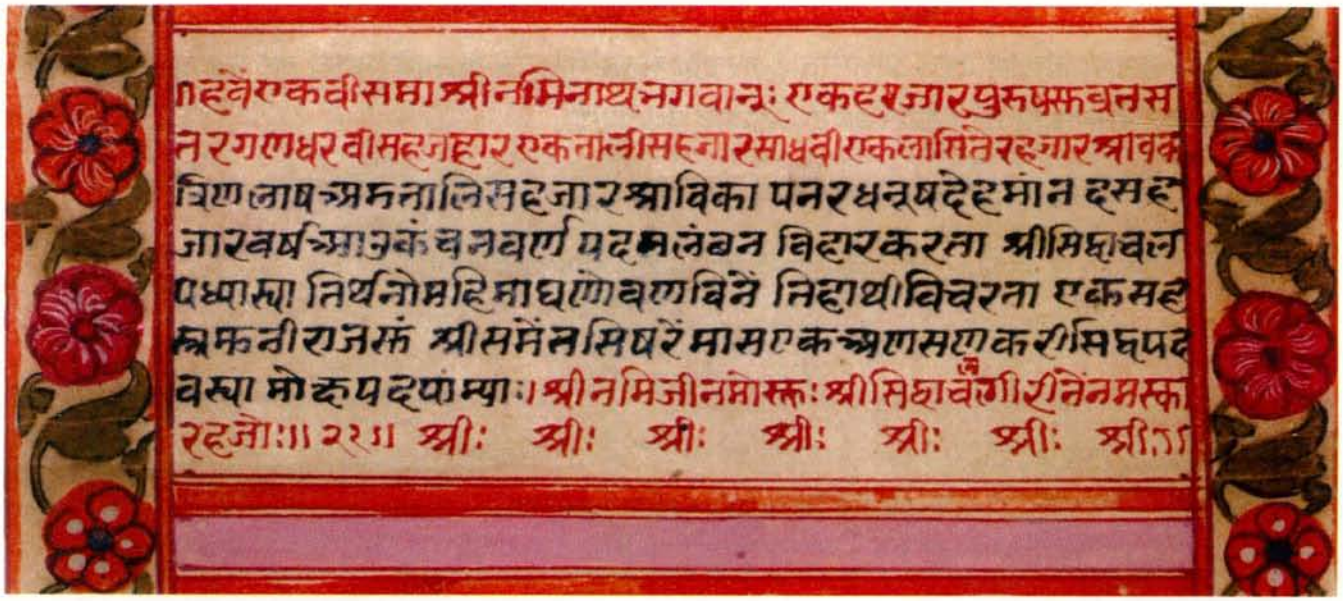

मूल पाठ

हवें एकवीसमा श्री नमिनाथ भगवानः।

एक हजार पुरुष सु व्रत, सतर गणधर, वीस हजार (साधु), एकतालीस हजार साधवी, एकला(ख) सित्तेर हजार श्रावक, त्रिण लाख अडतालिस हजार श्राविका। पनर धनूष देहमांन। दस हजार वर्ष आउं, कंचन वर्ण, पद्म लंछन। विहार करतां श्री सिधाचल पध्यार्या। तिर्थनो महिमा घणो वर्णविने तिहांथी विचरतां एक सहस्त्र मुनीराजसुं श्रीसमेतसिखरें मास एक अणसण करी सिधपद वरया, मोक्षपद पाम्याः। श्री नमिजी नमोस्तुः। श्रीसिधाचलगीरीनें नमस्कार हजोः।21।श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः श्रीः।

हिन्दी अनुवाद

21. नमिनाथजी

आपने 1000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में 17 गणधर, 20,000 साधु, 41,000 साध्वियां, 1,70,000 श्रावक और 3,48,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 15 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कंचन (सुवर्ण) है। आपका लांछन पद्म (नीलोत्पल) है। आपकी आयु पूरे दस हजार वर्ष की थी।

विचरण करते हुए आप श्री सिद्धाचलजी पधारें। सिद्धाचलजी तीर्थ का माहात्म्य अपनी देशना द्वारा प्रतिपादित किया।

क्रमशः विचरण करते श्रीसम्मेतशिखर एक सहस्र मुनिराज के साथ पधारे। वहां एक मास अनशन व्रताराधना की और मोक्षपद–सिद्धपद प्राप्त किया।

श्री सिद्धाचलगिरि को भावपूर्वक वंदन।

इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नमिनाथजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

//haveṃ ekavīsamā śrīNaminātha-bhagavānḥ eka hajāra puruṣa su vrata, satara gaṇadhara, vīsa haj<ah>āra (sādhu), ekatālīsa hajāra sādhavī, eka lā. sitera hajāra śrāvaka, triṇa lāṣa aḍatālīsa hajāra śrāvikā, panara dhanūṣa deha-māṃna, dasa hajāra varṣa āu, kaṃcana-varṇa, padama-laṃchana. vihāra karatā śrīSiddhācala padhyāryā. tirtha no mahimā ghaṇo vaṇavineṃ tihā thī vicaratā eka sahasra muni-rāja suṃ śrīSameta-siṣareṃ māsa eka aṇasaṇa karī, sidha-pada varyā. mokṣa-pada pāṃmyāḥ / śrīNamijī namo stuḥ śrīSiddhācalagirī neṃ namaskāra haḷoḥ 21 śrī śrī śrī śrī śrī śrī śrī //

२२.

श्री नेमिनाथजी

22. Śrī Nemināthajī

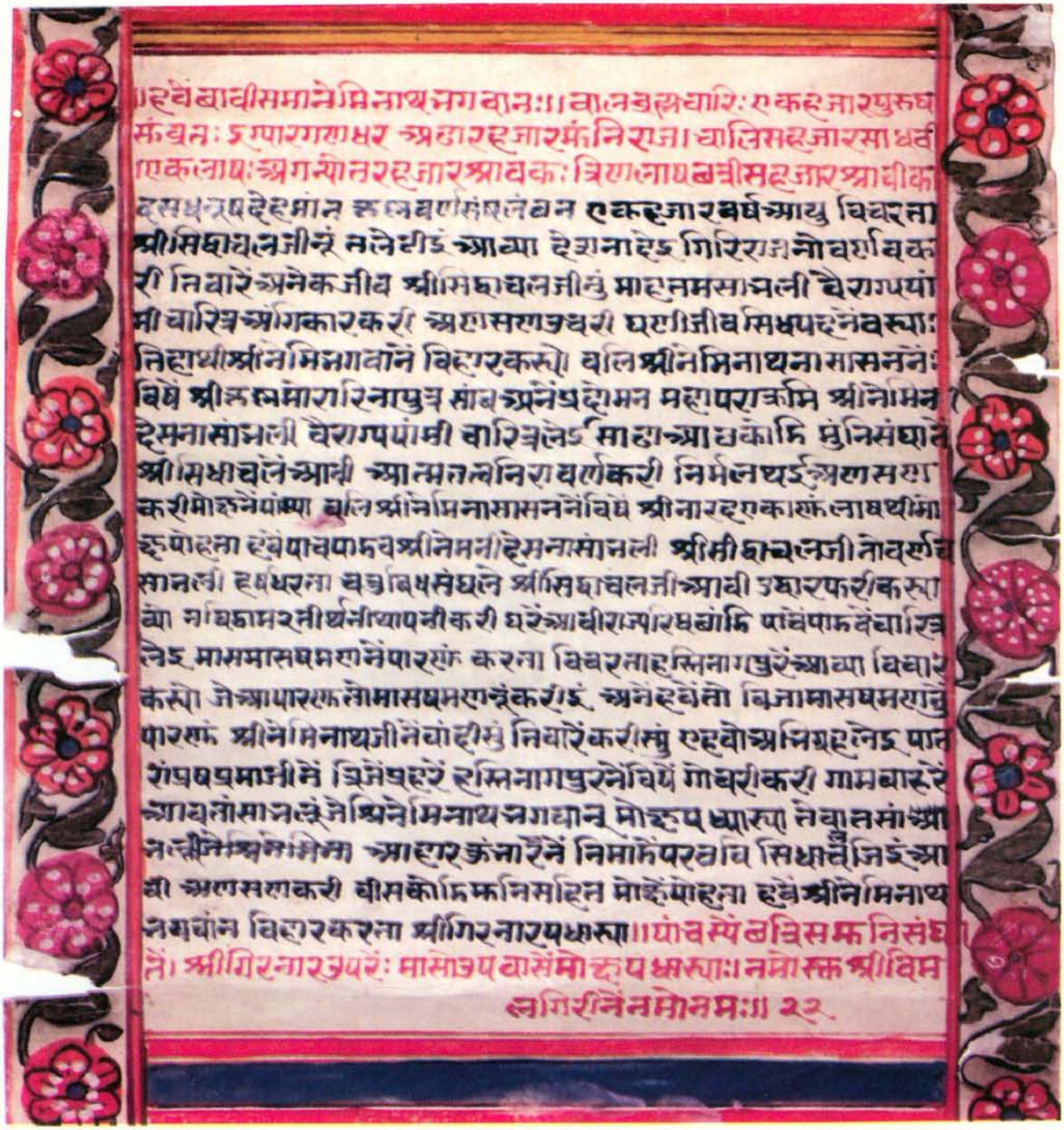

मूल पाठ

हवें बावीसमा नेमिनाथ भगवानः ।

बाल ब्रह्मचारि। एक हजार पुरुष सुं व्रत, इग्यार गणधर, अढार हजार मुनिराज, चालिस हजार साधवी, एक लाख अगन्योतर हजार श्रावक, त्रिण लाख छत्रीस हजार श्रावीका। दस धनूष देहमांन, कृष्ण वर्ण, संख लंछन, एक हजार वर्ष आयु। विचरतां श्री सिधाचलजीनूं तलेटीइं आव्या। देशना देइ गिरिराजनो वर्णव करी तिवारें अनेक जीव श्रीसिद्धाचलजीनूं माहतम सांभलि वैराग्य पामी, चारित्र अंगिकार करी, अणसण उचरी घणी जीव सिधपदने वरया। तिहांथी श्री नेमिभगवाने विहार कर्‌यो।

वलि श्री नेमिनाथना सासननें विषें श्रीकृष्ण मोरारिना पुत्रा सांब अनें प्रदोमन महापराक्रमि श्री नेमिनी देसना सांभली, वैराग्य पांमी, चारित्र लेई साढा आठ कोडि मुनि संघातें श्री सिधाचलें आवी, आत्मतत्त्व निरावर्ण करी, निर्मल थई, अणसण करी मोक्षने पाम्यां।

वलि श्री नेमिना सासननें विषें श्री नारद एकाणु लाखथी मोक्ष पोहतां।

हवे पांच पांडव श्री नेमनी देसना सांभली, श्री सीधाचलजीनो वर्णव सांभली हर्ष धरतां चतुर्विध संघ लै श्री सिद्धाचलजी आवी, उधार फरी करयाव्यो। नवि ठाम ठाम तीर्थनी थापना करी, घरें आवी राज्यरिध छांडि, पांचे पांडवे चारित्र लेइं मास मासखमणनें पारणुं करतां, विचरतां हस्तिनागपुरें आव्या। विचार करयो, 'जे आ पारणुं तो मासखमणनूं करीइं अने हवे तो बिजा मासखमणनूं पारणुं श्री नेमिनाथजीनें वांदीसुं तिवारें करीस्युं।' एहवो अभिग्रह लेइ पाठरां प्रख प्रमाजीनें त्रिजें प्रहरें हस्तिनागपुरने विषे गोचरी करी, गाम बाहरें आवतां सांभलू जे श्रिनेमिनाथ भगवान् मोक्ष पध्यार्‌यां। ते वात सांभली आहार कुंभारने निमाडें परठवि सिधाचलजिइं आवी अणशण करी, बीस कोडि मुनि सहित मोक्षें पोहतां।

हवे श्री नेमिनाथ भगवानं विहार करतां श्री गिरनार पंधार्‌या। पांचस्यें छत्रिस मुनि संघातें श्री गिरनार उपरेंः मासो उपवासें मोक्ष पधारयाः। नमोस्तुश्री विमलगिरीनें नमोनमः।22।

हिन्दी अनुवाद

22. नेमिनाथजी

आप बालब्रह्मचारी हैं। आपने 1,000 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में 11 गणधर थे। 18,000 साधु, 40,000 साध्वियां, 1,69,000 श्रावक, 3,36,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 10 धनुष ऊंचा था। आपका वर्ण कृष्ण था। आपका लांछन शंख है। आपकी आयु पूरे एक हजार वर्ष की थी।

क्रमशः विचरण करते हुए आप सिद्धाचलजी पधारें । वहां अपनी देशना में भी सिद्धाचलजी तीर्थ की महिमा प्ररूपित की। अनेक भव्य जीवों ने इससे प्रतिबोधित होकर वैराग्य प्राप्त किया। उन्होंने चारित्रधर्म ग्रहण किया और अनशन–व्रताराधना करके सिद्धपद प्राप्त किया।

श्रीकृष्ण मुरारि के पराक्रमी पुत्र प्रद्युम्न और शांब ने प्रभु की धर्मदेशना से प्रतिबोधित होकर वैराग्य प्राप्त किया। उन्होंने चारित्र धर्म अंगीकार किया और साढ़े आठ करोड़ मुनियों के साथ सिद्धाचल पहुंचे। स्वयं विशुद्ध–निर्मलावस्था प्राप्त करके आत्मतत्त्व निरावरण किया और अनशन व्रताराधना करते मोक्षपद प्राप्त किया।

नेमिनाथ प्रभुजी के शासन काल में नारद ने भी प्रभु की देशना से प्रतिबोधित होकर अन्य 91,000 मुनियों के साथ सिद्ध पद प्राप्त किया।

पाँच पांडवों ने भी सिद्धाचलजी की महिमा सुनी। प्रसन्न होकर चतुर्विध संघ लेकर उन्होंने सिद्धाचलजी की ओर प्रयाण किया। वहां तीर्थों का जीर्णोद्धार किया और अनेक स्थलों पर नये तीर्थों की स्थापना की।

पांडव पुनः घर लौटे। राज्य का त्याग किया और चारित्र धर्म अंगीकर किया। मासखमण–एकमास के अनशन व्रत की आराधना करते रहे। क्रमशः हस्तिनागपुर पहुंचे। वहां निश्चय किया कि इस मासखमण का पारणा तो इधर करते हैं, मगर अगले मासखमण का पारणा नेमिनाथ प्रभुजी के दर्शन के बाद उनकी निश्रा में ही करेंगे। दिन के तीसरे प्रहर में गोचरी–आहार ग्रहण करके गांव बाहर आ रहे थे, तब नेमिनाथ के मोक्षगमन के समाचार सुने। अत्यंत दुःखी होकर आहार कुम्भकार के पास (कुम्भकार की भट्ठी) छोड़कर सिद्धाचलजी पहुंचे। अन्य बीस करोड़ मुनियों के साथ अनशन–व्रताराधना करते हुए मोक्षपद प्राप्त किया।

नेमिनाथ प्रभुजी क्रमशः विचरण करते गिरनार तीर्थ पहुंचे। वहां अन्य 536 मुनियों के साथ एक मास के अनशन व्रताराधना करते सिद्धपद–मोक्षपद प्राप्त किया।

श्रीविमलगिरि तीर्थ को भावपूर्वक वंदन।

बाईसवें तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमिजी को भक्ति–भावपूर्वक वंदन।

Transliteration

//haveṃ bāvīsamā Neminātha-bhagavānaḥ // vāla-vrahmacārīḥ. eka hajāra puruṣa-saṃyutaḥ, igyāra gaṇadhara, aḍhāra hajāra muṃni-rāja, cālisa hajāra sādhavī, eka lāṣaḥ aganyotara hajāra śrāvakaḥ, triṇa lāṣa chatrīsa hajāra śrāvikā, dasa dhanūṣa deha-māṃna, kṛṣṇa-varṇa, saṃṣa-laṃchana, eka hajāra varṣa āyu. vicaratā śrīSiddhācalajī nūṃ Taleṭīiṃ āvyā. deśanā dei, giri-rāja no varṇava karī. tivāreṃ aneka jīva śrīṃSiddhācalajī nūṃ māhatama sābhalī vairāgya pāṃmī, cāritra aṃgikāra karī, aṇasaṇa ucarī ghaṇī jīva sidha-pada neṃ varyā. tihā thī śrīNemi-bhagavāneṃ vihāra karyo.

vali śṛīNeminātha nā sāsana ne viṣeṃ śrīKṛṣṇamorāri nā putra Sāṃba aneṃ Pradomana mahā-parākrami śrīNemi nī desanā sāṃbhalī vairāgya pāṃmī, cāritra leī, sāḍhā āṭha koḍi muni saṃghāteṃ śrīSidhācaleṃ āvī ātma-tatva nirāvarṇa karī, nirmala thaī, aṇasaṇa karī, mokṣa neṃ pāṃmyā.

valī śrīNemi nā sāsana neṃ viṣeṃ śrīNārada ekāṇuṃ lāṣa thī mokṣa pohatā.

haveṃ pāca Pāḍava śrīNema nī desanā sāṃbhalī śrīSiddhācalajī no varṇava sābhalī harṣa dharatā caturvidha-saṃgha le, śrīSiddhācalajī āvī uddhāra pharī karyāvyo navī ṭhāma 2 tīrtha nī thāpanā karī. ghareṃ āvī rājya-ridha chāṃḍi pāceṃ Pāṃḍaveṃ cāritra lei, māsa māsa-ṣamaṇa neṃ pāraṇuṃ karatā vicaratā Hastināgapureṃ āvyā. vicāra karyo je "ā pāraṇu to māsa-ṣamaṇa nūṃ karīiṃ aneṃ haveṃ to bījā māsa-ṣamaṇa nuṃ pāraṇuṃ śrīNemināthajī neṃ vāṃdīsuṃ, tivāreṃ karīsyuṃ". ehavo abhigraha lei pāṭharāṃ prakha pramājīneṃ trijeṃ prahareṃ Hastināgapura neṃ viṣeṃ gocarī karī, gāma bāhareṃ āvatāṃ sābhalūṃ je "śriNeminātha bhagavān mokṣa padhyāryā". te vāta sāṃ<ā>bhalī <je śrīNemi nā> āhāra-kuṃbhāra neṃ nimāṃḍeṃ paraṭhavi Sidhācalajiiṃ āvī aṇasaṇa karī, bīsa koḍi muni-sahita mokṣeṃ pohatā.

haveṃ śrīNeminātha bhagavāṃna vihāra karatā śrīGiranāra padhāryā. pāṃca syeṃ chatrīsa muni saṃghāteṃ // śrīGiranāra upareṃḥ māso upavāseṃ mokṣa padhāryāḥ. namo stu śrīVimalagiri neṃ namo namaḥ // 22

२३.

श्री पार्श्वनाथजी

23. Śrī Pārśvanāthajī

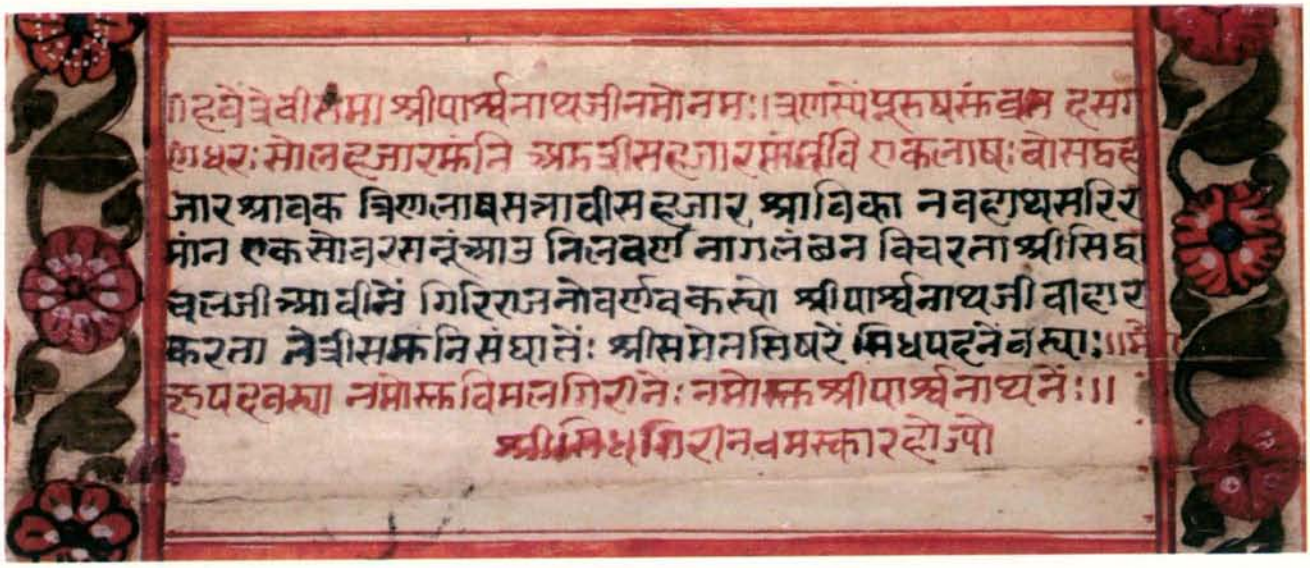

मूल पाठ

हवे त्रेवीसमा श्री पार्श्वनाथजी नमोनमः।

त्रणस्ये पुरुष सुं व्रत। दस गणधरः, सोल हजार मुनि, अडत्रीस हजार साध्वि, एकलाख चोसट्ठ हजार श्रावक, त्रिणलाख सत्तावीस हजार श्राविका। नव हाथ सरिरमानं, एकसो वरसनूं आउ, निल वर्ण, नाग लंछन। विचरतां श्री सिद्धाचलजी आवीनें गिरिराजनो वर्णव कर्‌यो। श्रीपार्श्वनाथजी वीहार करतां तेत्रीस मुनि संघातेः श्रीसमेतसिखरें सिद्धपदने वर्‌याः, मोक्षपद वर्‌या। नमोस्तु विमलगिरीनेंः, नमोस्तु श्री पार्श्वनाथनेंः। श्री सिधगिरी नमस्कार होज्यो।

हिन्दी अनुवाद

23. पार्श्वनाथजी

आपने 300 पुरुषों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

आपके परिवार में 10 गणधर, 16,000 साधु, 38,000 साध्वियां, 1,64,000 श्रावक और 3,27,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 9 हाथ ऊंचा था। आपका वर्ण नील है। आपका लांछन नाग (सर्प) है। आपकी आयु पूरे एक सौ वर्ष की थी।

क्रमशः विचरण करते आप सिद्धाचलजी पहुंचे। आपने देशना में गिरिराज का वर्णन किया।

विचरण करते हुए आप 33 मुनियों के साथ सम्मेतशिखरजी पहुंचे। वहां से आपने सिद्धपद–मोक्षपद प्राप्त किया।

श्री विमलगिरि को भावपूर्वक वंदन।

तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजी को भक्ति–भाव पूर्वक वंदन।

Transliteration

//haveṃ trevīsamā śrīPārśvanāthajī namo namaḥ / traṇa syeṃ pūruṣa suṃ vrata, dasa gaṇadharaḥ, sola hajāra muni, aḍatrīsa hajāra sādhavi, eka lāṣa cosaṭṭha hajāra śrāvaka, triṇa lāṣa sattāvīsa hajāra śrāvikā, nava hātha sarira-māṃna, eka so varasa nūṃ āu, nila-varṇa, nāga-laṃchana. vicaratā śrīSiddhācalajī āvīneṃ giri-rāja no varṇava karyo. śrīPārśvanāthajī vīhāra karatā tetrisa muni saṃghāteṃḥ śrīSameta-siṣareṃ sidha-pada neṃ varyāḥ // mokṣa-pada varyā, namo stu Vimalagirī neṃḥ, namo stu śrīPārśvanātha neṃ // śrīSīdhagirī na<va>maskāra hojyo.

२४.

श्री महावीरस्वामीजी

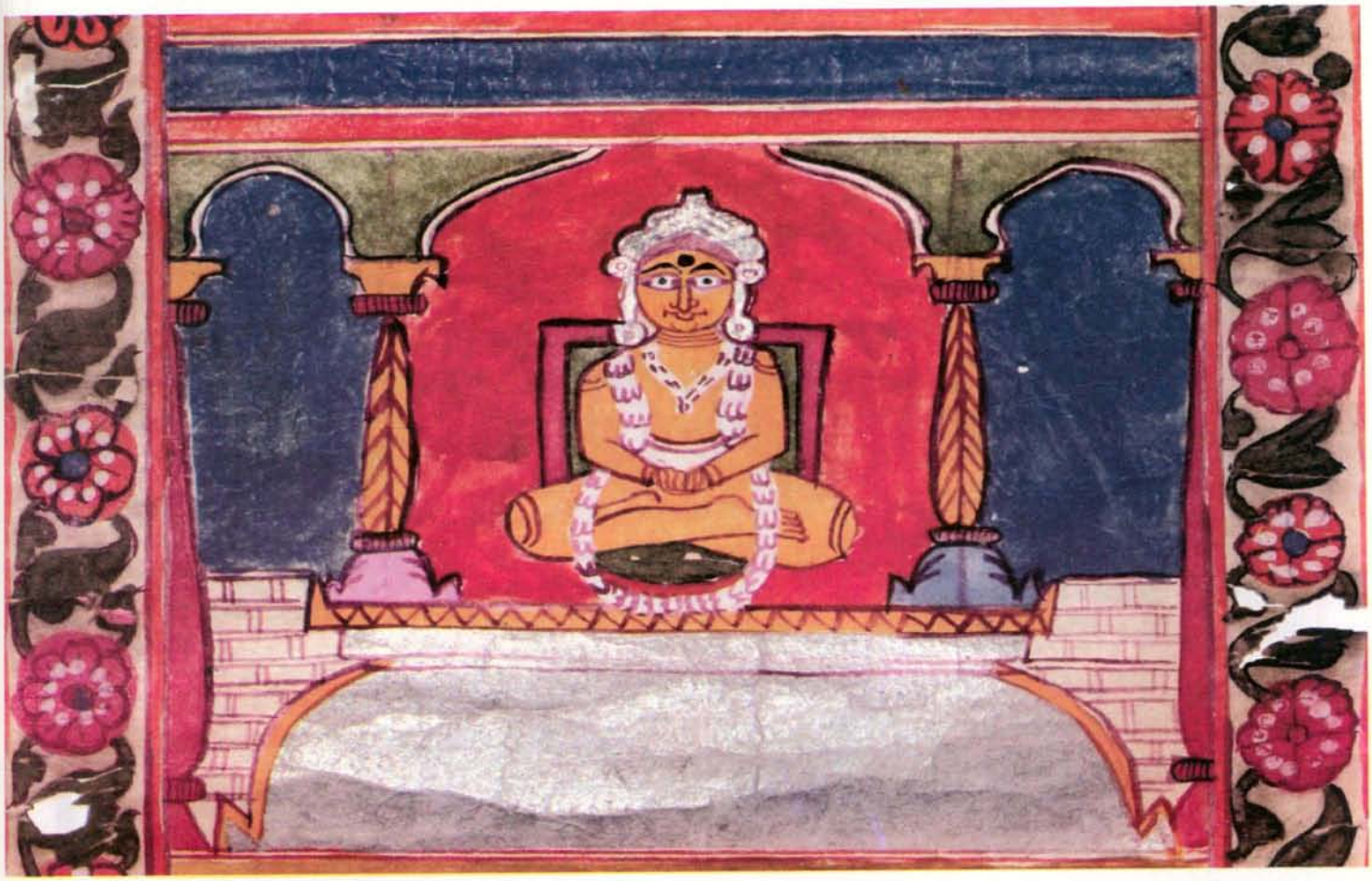

24. Śrī Mahāvīrasvāmījī

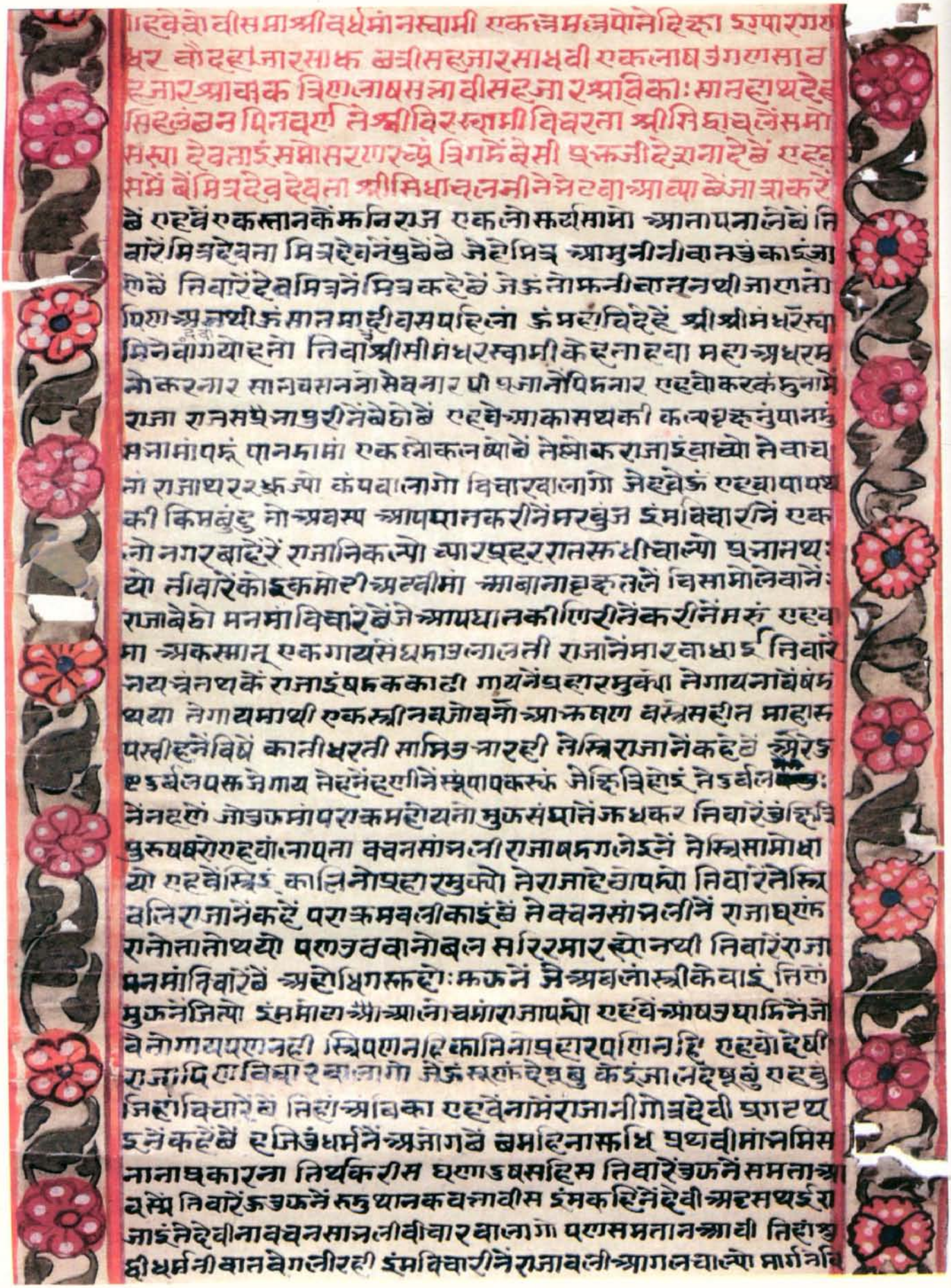

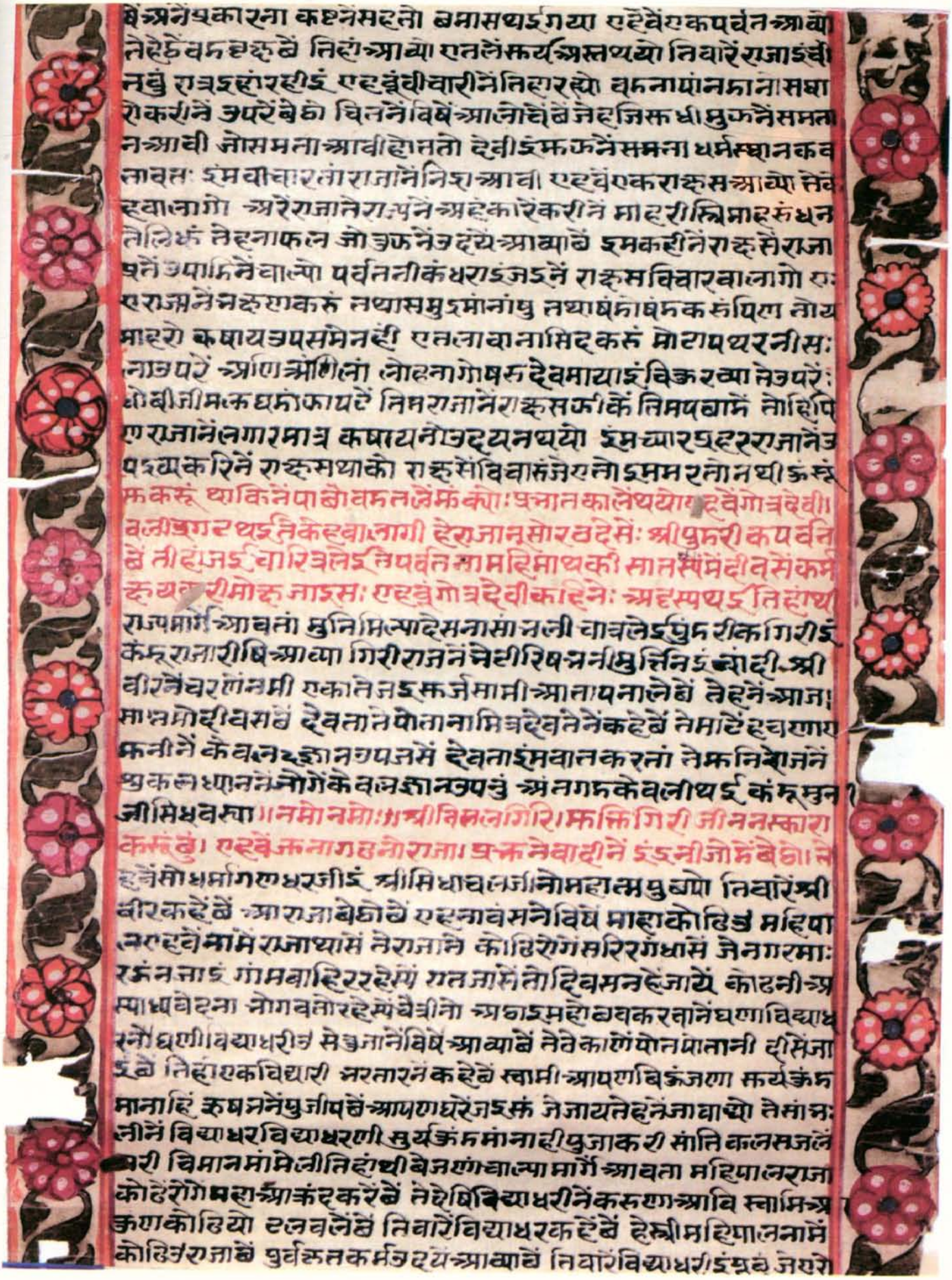

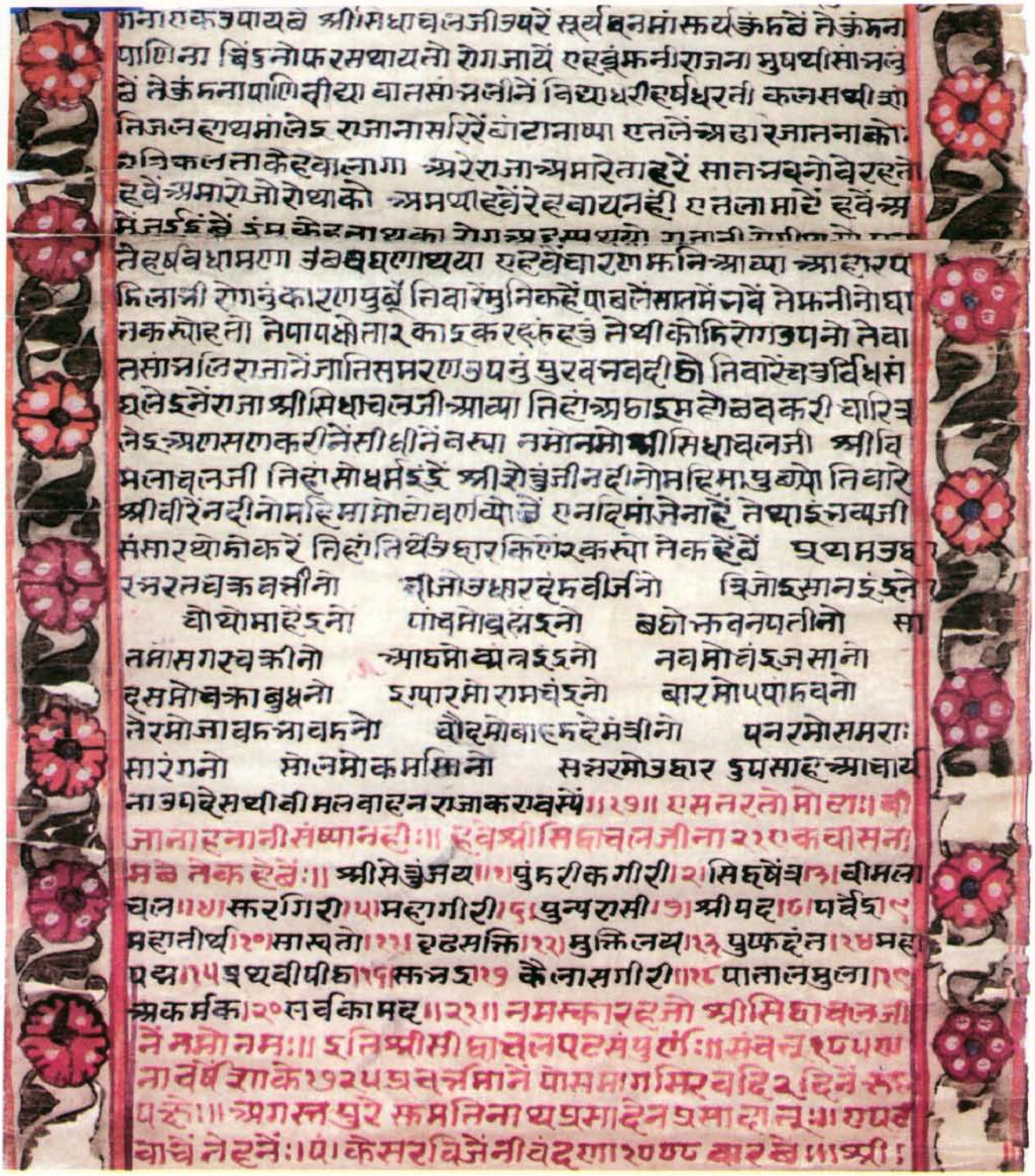

मूल पाठ

हवे चोवीसमा श्री वर्धमान स्वामी।

एकल्लमल्ल पोते दिक्षा। इग्यार गणधर, चौद हजार साधु, छत्रीस हजार साधवी, एक लाख ओगणसाठ हजार श्रावक, त्रिाण लाख सत्तावीस हजार श्राविकाः। सात हाथ देह, सिंह लंछन, पित वर्ण। ते श्री विरस्वामी विचरतां श्री सिधाचलें समोसर्‌यां। देवताईं समोसरण रच्यूं। त्रिगडें बेसी, प्रभुजी देसना दे छें।

एहवें समें बें मित्र देव-देवता श्री सिधाचलजीने भेटवा आव्या छें। जात्रा करें छें। एहवे एक स्तानकें मुनिराज एकलो सुर्य सामो आतापना ले छें, तिवारें मित्रदेवता मित्रदेवनें पुछे छें, ''जे हे मित्र! आ मुनीनी वात तुं कांई जाणे छें?'' तिवारें देवमित्रनें मित्र कहे छे, ''जे हुं तो मुनी(नी) वात नथी जाणतो, पिण अ(आ)जथी हुं सातमा दीवस पहिलां हुं महाविदेहें श्रीसीमंधर स्वामिने वांदवा गयो हतो, तिवारें श्री सीमंधर स्वामी केहता हवा। महा अधरमनो करनार, सात वसन नो सेवनार, प्रजानें पिडनार एहवो करकंडु नामे राजा राजसभा पुंरीने बेठो छें। एहवे आकास थकी कल्पवृक्षनुं पानडुं सभामां पडूं। पानडामां एक श्लोक लख्यो छे। ते श्लोक राजाइं वांच्यो। ते वाचतां राजा थर-थर धुज्यो, कंपवा लागो। विचारवा लागो, ''जे हवे हुं एहवा पाप थकी किम छुटुं? तो अवस्य आपघात करीने मरवुं ज।''

इम विचारीनें एकलो नगर बाहेरें राजा निकल्यो। च्यार प्रहर रात सुधी चाल्यो। प्रभात थयो तीवारें कोईंक मोटी अटवीमां आंबाना वृक्ष तले विसामो लेवानें राजा बेट्ठो। मनमां विचारे छे, ''जे आपघात किणि रीतें करीनें मरुं?'' एहवामां अकस्मात् एक गाय सेंघडा उलालती राजानें मारवा धाई। तिवारें भयभ्रंत थकें राजाइं खडक काढी गायनें प्रहार मुक्यो। ते गायना बें खंड थया। ते गायमांथी एक स्त्री नवजोवना आभुषण वस्त्रें सहीत माहारुप स्वीहनें विषें काती धरती सामि उभा रही। तें स्त्रि राजानें कहें छें, ''अरे दुष्ट! दुर्बल पसु जे गाय तेहनें हणीनें स्यूं पाप करयुं? जे क्षित्रि होइं ते दुर्बलनें न हणें। जो तुझमां पराक्रम होय तो मुझ संघातें जुध कर। तिवारें तुं क्षित्रि पुरुष खरो।'' एहवां लापता (?) वचन सांभली राजा खडग लेइने ते स्त्रि सामो धायो। एहवें स्त्रिंइं कातिनो प्रहार मुक्यो। ते राजा हेठो पड्यो। तिवारें ते स्त्रि वलि राजानें कहें, ''पराक्रम वली कांई छे?'' ते वचन सांभलीने राजा घणुं रातो-तातो थयो। पण उठवानो बल सरिरमां रह्यो नथी। तिवारें राजा मनमां विचारे छे, 'अहो धिगस्तु होः मुझनें जे अबला, स्त्री केवाई तिणें मुझनें जित्यो।' इम मोटा आलोचमां राजा पड्यो। एहवें आंख उघाडिनें जोवे तो गाय पण नहीं, स्त्रि पण नहीं, कातिनो प्रहार पणि नहि। एहवो देखी राजा पिण विचारवा लागो, 'जे हुं सूणुं देखुं छुं के इं(द्र) जाल देखूं छुं।'

एहवुं जिहां विचारें छें तिहां अंबिका एहवें नामे राजानी गोत्रादेवी प्रगट थइने कहें छें, ''हजि तुं धर्मने अजोग छें। छ महिना सुधि प्रथवीमां भमिस, नाना प्रकारना तिर्थ करीस, घणा दुख सहिस, तिवारें तुझने समता आवस्यें। तिवारे हुं तुझनें रुडु थानक बत्तावीस।'' इंम कहिनें देवी अदृश थई। राजाइं ते देवीना वचन साभली वीचारवा लागो पण समता न आवी। तिहां श्रुद्धी धर्मनी वात वेगली रही। इंम विचारीनें राजा वली आगल चाल्यो। मार्गने विषे अनें(क) प्रकरना कष्टनें सहतो छ मास थई गया।

एहवे एक पर्वत आव्यो। ते हेट्ठें वडवृक्ष छें, तिहां आव्यो। एतलें सुर्य अस्त थयो। तिवारें राजाइं चींतवुं, ''रात्र इहां रहीइं।'' एहवुं वीचारीनें तिहां रह्यो। वडना पांनडानो संथारो करीने उपरें बेठो। चित्तने विषे आलोचे छे, जे हजि सुधी मुझनें समता न आवी। जो समता आवी होततो देवीइं मुझनें धर्मस्थानक बतावेत। इम वीचारतां राजाने निंद्रा आवी। एहवें एक राक्षस आव्यो। ते केहवा लागो, ''अरे राजा! ते राज्यनें अहंकारें करीनें माहरी स्त्रि, माहरुं धन ते लिधुं। तेहना फल जो तुझनें उदयें आव्यां छे।'' इम कहीनें राक्षसें राजा प्रतें उपाडिने चाल्यो। पर्वतनी कंधरांई जईनें राक्षस विचारवा लागो, ''ए(ए) राजाने भक्षण करुं तथा समुद्रमां नाखुं तथा खंडोखंड करुं पिण तोय माहरो कषाय उपसमें नहीं। एतलां वाना सिद करुं? मोटा पथरनी सला उपरें अणिआलां लोहनां गोखरु देवमायाइं विकुरव्या। ते उपरें धोबी जीम लुघडां झापटें, तिम राजानें राक्षस झींके, तिम पछाडे तोहि पिण राजानें लगार मात्र कषायनो उदय न थयो। इंम च्यार प्रहर राजानें उपद्रव्य करिनें राक्षस थाको। राक्षसें विचारुं, ''जे ए तो इम मरतो नथी हुं सूं सु करुं?'' थाकिने पाछो वडतलें मुक्योः।

प्रभात कालें थयो, एहवें गोत्रदेवी वली प्रगट थई। ते कहेवा लागी, ''हे राजा! तू सोरठ देसेः श्री पुंडरीक पर्वत छे, तीहां जई चारित्र लेई, ते पर्वतना महिमा थकी सातमें दीवसें कर्म क्षय करी मोक्ष जाइसः।'' एहवूं गोत्रादेवी कहिनें अदृस्य थई। तिहांथी राज्यमार्गे आवतां मुनि मिल्यां। देसना सांभली चा(रि)त्र लेई पुंडरीकगिरीइं कंडूराजारीषि आव्या। गिरिराजनें भेटी रिषभनी मूर्ति नई वांदी श्री वीरनें चरणें नमी, एकाते जइ सुर्ज सामी आतापना ले छे। तेहनें आज सातमो दीवस छें।'' देवता ते पोताना मित्रदेव तेनें कहें छें, ''ते माटे हवणां ए मुनीनें केवलज्ञान उपजसे।''

देवता इम वात करतां ते मुनिराजनें श्रुकल ध्याननें जोगे केवलज्ञान उपनुं। अंतगड केवली थई कंडूमुनिजी सिध वरया। नमोनमः श्री विमलगिरि, मुक्तिगिरीजी न(म)स्कार करुं छुं।

एहवें जुनागढनो राजा प्रभुने वांदीनें इंद्रनी जोडें बेठो, तेहवें सौधर्मा गणधरजीइं श्रीसिधाचलजीनो महात्म पुछयो। तिवारें श्री वीर कहे छे, ''आ राजा बेट्ठो छे, एहना वंसने विषं माहाकोढिओ महिपाल एहवें नामें राजा थासें। ते राजानें कोढि रोगें सरिर गंधासे। जे नगरमां रहू न जाइं। गाम बाहिर रहेंस्यें। रात जासें तो दिवस नहें जायं। कोढनी अस्याध्य वेदना भोगवतो रहेस्यें।

चैत्रीनो अट्ठाई महोछव करवाने घणा विद्याधरो, घणी विद्याधरीओ सेंत्रुजाने विषें आव्या छें। ते ठेकाणें पोतपोतानी दीसें जाइं छे। तिहां एक विद्या(ध)री भरतारनें कहें छें, ''स्वामी! आपण बिहुं जणा सुर्यकुंडमां नाहिं ऋषभने पुजी पछें आपण घरें जइसुं, जे जाय तेहनें जावा द्यो।'' ते सांभलीनें विद्याधर विद्याधरणी सुर्यकुंडमां नाही, पुजा करी सांतिकलस जलें भरी विमानमां मेली, तिहांथी बे जणां चाल्या। मागें आवतां महिपाल राजा कोढे रोगें महा आक्रंद करें छें। ते देखि विद्याधरीनें करुणा आवि। ''स्वामि! आ कुण कोढियो टलवलें छे?'' तिवारें विद्याधर कहे छे, ''हे स्त्री! महिपाल नामें कोढियो राजा छें। पूर्व कृत कर्म उदयें आव्यां छे।'' तिवारें

विद्याधरीइं पूछुं। जे ए रोगनो एक उपाय छेः। ''श्री सिधाचलजी उपरें सूर्यवनमां सुर्यकुंड छें ते कुंडना पाणिना बिंदुनो फरस थाय तो रोग जायें'', एहवूं मुनीराजना मुखथी सांभलुं छे। ते कुंडना पाणि वीद्या वात सांभलीनें विद्याधरी हर्ष धरती कलसथी सांतिजल हाथमां लेइ राजाना सरिरें छांटा नाख्या। एतलें अढार जातना कोढ निकलता केहवा लागा, ''अरे राजा! अमारे ताहरें सात भवनो वेर हतो। हवें अमारो जोरो थाको। अमथी हवे रेहवाय नहीं। एतला माटे हवे अमे जई इं छे।''

इंम केहता थका रोग अदृस्थ थयो। राजा नीरोगी थयो। प्रभाते हर्ष, वधामणां, उछव घणां थया। एहवें चारण मुनि आव्या। आहार पडिलाभी रोगनुं कारण पुछूं, तिवारें मुनि कहें, ''पाछलें सातमें भवे ते मुनीनो घात करयो हतो। ते पाप धोतां धोतां कांइक रह्युं हतुं, तेथी कोढि रोग उपनो।'' ते वात सांभलि राजाने जातिसमरण उपनुं। पुरव भव दीट्ठो। तिवारें चतुर्विध संघ लेइनें राजा श्रीसिधाचलजी आव्यां। तिहां अट्ठाइ महोछव करी चारित्रा लेइ अणसण करीनें सीधीनें वर्‌या। नमोनमो श्री सिधाचलजी। श्री विमलाचलजी।

तिहां सोधर्मइंद्रें श्री शेत्रुंजी नदीनो महिमा पुछयो। तिवारें श्री वीरें नदीनो महिमा मोटो वर्णव्यो छें। ए नदिमां जे नाहें ते थाइं भव्यजी(व) भवसंसार थोडो करें।

तिहां तिर्थे उधार किणें-किणें कर्‌यो, ते कहें छें।

प्रथम उधार भरत चक्रवर्तीनो,	बीजो उधार दंडवीर्जनो,
त्रिजो इसान इंद्रनो,	चोथो माहेंद्रनो,
पांचमो ब्रह्मन्द्रनो,	छट्ठो भुवनपतीनो,
सातमो सगरचक्रीनो,	आठमों व्यंत्रइद्रनो,
नवमो चंद्रजसानो,	दसमो चक्राबुधनो,
इग्यारमो रामचंद्रनो,	बारमो 5 पांडवनो,
तेरमो जावड-भावडनो,	चौदमो बाहडदे मंत्रीनो,
पनरमो समरासारंगनो,	सोलमो कर्मासानो,

सत्तरमो उद्धार दुपसाह आचार्यना उपदेसथी वीमलवाहन राजा करावस्यें।17।

ए सत्तर तो मोटा। बीजा नाहनानी संख्या नहीं।

हवे श्री सिधाचलजीना 21 एकवीस नी(ना)म छे, ते कहें छें।

श्री सेत्रुंजय 1, पुंडरीकगीरी 2, सिद्धषेंत्र 3, वीमलाचल 4, सुरगिरी 5, महागिरी 6, पुन्यरासी 7, श्रीपद 8, पर्वेन्द्र 9, महातीर्थ 10, सास्वतो 11, वृढसक्ति 12, मुक्तिलय 13, पुष्फदंत 14, महापद्म 15, प्रथवीपीड्ड 16, सुभद्र 17, कैलासगीरी 18, पातालमुला 19, अकर्मक 20, सर्वकामद 21।

नमस्कार हजो श्री सिधाचलने नमोनमः।

इति श्री सिधाचलपट संपूर्णः। संवत् 1859 ना वर्षे शाके 1725 प्रवर्त्तमानें पोस मागसिर वदि 2 दिनें कृष्ण पक्षेः अगस्त पुरे सुमितनाथ प्रसादेन, प्रसादातः ए पट वांचे तेहनेंः । पं. केसरविजेंनी वंदणा 1008 वार छे। श्रीः।

हिन्दी अनुवाद

24. महावीरस्वामीजी

आपने स्वयं अकेले ही प्रव्रज्या अंगीकार की थी।

आपके परिवार में गौतम प्रमुख 11 गणधर, 14,000 साधु, 36,000 साध्वियां, 1,59,000 श्रावक और 3,27,000 श्राविकाएं थीं।

आपका देहमान 7 हाथ ऊंचा था। आपका वर्ण पीत (सुवर्ण) है। आपका लांछन सिंह है। आपकी आयु पूरे 72 वर्ष की थी।

विचरण करते आप श्रीसिद्धाचलजी पहुंचे। देवताओं ने समवसरण की रचना की। वहां विराजित होकर आप देशना दे रहे थे, उसी समय देव और देवता, दो मित्र-सिद्धाचलजी दर्शनार्थ पहुंचे। उन्होंने एक मुनिराज को सूर्य की आतापना लेते हुए देखा। मित्रदेवता ने देवमित्र से पूछा, ''हे मित्र! इन मुनि के बारे में आप क्या कुछ जानते हैं?'' देवमित्र ने कहा, ''ज्यादा तो मैं कुछ नहीं जानता, मगर आज से सात दिन पहले मैं महाविदेह क्षेत्र में श्रीसीमंधरस्वामी के दर्शनार्थ गया था। वहां सुना था कि एक अधर्मी, दुराचारी, प्रजापीडक, सप्तव्यसनी नृप अपनी सभा में बैठा था, उसी समय आकाश से कल्पवृक्ष का एक पत्ता गिरा, जिसमें एक श्लोक लिखा था, जिसे पढते ही वह करकंडुनृप भयभीत होकर कांपने लगा। वह सोचने लगा, मैंने तो बहुत पाप कर्म किये हैं तो अब मुझे इस कर्म से कैसे मुक्ति मिलेगी? मुझे आत्मघात ही करना होगा, ऐसा सोचकर वह नगर बाहर निकल गया। चलते-चलते आम्र वृक्ष के नीचे आराम करने बैठा। मन में सोच रहा था, आत्मघात कैसे किया जाए? वहां ही अकस्मात् एक गाय अपने सींगें घुमाती हुई नृप को मारने के लिए दौड़ी। भयभीत होकर राजा ने खड्ग निकाला और अपने बचाव के लिए गाय पर वार किया। गाय दो टुकड़ों में विभक्त हो गई। उसमें से एक आभूषण-वस्त्र सहित सुन्दर नवयौवना स्त्री उपस्थित हुई। उसने राजा से कहा, ''अरे! ये अबोल-दुर्बल गाय की तूने क्यों हत्या की? जो क्षत्रिय है, पराक्रमी है, वह कभी दुर्बल की हत्या नहीं करते। अगर तेरे में शौर्य है तो मेरे साथ युद्ध कर।'' ऐसा कहते ही उसने राजा पर प्रहार किया। राजा गिर पड़ा। उसने कहा, ''तेरे में शौर्य-बल है ही कहां? खुद तो गिर पड़ा।''

स्त्री के कटाक्षयुक्त वचन सुनते ही राजा क्रोधित हो उठा। उसने स्वयं उठने का प्रयत्न किया लेकिन उठ नहीं पाया। निराश होकर आंखें मूंदकर सोचने लगा, ''क्या एक अबला ने मुझे परास्त कर दिया?'' जैसे आंखें खुली तो न तो वहां गाय थी न तो यौवना स्त्री और न कोई प्रहार। सोचने लगा, ''मैंने सपना तो नहीं देखा। क्या वह इन्द्रजाल थी?'' इतने में ही राजा की गोत्रदेवी अंबिका दृश्यमान हुई। उसने राजा से कहा, ''हे राजन्! धर्मकार्य के लिए अभी तेरा समय नहीं हुआ है। तुझे अभी छः मास भ्रमण करना होगा, विविध कष्ट सहने होंगे, तीर्थयात्रा करनी होगी। जब समता-क्षमाभाव उत्पन्न होंगे तब मैं तुझे अच्छा स्थान दिखाऊंगी।'' ऐसा कहते देवी अदृश्य हो गई।

राजा सोचने लगा। जब तक समता नहीं होगी तो धर्मकार्य कैसे होंगे? वह आगे रास्ते चल पड़ा। क्रमशः छः महीने बीत गए । सूर्यास्त का समय हो रहा था। एक विशाल वट वृक्ष देखते ही उसके नीचे रात्रि निर्गमन के लिए रुकने का सोचा। वृक्ष के पत्तों का संस्तारक तैयार किया। स्वयं की आलोचना करने लगा, अभी समता नहीं आई, अगर आई होती तो देवी खुद आकर मुझे मार्गदर्शन देती। राजा निद्राधीन हो गया।

एक राक्षस वहां आकर कहने लगा, ''अरे राजन्! राज्य के अहंकार से तूने मेरी स्त्री और धन छीन लिया था, वह कर्म अब उदय में आया है।'' वह राजा को उठाकर चलने लगा। सोचने लगा कि इसका क्या करूं? स्वयं उसे खाऊं, समुद्र में डाल दूं, या उसके सहस्र टुकड़े कर दूं, फिर भी मेरा क्रोध शांत नहीं हो सकता है। उसने अपनी दैवी माया से लोहे के नुकीले कील उत्पन्न किये और जिस तरह धोबी कपड़े को पटक-पटक कर धोते हैं, उसी तरह वह राजा के शरीर को जोरों से पटकने लगा। फिर भी राजा को कषाय उत्पन्न न हुआ। राक्षस ने चार प्रहर राजा को विविध उपसर्ग किये, फिर भी राजा समता भाव से सहता रहा। राक्षस खुद थक गया और राजा को उसी वृक्ष के तले छोड़ आया।

सुबह का समय हुआ। गोत्रदेवी प्रगट हुई और कहा, ''हे राजन्! सोरठ प्रदेश में श्री पुंडरीक पर्वत है, वहां जाकर चारित्र ग्रहण करो। उस पर्वत की महिमा से सातवें दिन तुझे मोक्ष प्राप्त होगा।'' देवी अदृश्य हो गई। वह सोरठ की ओर चलने लगा, वहां रास्ते में मुनिदर्शन हुए। मुनि की देशना से प्रतिबोधित होकर राजा ने चारित्र ग्रहण किया और क्रमशः कंडूऋषि पुंडरीकगिरि पहुंचे। ऋषभदेव की प्रतिमा की वंदना, पूजा की और एकाकी स्थल पर पहुंचकर सूर्य की आतापना ले रहे हैं। आज सातवां दिन है।'' दोनों मित्र वार्तालाप कर रहे थे, तभी उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। अंततः केवली होकर कंडूमुनिजी ने सिद्धपद-मोक्षपद प्राप्त किया। विमलगिरि, मुक्तिगिरि को भावपूर्वक वंदन।

जूनागढ़ का नृप प्रभु दर्शन करके इन्द्र समीप आकर बैठा। उसने सौधर्म गणधर से सिद्धाचलजी का माहात्म्य पूछा। तब श्री वीर भगवंत ने कहा, ''यह राजा के वंश में महिपाल नामक कुष्ठ रोगी राजा उत्पन्न होगा। उनका पूरा बदन कुष्ठ रोग से व्याप्त होगा और उसकी दुर्गंध से उसे नगर के बाहरी प्रदेश में रहना होगा। असाध्य वेदना उसे भुगतनी होगी।

चैत्रमास का अष्टह्निक महोत्सव करने अनेक विद्याधर युगल शत्रुंजय पहुंचे हुए हैं। एक विद्याधरी ने अपने स्वामी विद्याधर से कहा, ''स्वामी हम दोनों सूर्यकुंड में स्नान करेंगे और बाद में ऋषभदेव की सूत्र पूजा विधि सम्पन्न करके ही वापिस घर लौटेंगे।'' दोनों ने सूर्यकुंड में स्नान किया और सूर्यकुंड के पानी से शांतिकलश भरा। दोनों ऋषभदेव की मूर्ति के सन्मुख गये। उन्होंने स्नात्र-पूजा विधि शुरू की। शांतिकलश के जल से प्रभु की मणिमय मूर्ति का प्रक्षालन किया। भक्तिभाव पूर्वक विधि सम्पन्न की और शांतिकलश शांतिजल से भर दिया। दोनों ने वापिस घर की ओर प्रयाण किया।

मार्ग में कुष्ठरोगी महिपाल की दर्दभरी चीख; आक्रन्द सुना। विद्याधरी ने करुणा से प्रियतम से इस विषयक पूछा, तब उसने बताया कि ''यह महिपाल नामक कुष्ठरोगी नृप है। पूर्वकृत कर्मोदय जागृत हुआ है जो असाध्य रोग से पीड़ित है। मगर उसका एक उपाय है। अगर उसे सिद्धाचलजी स्थित सूर्यकुंड के जल का स्पर्श हो जाये तो यह रोग मिट सकता है, ऐसा मैंने मुनि से जाना है।''

विद्याधरी के हर्ष की सीमा न रही। तुरन्त ही उसने विमान रुकवाया। शांतिकलश के शांतिजल से उसने नृप के शरीर पर छिटकाव किया, तो उसके अठारह प्रकार के कुष्ठरोग बाहर निकलने लगे और कहने लगे, ''हे राजन्! अपना सात जन्मों से वैर था। मगर तुम्हारे इस सूर्यकुंड जलसे- शांतिकलश के शांतिजल के प्रभाव से अब हमारी शक्ति मंद हो गई है, जिससे अब हम नहीं रह पायेंगे।'' और वे चले गये।

राजा का रोग अदृश्य हुआ और वह निरोगी हो गया। सर्वत्र हर्षोत्सव, हर्षोल्लास का महोत्सव होने लगा। एक बार चारण मुनि पधारे। राजा ने उन्हें आहार से प्रतिलाभित किया और कुष्ठ रोग का कारण पूछा। मुनि ने कहा, ''इस जन्म से पूर्व सातवें जन्म में तूने मुनि का उपघात किया था, वह तेरे पाप कर्म क्रमशः क्षय होकर जो बचे थे, उससे तुझे कुष्ठरोग हुआ था।'' मुनि का कथन सुनकर राजा को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्वभव प्रत्यक्ष देखा।

चतुर्विध संघ लेकर राजा सिद्धाचलजी पहुंचे। वहां प्रभुदर्शन-अष्टाह्निक महोत्सव किया। फिर चारित्र धर्म अंगीकार किया। अनशन व्रत अंगीकार करके सिद्धपद-मोक्षपद प्राप्त किया।

नमो सिद्धाचलजी-विमलाचलजी।

भगवान महावीर को सौधर्म इन्द्र ने शत्रुंजय नदी के महिमा विषयक पूछा। वीर ने सविस्तृत महिमा बताई। उस शत्रुंजय नदी में जो भव्य जीव स्नान करते हैं, उसके भव भ्रमण के चक्र कम होते हैं, कर्मक्षय से मुक्ति शीघ्र मिलती है।

शत्रुंजयतीर्थ का 17 तीर्थोद्धार जिसने करवाए थे, उस विषयक जानकारी दी गई है।

प्रथम जीर्णोद्धार भरत चक्रवर्ती,

दूसरा जीर्णोद्धार दंडवीर्यनृप,

तीसरा जीर्णोद्धार ईशानइंद्र,

चौथा जीर्णोद्धार माहेन्द्र,

पांचवां जीर्णोद्धार ब्रह्मेन्द्र,

छठा जीर्णोद्धार भुवनपति,

सातवां जीर्णोद्धार सगर चक्रवर्ती,

आठवां जीर्णोद्धार व्यंतरेन्द्र,

नौवां जीर्णोद्धार चंद्रयशा नृप,

दसवां जीर्णोद्धार चक्रायुध नृप,

ग्यारहवां जीर्णोद्धार रामचन्द्रजी,

बारहवां जीर्णोद्धार पांच पांडव,

तेरहवां जीर्णोद्धार जावडभावड,

चौदहवां जीर्णोद्धार बाहडदे मंत्री,

पन्द्रहवां जीर्णोद्धार समरासारंग,

सोलहवां जीर्णोद्धार कर्मशाह,

सत्रहवां जीर्णोद्धार द्रुपसाह आचार्य के सदुपदेश से विमलवाहन नृप करवाएंगें ।

यह सत्रह तो बड़े जीर्णोद्धार हैं। अन्य छोटे तो असंख्य हैं।

सिद्धाचलजी के 21 नाम निम्नलिखित हैं

श्री शत्रुंजय 1, श्री पुंडरीकगिरि 2, श्री सिद्धक्षेत्रा 3, श्री विमलाचल 4, श्री सुरगिरि 5, श्री महागिरि 6, श्री पुण्यराशि 7, श्री श्रीपद 8, श्री पर्वेद्रं 9, श्री महातीर्थ 10, श्री शाश्वता 11, श्री वृद्धशक्ति 12, श्री मुक्तिलय 13, श्री पुष्पदंत 14, श्री महापद्म 15, श्री पृथ्वीपीठ 16, श्री सुभद्र 17, श्री कैलासगिरि 18, श्री पातालमुख 19, श्री अकर्मक 20, श्री सर्वकामद 21 ।

प्रशस्ति :ह्न श्री सिद्धाचलजी को नमस्कार हो। यह श्री सिद्धाचल पट पूर्ण हुआ। सम्वत् 1859 का वर्ष, शक संवत 1725 की (पोंस) मृगशिर बदी के दिन कृष्ण पक्ष में अगस्तपुर में सुमतिनाथ की कृपा से पूर्ण हुआ। पं. केसरविजय को 1008 बार वंदना। श्रीः।

Transliteration

// have covīsamā śrīVardhamāṃna-svāmī ekallamalla pote dikṣā. igyāra gaṇadhara, cauda hajāra sādhu, chatrīsa hajāra sādhavī, eka lāṣa ogaṇasāṭha hajāra śrāvaka, triṇa lāṣa sattāvīsa hajāra śrāvikā, sātha hātha deha, siha-laṃchana, pita-varṇa.[7] te śrīVirasvāmī vicaratā śrīSiddhācaleṃ samosaryā. devatāiṃ samosaraṇa racyūṃ. tri-gaḍeṃ besī prabhujī deśanā de cheṃ.

ehave sameṃ beṃ mitra deva-devatā śrīSidhācala nī ne bheṭavā āvyā cheṃ. jātrā kareṃ cheṃ. ehaveṃ eka stānakeṃ muni-rāja ekalo surya-sāmo ātāpa nā le cheṃ. tivāreṃ mitra devatā mitra deva neṃ puchem che je "he mitra, ā munī nī vāta tuṃ kāiṃ jāṇe cheṃ"?. tivāreṃ deva mitra neṃ mitra kaheṃ cheṃ je "huṃ to munī vāta nathī jāṇato, piṇa āja thī huṃ sātamā dīvasa pahilāṃ huṃ Mahāvideheṃ śrīŚrīmaṃdhara svāmi ne vāndavā gayo hato. tivāreṃ śrīSīmaṃdhara-svāmī kehatā havā mahā adharama no karanāra, sāta vasana no sevanāra, prajā neṃ piḍanāra, ehavo Karakaṃḍu nāme rājā rāja- sa<pra>bhā purī neṃ beṭṭho cheṃ. ehave ākāsa thakī kalpa-vṛkṣa ṇuṃ pānaḍuṃ sabhā māṃ paḍūṃ, pāṇaḍā māṃ eka śloka lasyo cheṃ. te śloka rājāiṃ vācyo. te vācatāṃ rājā thara 2 dhrujyo, kaṃpavā lāgo, vicāravā lāgo "jehave huṃ ehavā pāpa thakī kima chuṭuṃ? to avasya āpaghāta karīneṃ maravuṃ ja."

iṃma vicārīṇeṃ ekalo nagara bāheṃre rājā nikalyo. cyāra prahara rāta sudhī cālyo. prabhāta thayo. tīvāreṃ koika moṭī aṭavī māṃ āṃbā nā vṛkṣa taleṃ visāmo levā neṃ rājā beṭṭho. mana mā vicāre cheṃ je "āpaghāta kīṇi rītem karīneṃ maruṃ?" ehavanā akasmāt eka gāya seṃghaḍā ulālatī rājā neṃ māravā dhāī. tivāreṃ bhaya-bhranta thakeṃ rājāiṃ ṣaḍaka kāḍhī gāya neṃ prahāra mukyo. te gāya nā beṃ ṣaṇḍa thayā. te gāya mā thī eka strī nava-jovanā ābhuṣaṇa-vastre sahīta māhārupa svīha neṃ viṣeṃ kātī dharatī, sāmi ubhā rahī. teṃ stri rājā neṃ kaheṃ cheṃ "are duṣṭa durbala pasu je gāya teha neṃ haṇīneṃ syūṃ pāpa karyuṃ? je kṣitri hoiṃ te durbala neṃ na haṇeṃ. jo tujha māṃ parākrama hoya, to mujha saṃghāteṃ judha kara". tivāreṃ "tuṃ kṣitri puruṣa ṣaro" ehavāṃ lāpatā (?) vacana sāṃbhalī rājā ṣaḍaga leineṃ te strī sāmo dhāyo. ehaveṃ striiṃ kāti no prahāra mukyo. te rājā heṭho paryo. tivāre te stri vali rājā neṃ kaheṃ "parākrama valī kāiṃ cheṃ?" te vacana sāṃbhalīneṃ rājā ghaṇuṃ rāto tāto thayo, paṇa uṭhavā no bala sarira mā rahyo nathī. tivāreṃ rāja mana māṃ vīcāreṃ cheṃ "aho dhig astu hoḥ mujha neṃ je abalāṃ strī kevāiṃ tiṇeṃ mujha neṃ jityo". iṃma moṭā āloca māṃ rājā paḍyo. ehaveṃ āṣa ughāḍineṃ jove, to gāya paṇa nahī, stri paṇa nahi, kāti no prahāra paṇi nahi. ehavo dekhī rājā piṇa vicāravā lāgo je "huṃ sūṇuṃ deṣuṃ chuṃ ke iṃ(dra)jāla deṣū chuṃ".

ehavuṃ jihāṃ vicāreṃ cheṃ, tihāṃ Aṃbikā ehaveṃ nāmeṃ rāṃjā nī gotra-devī pragaṭa thaineṃ kaheṃ cheṃ "haji tuṃ dharma neṃ ajoga cheṃ. cha mahinā sudhi prathavī mā bhamisa, nānā prakāra nā tirtha karīsa, ghaṇā duṣa sahisa. tivāreṃ tujha neṃ samatā āvasyeṃ. tivāreṃ hu tujha neṃ ruḍu thānaka battāvīsa". iṃma kahineṃ devī adṛsa thaī. rājāiṃ te devī nā vacana sābhalī vīcāravā lāgo. paṇa samatā na āvī. tihāṃ śuddhī dharma nī vāta vegalī rahī. iṃma vicārīneṃ rājā valī āgala cālyo. mārga neṃ viṣe aneṃ(ka) prakāra nā kaṣṭa neṃ sahato cha māsa thaī gayā.

ehaveṃ eka parvata āvyo. te heṭṭheṃ vaḍa-vṛkṣa cheṃ. tihāṃ āvyo. etaleṃ surya asta thayo. tivāreṃ rājāiṃ cīntavuṃ "rātra ihāṃ rahīiṃ". ehavūṃ vīcārīneṃ tihā rahyo. vaḍa nā pāṃnaḍā no santhāro karīneṃ upareṃ beṭṭho. ciṃta neṃ viṣeṃ āloceṃ cheṃ je "haji sudhī mujha neṃ samatā na āvī. jo samatā āvī hota to devīiṃ mujha neṃ dharma-sthānaka batāveta". ima vīcāratāṃ rājā neṃ nidrā āvī. ehaveṃ eka rākṣasa āvyo. kehavā lāgo "areṃ rājā, te rājya neṃ ahaṃkāreṃ karīneṃ māharī stri māharuṃ dhana te lidhuṃ. teha nā phala jo tujha neṃ udayeṃ āvyā cheṃ". ima kahīneṃ rākṣaseṃ rājā prateṃ upāḍineṃ cālyo. parvata nī kaṃdharāiṃ jaineṃ rākṣasa vicāravā lāgo "e <e> rājā neṃ bhakṣaṇa karuṃ tathā samudra māṃ nāṃṣu tathā ṣaṃḍo-ṣaṃḍa karuṃ, piṇa toya māharo kaṣāya upasame nahīṃ. etalā

7. Life duration is missing in this list.

vānā sida karuṃ?" moṭā pathara nī salā upareṃ aṇi<aṃṇi>ālāṃ loha nā goṣaru deva-māyāiṃ vikuravyā. te upareṃ dhobī jīma lughaḍāṃ jhāpaṭeṃ. tima rājā neṃ rākṣasa jhīkeṃ tima pachāḍeṃ tohi, piṇa rājā neṃ lagāra mātra kaṣāya no udaya na thayo. iṃma cyāra prahara rājā neṃ upadravya karineṃ rākṣasa thāko. rākṣaseṃ vicāruṃ je "e to ima marato nathī, huṃ sūṃ sūṃ karuṃ" thākineṃ pācho vaḍa taleṃ muṃkyoḥ.

prabhāta-kāleṃ thayo. ehaveṃ gotra-devī vali pragaṭa thaī. te kehavā lāgī "he rājā, tū Soraṭha-deseḥ śrīPuḍarīka-parvata cheṃ. tīhāṃ jaī, cāritra leī, te parvata nā mahimā thakī sāta meṃ dīvaseṃ karma-kṣaya karī mokṣa jāisaḥ". ehavūṃ gotra-devī kahineḥ adṛsya thaī. tihāṃ thī rājya-mārge āvatāṃ muni milyā desanā sāṃbhalī, cā(ri)tra leī, Puṃḍarīkagirii Kaṇḍū-rājārīṣi āvyā. girīrāja neṃ bheṭī Riṣabha nī murtti naiṃ vāṃdī śrīVīra neṃ caraṇeṃ namī ekāte jai surja-sāmī ātāpanā le cheṃ. teha neṃ āje sātamo dīvasa cheṃ. devatā te potā nā mitra deva teneṃ kaheṃ cheṃ. te māṭeṃ hamaṇāṃ e munī neṃ kevalajñāna upajaseṃ.

devatā iṃma vāta karatāṃ te munirāja neṃ śukala-dhyāna neṃ jogeṃ kevala-jñāna upanuṃ. aṃtagaḍa kevalī thaī Kaṃḍūmunijī sidha varyā // namo namoḥ // śrīVimalagiri / Muktigirījī na(ma)skāra karu chuṃ.

ehaveṃ Junāgaḍha no rājā prabhu ne vāndīneṃ indra nī joḍeṃ beṭho. tehaveṃ Saudharmā-gaṇadharajīiṃ śrīSidhācalajī no mahātma puchyo. tivāreṃ Vīra kaheṃ cheṃ "ā rājā beṭṭho cheṃ. eha nā vaṃsa ne viṣeṃ māhā-koḍhio Mahipāla ehaveṃ nāmeṃ rājā thāseṃ. te rājā ne koḍhi-rogeṃ sarira gandhāseṃ. je nagara māṃ rahū na jāiṃ, gāṃma bāhira rahesyeṃ. rāta jāseṃ. to divasa naheṃ jāyeṃ. koḍha nī asyādhya vedanā bhogavato rahesyeṃ".

Caitrī no aṭṭhāi mahochava karavā neṃ ghaṇā vidyādhara, ghaṇī vadyādharīo Setrujā neṃ viṣeṃ āvyā cheṃ. te ṭhekāṇeṃ pota potā nī dīse jāiṃ cheṃ. tihāṃ eka vidyā(dha)rī bharatāra neṃ kaheṃ cheṃ "svāmī, āpaṇa bihuṃ jaṇā Suryakuṇḍa mā nāhiṃ Ṛṣabha neṃ pujī pacheṃ āpaṇa ghareṃ jaisuṃ. je jāya tehaneṃ jāvā dyo". te sāṃbhalīneṃ vidyādhara-vidyādharaṇī Surya-kuṇḍa māṃ nāhī, pujā karī, sāṃtikalasa jaleṃ bharī, vimāna māṃ melī, tihāṃ thī be jaṇāṃ cālyā. mārgeṃ āvatā Mahipālarājā koḍhe rogeṃ mahā ākranda kareṃ cheṃ. te deṣi vidyādharī neṃ karuṇā āvi "svāmi, ā kuṇa koḍhiyo ṭalavaleṃ cheṃ?". tivāreṃ vidyādhara kaheṃ cheṃ "he strī, Mahipāla nāmeṃ koḍhio rājā cheṃ. purva-kṛta-karma udayeṃ āvyā cheṃ". tivāreṃ vidyādharīiṃ pūchuṃ "je e roga no eka upāya cheṃ: śrīSidhācalajī upareṃ Sūryavana māṃ Sūryakuṇḍa cheṃ. te kuṇḍa nā pāṇi nā bindu no pharasa thāya, to roga jāyeṃ". ehavūṃ munī-rāja nā muṣa thī sāṃbhaluṃ che". te kuṇḍa nā pāṇi vīdyā vāta sāmbhalīneṃ vidyādharī harṣa dharatī kalasa thī śāntijala hātha māṃ lei, rājā nā sarireṃ chāṃṭā nāṣyā. etaleṃ aḍhāra jātanā koḍha nikalatā kehavā lāgā "are rājā, amāre tāhareṃ sāta bhava no vera hato. haveṃ amāro joro thāko. ama thī haveṃ rehavāya nahīṃ, etalā māṭeṃ haveṃ ameṃ jaīiṃ cheṃ". iṃma kehatā thakā roga adṛśya thayo. rājā nīroga thayo. prabhāte harṣa, vadhāmaṇā, uchava ghaṇā thayā.

ehaveṃ cāraṇa-muni āvyā. āhāra paḍilābhī roga nuṃ kāraṇa pūchūṃ. tivāreṃ muni kaheṃ "pāchaleṃ sātameṃ bhaveṃ te munī no ghāta karyo hato. te pāpa dhotā 2 kāika rahyuṃ hatuṃ tethī koḍi-roga upano". te vāta sā(m)bhali rājā neṃ jāti-samaraṇa upanuṃ. purava-bhava dīṭṭho. tivāreṃ caturvidha-saṃgha leineṃ rājā śrīSidhācalajī āvyā. tihāṃ aṭṭhāi mahochava karī, cāritra lei, aṇasaṇa karīneṃ, sīdhī neṃ varyā. namo namo śrīSidhācalajī, śrīVimalācalajī.

tihāṃ Sodharma-iṃdreṃ śrīŚetruṃjī nadī no mahimā puchyo. tivāre śrīVīreṃ nadī no mahimā moṭo varṇavyo cheṃ. e nadi māṃ je nāheṃ, te thāiṃ bhavya jī(va) saṃsāra thoḍo kareṃ.

tihāṃ tirtha-uddhāra kiṇeṃ 2 karyo, te kaheṃ cheṃ.

prathama uddhāra Bharata-cakravarttī no,

bījo udhāra Daṇḍabīrja no,
cotho Māhendra no,
chaṭṭho Bhuvanapatī no,
āṭṭhamo Vyantra-indra no,
dasamo Cakrāvudha no,
bāramo 5 Pāṇḍava no,
caudamo Bāhaḍade mantrī no,
solamo Karmāsā no,
trijo Isāna-indra no,
pāṃcamo Brahmandra no,
sātamo Sagara-cakrī no,
navamo Candrajasā no,
igyāramo Rāmacandra no,
teramo Jāvaḍa-Bhāvaḍa no,
panaramo Samarāsāranga no,

sattaramo uddhāra Dupasāha-ācārya nā upadesa thī Vīmalavāhana-rājā karāvasyeṃ // 17 // e satara to moṭā, bījā nāhanā nī saṃsyā nahīḥ //

have śrīSiddhācalajī nā 21 ekavīsa nāma cheṃ. te kaheṃ cheṃḥ //

1. śrīSetruṃjaya	2. Puṇḍarīkagīrī	3. Siddhaṣetreṃ	4. Vīmalācala
5. Suragirī	6. Mahāgirī	7. Puṇyarāsī	8. Śrīpada
9. Parvendra	10. Mahātīrtha	11. Sāsvato	12. Dṛḍhasakti
13. Muktilaya	14. Pupphadanta	15. Mahāpadma	16. Prathavīpīṭṭha
17. Subhadra	18. Kailāsagīrī	19. Pātālamula	20. Akarmaka
21. Sarvakāmada			

namaskāra hajo śrīSiddhācala neṃ namo namaḥ //

Colophon

iti śrīSiddhācala-paṭa saṃpurṇaṃḥ //

saṃvat 1859 nā varṣeṃ śāke 1725 pravarttamāneṃ Posa Māgasira vadi 2 dine kṛṣṇa-pakṣeḥ // Agastapure Sumatinātha-prasādena prasādāthḥ// e paṭa vāceṃ tehaneṃḥ// Paṃ / Kesaravijeṃ nī vaṃdaṇā 1008 vāra cheṃ // śrīḥ.

भाग–2

पट अन्तर्गत कथाएं

इस पट के अन्तर्गत की कथाएं मुख्यतः मौखिक रूप में मिल रही है। इस पट में उल्लिखित कथाएं शत्रुंजय तीर्थ की पवित्रता और प्रचलितता की ओर निर्देश करती हैं। मध्यकालीन युग अर्थात् विक्रम शताब्दी 12 से 18 के बीच शत्रुंजय तीर्थ विषयक अनेकविध कृतियों की रचना उपलब्ध हैं। विक्रम की 14वीं शताब्दी में धनेश्वर सूरि ने शत्रुंजय माहात्म्य की रचना की। इसके अलावा नेमिचन्द्रसूरि ने 'प्रवचन सारोद्धार', हेमचन्द्राचार्य ने 'त्रेसठ श्लाका महापुरुष चरित्र', सोमतिलक सूरि ने 'सप्तति स्थान प्रकरण' इत्यादि अनेक ग्रन्थों की संस्कृत, प्राकृत भाषा में रचना की हैं, जिसमें शत्रुंजय तीर्थ विषयक जानकारी उपलब्ध है। इसके अलावा प्रादेशिक भाषा में भी इस विषयक बहुत से जानकारीपूर्ण कृतियों की रचना उपलब्ध हैं जिसमें ये कथाएं किसी न किसी रूप में प्राप्त होती हैं।

इन सब कथाओं के द्वारा तीर्थ जैन परम्परा में कितना पवित्र और महत्वपूर्ण है इसकी प्रतीति स्वतः ही हो जाती है। उपरोक्त पट में समाविष्ट कथाएं शत्रुंजय स्थित प्रत्येक स्थल, टूंक, नदी, कुंड, पर्वत इत्यादि विषयक एक छोटा सा इतिहास चमत्कारिक घटना से हमें परिचित करती हैं। माना जाता है कि उसकी प्रत्येक ईंट पावन, पवित्र है और उसके साथ कोई न कोई ऐतिहासिक घटना जुड़ी हुई हैं। उसके कुण्ड के पानी का माहात्म्य आदि–अनादि से ऐसा ही सुरक्षित हैं। उसके कुण्ड और तालाब के पानी का सविशेष महत्त्व है और उससे संदर्भित कथाएं इसके अन्तर्गत उपलब्ध हैं।

इस तीर्थ पर सिर्फ मनुष्य ही नहीं मगर देव, देवी, विद्याधर, विद्याधरी, तिर्यंच और नारकी के जीव भी यात्रा करने आते हैं। उनके द्वारा प्रत्यक्ष स्वानुभव से भी इसका माहात्म्य जाना जाता है और इस तीर्थ की विशिष्टता पहचानी जाती है। उसके कुण्ड के पानी के स्पर्श मात्र से मानव जीवन में परिवर्तन हो सकता है और असाध्य, अति पीड़ित रोग भी क्षण मात्र में अदृश्य हो जाता है।

इस तीर्थ में स्थित प्रत्येक टेकडी, टूंक के साथ एक नाम जुड़ा हुआ है और उसके साथ एक ऐतिहासिक घटना घटित है उसी पर आधारित रहकर इसका नामकरण किया गया है।

इसके अन्तर्गत कथाएं उपर्युक्त विषय पर आधारित हैं जो जैन भक्तों को इस तीर्थ के प्रति श्रद्धान्वित करती है।

1. पट अन्तर्गत उल्लिखित कथाएं

1. ऋषभदेव

यहां ऋषभदेव तीर्थंकर अंतर्गत समाविष्ट कथाएं विस्तृत रूप से दी गई हैं।

पुंडरीकतीर्थ

ओसप्पिणीइ पढमं, सिद्धो, इह पढम चक्की–पढम सुओ।
पढम जिणस्स य पढमो, गणहारी जत्थ पुंडरीओ।।
चित्तस्स पुण्णिमाए–समणाणं पंचकोडि परिवरिओ।
णिम्मल जसपुंडरीअं–जयउ तं पुंडरीयतित्थं।।

अर्थ– अवसर्पिणो काल के प्रथम चक्रवर्ती के प्रथम पुत्रप्रथम तीर्थंकर के प्रथम गणधर पुंडरीक ने जहां चैत्रमास की पूर्णिमा के दिन पांच करोड़ मुनियों के साथ मोक्षपद प्राप्त किया, वहीं निर्मलयश कमल समान पुंडरीकतीर्थ जयवंत रहो।

इस अवसर्पिणी के प्रारम्भ में प्रथम चक्रवर्ती भरत के प्रथम पुत्र पुंडरीक अर्थात् ऋषभसेन, प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के प्रथम गणधर ने श्रीशत्रुंजयतीर्थ से मोक्ष गमन किया था। एक बार पुंडरीकजी ने भगवान से पूछा, ''मेरी मुक्ति कहां होगी?'' प्रभु ने प्रत्युत्तर में सुराष्ट्र (सौराष्ट्र) स्थित शत्रुंजय तीर्थ की महिमा दर्शाई। उन्होंने कहा कि वह तीर्थ अतीत में बहुत ही पावन–पवित्र माना जाता था और भविष्य में इसका माहात्म्य इतना ही रहेगा। वर्तमान काल में यह तीर्थ आपके नाम से ही पुनः विशेष प्रचलित होगा। इसी तीर्थ में आपके आत्मा की सिद्धि होगी। प्रभु से ऐसा कथन सुनकर आपने साथी मुनियों से कहा, ''यह गिरिवर क्षेत्र के प्रभाव से सिद्धि सुख का स्थान है और कषाय रूप शत्रुओं को अंकुशित करने वाला प्रमुख स्थान है। हमें यहाँ मुक्तिदायक संलेखना करनी होगी।'' ऐसा कहकर आपने अपने पाँच करोड़ मुनियों के साथ आलोचना की और महाव्रतों को दृढ़ किया। आपने मुनियों के साथ निरागार और दुष्कर ऐसा अंतिम भव संबंधित अनशन व्रत ग्रहण किया। एक मास के अनशन–संलेखना करके चैत्री पूर्णिमा के दिन आप सर्व ने सिद्धपद–मोक्षपद प्राप्त किया। तब से यह तीर्थ पुंडरीक तीर्थ से प्रचलित हुआ है और चैत्री पूर्णिमा पवित्र पर्व की तरह मनाई जाती है।

क्रमशः संघ आगे बढ़ता रहा। इन्द्र भी संघ में शामिल हुए थे। इन्द्र और भरत ने परस्पर प्रेमालिंगन किया। इन्द्र ने अपनी माला सहर्ष भरत को पहनाई। रायण वृक्ष जहां श्री ऋषभदेवजी ने अपनी देशना दी थी। जिस तरह पुष्करमेघ दूध की वर्षा करता है, इसी तरह रायण वृक्ष शीतलता–शांति–पवित्रता की वर्षा करता है। वहां उन्होंने रायण वृक्ष की प्रदक्षिणा की और ऋषभदेवजी की पादुका का स्थापन किया। इन्द्र ने भी आने वाला समय जानकर लोगों के भावों की विशुद्धता अर्थ प्रभु की मूर्ति स्थापना करने का महत्त्व समझाया। भरत ने वहां ऋषभदेवजी के एक भव्य, विशाल प्रासाद का निर्माण करवाया। वहां उन्होंने पुंडरीक गणधर की मूर्ति स्थापित की। रायण वृक्ष नीचे ऋषभदेवजी की पादुका का स्थापन किया। वहां तीन प्रदक्षिणा दी और अन्य सर्व पूजादि क्रिया सम्पन्न की।

भरतकुंड

सिद्धाचलजी का माहात्म्य सुनकर भरत ने चतुर्विध संघ के साथ तीर्थयात्रा करने प्रस्थान किया। रास्ते में उन्होंने कुंड और पादुका जीर्ण हुए देखे। भरत ने इन्द्र से इस विषयक वार्तालाप किया। इन्द्र ने कहा कि यह महाकुंड सर्वतीर्थवितार नाम से प्रख्यात है। पूर्व उत्सर्पिणी काल में इस गिरि पर केवलज्ञान नामक प्रथम तीर्थंकर के पास सौधर्मपति इन्द्र पधारे थे। उन्होंने तीर्थ की भक्ति–पूजा के लिए इस कुंड में गंगा, सिंधु, पद्महृद इत्यादि नदियों के जल निर्माण किये थे। इस कुंड के जल से प्रभुजी का स्नात्राभिषेक करने से पाप क्षय होते हैं और सिद्धपद प्राप्त होता है। बहुत प्राचीन होने से यह जीर्ण तो है, फिर भी उसका प्रभाव सविशेष बढ़ता ही रहता है। इन्द्र से ऐसा सुनकर भरत चक्रवर्ती ने उस कुंड और पादुका का जीर्णोद्धार करवाया। तभी से यह प्रभावशाली कुंड भरतकुंड नाम से प्रचलित है।

नमि-विनमि और चर्चगिरि

णमि विणमी खयरिंदा-सह मुणि कोडीहिं दो हिं संजाया।
जहिं सिद्ध सेहरा सइ-जयउ तयं पुंडरी तित्थं।।

अर्थ-दो करोड़ मुनियों के साथ नमि और विनमि नामक खेचरेन्द्र जहां सिद्धों में शिरोमणि रूप हुए, वह पुंडरीक तीर्थ जयवंत हो।

चक्रवर्ती भरत शत्रुंजय तीर्थ पर चतुर्विध संघ के साथ क्रमशः आगे बढ़ रहे थे। गिरनार की ओर जाते हुए नमि-विनमि ने नम्र स्वर से निवेदन किया ''भगवान ऋषभदेव ने हमें आदेश दिया है कि हमें इसी सिद्धाचल से ही मोक्षपद प्राप्त होगा, तो हम यहां ही रहना चाहते हैं।'' भरत ने सविनय प्रत्युत्तर देते हुए कहा, ''आप भव्यात्मा हैं। आपके आत्मा की सिद्धि हो ऐसा ही आप करें।'' तभी ये दोनों मुनि अन्य दो करोड़ मुनियों के साथ वहीं तीर्थ की निश्रा में रहे। फाल्गुन मास की शुक्ल दशमी के दिन आयुष्य-कर्म क्षय करते नमि-विनमि राजर्षि ने अन्य मुनियों के साथ मोक्षपद-सिद्धपद प्राप्त किया। तभी से यह स्थल पवित्र माना जाता है। कहा जाता है कि फाल्गुन पूर्णिमा के दिन उसी स्थान से दिया गया अल्प दान भी अति फलदायी प्रतीत होता है। भरत चक्रवर्ती और देवता ने वहां निर्वाण महोत्सव किया और उनकी रत्नमय मूर्तियां स्थापित की।

नमि-विनमि विद्याधर की कनका, चर्चा आदि 64 पुत्रियां भी उसी पवित्र तीर्थ पर चारित्रधर्म ग्रहण करके निवास करती थीं। अपने कर्मों का क्षय करते हुए उन्होंने चैत्र मास की कृष्णा चतुर्दशी के दिन अर्धरात्रि के समय वहां समाधिपूर्वक मरण प्राप्त किया, जिससे यह स्थान चर्चगिरि शिखर नाम से प्रचलित हुआ है। इससे चैत्र मास की कृष्णा चतुर्दशी पर्व तिथि की तरह स्वीकृत की गई है। अन्य मतानुसार भरत राजा ने वहां जो देवांगनाएं हुईं, उनकी स्थापना वहां की है। ऐसी भी मान्यता प्रचलित है कि ये देवियां भक्त के मनोवांछित पूर्ण करते हैं और प्रत्यक्ष भी होती हैं।

बाहुबली टूंक

क्रमशः आगे बढ़ते हुए वे तलाध्वज नामक पर्वत पर पहुँचे। शक्तिसिंह ने बताया कि इसी स्थान से बाहुबलीजी ने मोक्षपद-सिद्धपद प्राप्त किया है। इसे देखते ही भरत प्रसन्न हुए और वहाँ उन्होंने बाहुबलीजी का प्रासाद बनवाया। तभी से यह स्थान बाहुबली टूंक नाम से प्रचलित है।

चंद्रप्रभु मंदिर

चक्रवर्ती भरत अपने संघ के साथ यात्रा कर रहे थे। रास्ते में उन्हें एक तापस दिखाई दिया। वह एकाकी अपनी ध्यानावस्था में स्थित था। उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने तापस को सादर वंदन किया और इस तरह एक कोने में एकाकी बैठने का कारण पूछा। तापस ने भी ये भगवान ऋषभदेव के चक्रवर्ती पुत्र भरत है, ऐसा जान लिया। उसने प्रत्युत्तर में कहा, ''भगवान श्रीऋषभदेवजी ने मुझे आदेश दिया है कि आठवें तीर्थंकर चंद्रप्रभुजिन के शासनकाल में तू इसी स्थान से मोक्षपद पाएगा, बस तभी से मैं यहीं व्रत अंगीकार करके बैठा हूं।'' भरतजी प्रसन्न हुए। श्री चंद्रप्रभ स्वामी के समवसरण की रचना यहीं होने वाली है, ऐसा जानकर तापस की धर्मास्था स्थिर रखने के लिए, लोगों को श्रद्धान्वित करने हेतु उन्होंने वहां एक चंद्रप्रभुजिन के मंदिर का निर्माण करवाया और प्रभु की मणिमयमूर्ति की स्थापना भी करवाई। वहां तीर्थ का स्थापन किया, जिससे वहां अनेक तापस मुनिजन, साधुगण और चंद्रयश नृप ने भी चारित्रधर्म अंगीकार करके केवलज्ञान (तदनन्तर) मोक्ष सुख प्राप्त किया है। इस तरह इस स्थान का प्रभाव अति निर्मल-पवित्र है।

हस्तिकल्प तीर्थ

चक्रवर्ती भरत चतुर्विध संघ के साथ क्रमशः प्रयाण कर रहे थे। वहां सतुदि नामक एक पर्वत दिखाई दिया, जहां से भरत पूर्व में चक्रवर्ती पद प्राप्ति के लिए, षट्खंड पर विजय प्राप्त करने निकले थे। वहां से गुजरते हुए उन्होंने देखा कि यहां बहुत लोग मृत्यु प्राप्त कर रहे हैं। वे सोचने लगे कि यहां न तो युद्ध संग्राम है, फिर भी ऐसे ही लोगों का विनाश क्यों हो रहा है? उतने में ही एक चारण मुनि प्रत्यक्ष हुए। मुनि ने भी भरत को इस विषयक पृच्छा की। तभी भरत ने कहा, ''हे मुनीश्वर! यहां क्या हो रहा है, कुछ समझ में नहीं आ रहा है।'' तब मुनि ने समाधान करते हुए कहा, ''हे राजन्! कुछ मलेच्छ राजाओं ने यहां एक उपद्रव फैलाया है। जिससे बिना कारण मनुष्यों का क्षय हो रहा है।'' भरत राजा ने मुनि से उसके निवारण के लिए पूछा। मुनि ने बताया, ''हे राजन्! इस नदी का प्रभाव अत्यंत निर्मल-विशुद्ध है। इसी नदी के पानी के स्पर्श मात्र से यह रोग गायब हो जायेगा और मानव हानि-संहार बच पायेगा।'' भरत राजा ने मुनि को सादर वंदन किया। उन्होंने वहां के लोगों-सैन्य को इस नदी के प्रभाव विषय में समझाया। सबने उसी नदी में स्नान किया। समग्र सैन्य तथा प्रजा रोग मुक्त हुए। भरत राजा प्रसन्न हुए। मगर उनका एक प्रिय हस्ती वहां काल प्राप्त हो गया। राजा बहुत दुःखी हुए। अपने हस्ती की याद में उन्होंने वहां एक गांव की स्थापना की और उसे हस्तिनागपुर नाम दिया। वहां उन्होंने ऋषभदेवजी का एक अनुपम मंदिर का निर्माण किया और उसमें प्रभु की रत्न-मणिमय मूर्ति की स्थापना की, जिससे वह तीर्थ समान पवित्र, प्रचलित हो गया। उसी का नाम हस्तिकल्प तीर्थ प्रचलित है, जहाँ आज भी श्रद्धालू भक्त सादर वंदन-पूजा करते हैं और अपनी मनोवांछित कार्य की सिद्धि सम्पन्न कर सकते हैं।

नेमिनाथ के तीन कल्याणक

यात्रा करते क्रमशः चक्रवर्ती ससंघ गिरनार पहुंचे। उसी समय पांचवे देवलोक के स्वामी ब्रह्मेन्द्र करोड़ों देवताओं के साथ वहां उपस्थित हुए। ब्रह्मेन्द्रदेव ने भरत राजा से निवेदन करते हुए कहा, ''हे भरतेश्वर नृप! तुम्हारी जय हो! आप इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवजी के प्रथम पुत्र और प्रथम चक्रवर्ती भरतेश्वर हो। आपने विश्वोपकारी शत्रुंजयतीर्थ का इस काल में प्रगटीकरण किया है। पूर्व उत्सर्पिणी काल के सगर नामक तीर्थंकर के मुखारविन्द से सुना था कि इस अवसर्पिणी काल के 22वें तीर्थंकर अरिष्टनेमिजी के तीन कल्याणक यहीं होने वाले हैं और उनके शासनकाल में उनके गणधरपद प्राप्त कर मुक्तिपद-मोक्ष प्राप्त करूंगा। इसी कारण से मैंने यहां नेमिनाथजिन की प्रतिमा का स्थापन किया है। 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ के तीन कल्याणक यहां होने वाले हैं, इससे विदित होकर हम उनका प्रतिदिन नियमित पूजन-अर्चन करते हैं। आज आपके दर्शन से मंगल प्राप्त हुआ।'' भरत भी यह सुनकर प्रसन्न हुए और उन्होंने नेमिनाथ का प्रासाद निर्माण करवाया और नेमिनांथजिन की मंगलमूर्ति स्थापित की। तभी से यह गिरनारतीर्थ प्रचलित हुआ है।

बरडागिरि तीर्थ

गिरनार तीर्थ की वायव्य दिशा में एक गिरि शोभायमान भासित होता है, उसे देखते ही भरतनृप ने शक्तिसिंह को इस विषयक पूछा कि यह कौन-सा पर्वत है? शक्तिसिंह ने निरूपण किया, ''एक दुष्ट-दुराचारी बरड नामक राक्षस, राक्षसी विद्या प्राप्त करके इस पर्वत पर निवास करता है। वह वहां चोमेर विस्तार में बहुत उपद्रव-अत्याचार करता रहता है। वह किसी से अंकुशित नहीं है, वह मेरा भी कुछ सुनता नहीं है।'' यह सुनकर भरत राजा ने उस दुष्ट को पराजित करने हेतु अपने सेनापति सुषेण को वहां भेजा। बरडासुर भी अपने मिथ्या गर्व से अनेक राक्षसों के साथ युद्ध करने निकल आया, मगर सुषेण ने पलक झपकते ही सबको पराजित करके बरडासुर को अपने विमान में डालकर भरत नृप के पास ले आया। बरडासुर ने सबसे माफी मांगी और अपने किये पर पश्चाताप किया। भरत राजा ने उसे सदुपदेश से प्रतिबोधित किया। उसे भी सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। वहां भरत राजा ने आदिनाथ और नेमिनाथ के प्रासाद बनवाए और बरडा को उसके अधिष्ठायकदेव पद पर नियुक्त किया। तभी से यह स्थान बरडातीर्थ नाम से प्रचलित हुआ है। जो भी यात्रिक शुभ भावना-विशुद्ध मन से जिसकी चाहना करते हैं, उसे इस तीर्थ द्वारा इच्छित की प्राप्ति होती है।

द्राविड़ और वारिखिल्ल का मुक्तिगमन और हंसावतार तीर्थ

दसकोडि साहु सहिआ जत्थ, दविड वालिखिल्ल पमुह निवा।
सिद्धा नगाहिराए जयउ तयं पुंडरी तित्थं।।

अर्थ– जिस गिरिराज पर द्राविड और वारिखिल्ल इत्यादि नें दस करोड़ साधुओं सहित सिद्धिपद–मुक्ति प्राप्त किया, वह पुंडरीक तीर्थ जयवंत हो।

ऋषभदेव स्वामी के पुत्र द्रविड राजा को द्राविड और वारिखिल्ल नामक दो कुमार थे। द्रविड राजा ने चारित्र ग्रहण किया तब उन्होंने दोनों भाइयों के बीच में राज–सिद्धि का उचित बंटवारा किया था। बड़ा द्राविड राजा अपने राजलोभ–लालसा से वारिखिल्ल के साथ लड़ाई करता था। द्राविड ने वारिखिल्ल के सैन्य को धन की लालच में फंसाकर अपनी ओर खींच लिया था। भयंकर युद्ध हुआ। बारिश की ऋतु आई। चारों ओर पानी का उपद्रव हो रहा था। युद्ध तो चल ही रहा था। दोनों के सैन्य में दस करोड़ सैनिक मर गये।

द्राविड राजा के सुबुद्धि मंत्री ने वहां नदी किनारे तापस गुरु का आश्रम है, वहां जाने का सुझाव दिया। मंत्री के साथ राजा वहां गये। गुरु ने उन्हें धर्मोपदेश द्वारा प्रतिबोधित किया। अपने पूर्वज–ऋषभदेव–भरत चक्रवर्ती, बाहुबली इत्यादि के उदाहरणों से उसे प्रतिबोधित किया। वैराग्य से परिपूर्ण द्रविडराजा अपने छोटे भाई वारिखिल्ल से प्रायश्चित करने गया तो उसका वैराग्य प्रेम भाव में रूपांतरित हो गया। दोनों परस्पर गले मिले और दोनों ने चारित्रधर्म ग्रहण किया।

दोनों मुनि ने शत्रुंजय तीर्थ का माहात्म्य सुनकर अन्य मुनियों के साथ शत्रुंजय तीर्थ की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में एक तालाब किनारे विश्राम करने जा रहे थे। उसी स्थान पर हंस का एक झुंड था। मनुष्य के पदचाप सुनते ही हंस उसी स्थान से उड़ गये मगर एक वृद्ध हंस जो अशक्त, निर्बल था, वह उड़ नहीं पाया तो वह वहां ही रह गया। मुनि उसके पास गये। हंस की अवस्था देखकर करुणा प्रगट की। उन्होंने उसे पानी पिलाया। लगा कि यह उसकी अंतिम अवस्था हो रही है। दया भाव से उन्होंने उसे अपने साथ ले लिया और सिद्धाचल की ओर चल पड़े। सिद्धाचल पहुंचते ही मुनियों ने हंस को अनशन व्रत करवाया। नवकारमंत्र धर्माराधना करवाई। वह हंस भी वहां से मृत्यु प्राप्त कर आठवें देवलोक में पहुंचा।

हंसदेव को अवधिज्ञान से यह घटना मालूम हुई। वह बहुत प्रसन्न हुआ। मुनि और सिद्धाचलजी का उपकार स्वीकार किया। वहां हंसदेव ने भगवान के एक मन्दिर का निर्माण किया और जिनप्रतिमा की स्थापना की। उसी समय से यह तीर्थ हंसावतार नाम से प्रचलित हुआ है।

द्राविड और वारिखिल्ल ने भी चारित्र ग्रहण किया। मासक्षमण व्रत की तपाराधना की। अनुक्रम से समस्त मोहनीय कर्म का क्षय करके, त्रियोग से समग्र प्राणियों को मिच्छामि दुक्कडम् करते हुए आठों कर्म का क्षय से निर्मल केवलज्ञान प्राप्त करके दस करोड़ मुनियों के साथ मोक्षपद प्राप्त किया। हंसदेव ने सभक्ति, समृद्धि के साथ निर्वाण महोत्सव किया। कार्तिक पूर्णिमा के दिन उन्होंने शत्रुंजय तीर्थ से सिद्धगति प्राप्त की। चैत्र मास की पूर्णिमा के दिन पुंडरीक गणधर मोक्ष पहुंचे थे। इससे ये दोनों तिथियां कार्तिक पूर्णिमा और चैत्री पूर्णिमा पर्व माने जाते हैं। जो अर्हत् भक्त संघ सहित इन दिनों सिद्धाचल की यात्रा करते हैं, वे अनंत मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं।

कंदबगिरि

क्रमशः भरत राजा कंदबगिरि पहुंचे। वहां एक अनुपम अति प्रभावक गिरि–पर्वत को देखते ही वे प्रसन्नचित्त हो उठे। उन्होंने शक्तिसिंह को इस पर्वत विषयक पृच्छा की। शक्तिसिंह ने सविस्तार इसका माहात्म्य प्रदर्शित करते हुए कहा, ''यह सिद्धाचलजी की एक मनोहर टूंक है। उत्सर्पिणी काल में संप्रति नामक चौबीसवें तीर्थंकर थे। उनके गणधर का नाम कंदब था।

वह कंदबमुनि अपना निर्वाण काल नजदीक जानकर एक करोड़ अन्य मुनियों के साथ सिद्धाचलजी पधारे। उन्होंने एक मास की संलेखना–आराधना की और इसी स्थान से एक करोड़ मुनियों के साथ सिद्धपद–मोक्षपद प्राप्त किया। तभी से यह शिखर कंदबगिरि नाम से प्रचलित हुआ है। यह गिरि सर्व सिद्धि के स्थान रूप है। यहां अनेक प्रभाविक दिव्य औषधियां, रसकूपिका, कल्पवृक्ष इत्यादि पाये जाते हैं। यह गिरि सात्विक भक्तों के हर प्रकार के वांछित पूर्ण करता है और जो निःस्वार्थ अनासक्त भाव से आराधना करते हैं, उन्हें मोक्ष–सिद्धि प्रदान करता है।''

तलाध्वज शिखर

आगे चलने पर एक और विशिष्ट टूंक दिखाई दिया। शक्तिसिंह ने दर्शाया कि यह तलाध्वज नामक शिखर है। तलाध्वज नामक एक मुनि ने वहां से अन्य एक करोड़ मुनियों के साथ सर्व कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त किया था। वह स्वर्ग में तलाध्वज नामक देव के रूप में प्रचलित हुए। वहां उन्होंनें ऋषभदेव भगवंत का एक मंदिर निर्माण करवाया था। तभी से यह शिखर तलाध्वज नाम से प्रचलित है। शक्तिसिंह से विदित होकर भरत राजा ने वहां तलाध्वज नामक देव की स्थापना की है। तालध्वज देव के हाथ में खड्ग, ढाल, त्रिशूल और सर्प अवस्थित होते हैं। यह देव सदैव भक्तों की हर इच्छा पूर्ण करते हैं।

2. अजितनाथ

उलकझोल

अजितनाथ प्रभु ने शत्रुंजय पर चातुर्मास किया। उनके सुधर्मा नामक एक शिष्य अपने दूसरे शिष्य के साथ प्रभु दर्शनार्थ आ रहे थे। गर्मी का समय था। उनके हाथ में पानी (चावल धोया हुआ अचित्त पानी) का कलश था। मध्याह्न समय होने से थोड़ा आराम करने के लिए प्रथम शिखर पर बैठे। पानी का कलश उन्हीं के पास रखा हुआ था। एक क्षुधातुर कौआ कलश देखते ही वहाँ पहुंच गया और उस पर झपका तो कलश गिर गया और पानी नीचे गिर पड़ा। मुनि क्रोधित हो गये। मुनि ने सोचा जिस तरह इस कौअे के कारण मेरे मन के भाव बिगड़े, कषाय उत्पन्न हुआ, इसी तरह भविष्य में अन्य के साथ इस घटना का पुनरावर्तन न हो, उनमें कषाय उत्पन्न न हों, इस दृष्टि से उन्होंने कौअे को श्राप देते हुए कहा, ''रे दुष्ट काक! इस प्राणरक्षक जल का तूने क्यों नाश किया है? अब से इसी प्रभावशाली पवित्र तीर्थ पर तेरा कोई स्थान नहीं रहेगा।'' उसी दिन से उस तीर्थ पर कोई कौआ दिखाई नहीं देता है। यहां मुनि द्वारा ऐसा भी आदेश दिया गया है कि दुष्काल और विरोध जैसे अनर्थ को समर्थ करने वाला काक पक्षी कभी भी आ जाये तो इस विघ्न का नाश करने के लिए शांति कर्म करना है।

मुनि ने अपने तप के प्रभाव से सर्व मुनिगण को प्रासुक जल प्राप्त हो, ऐसा निर्माण किया। तभी से यह स्थान उलखझोल (उलफजल, उलखजल) नाम से प्रचलित है।

सगर चक्रवर्ती

सगर चक्रवर्ती के जिन्हुकुमार प्रमुख 60,000 पुत्र, पूर्वजों के तीर्थ की यात्रा करने को उत्सुक हुए। सबने शत्रुंजय–सिद्धाचलजी की ओर जाने का निर्धारण किया। उन्होंने पिता सगर चक्रवर्ती से तीर्थयात्रा की स्वीकृति के लिए विनती की और स्वीकृति मिलते ही यात्रा के लिए निकल पड़े। सिद्धाचलजी की यात्रा करते हुए जिन्हुकुमार ने सोचा कि भविष्य में मनुष्य इस तीर्थ का रक्षण कर पायेगा कि नहीं? अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित इस धर्मस्थान का नाश न होने पाये इस चिन्तन से उन्होंने तीर्थ की रक्षा करने का उपाय सोचा। उन्होंने अष्टापद की चौतरफ खाई बनाने का निर्णय किया। कार्यारम्भ हो गया। जमीन खुदते ही अंदर से मिट्टी निकलने लगी। नीचे भुवनपति देवता के भुवन–नागलोक में मिट्टी की वर्षा होने लगी। उत्पात होने लगा तो

भुवनपति के देवता क्रोधायमान हो उठे। फिर भी नागदेव ने सगर चक्रवर्ती के पुत्र और अष्टापद पर्वत की रक्षा का विषय जानकर अपने आपको अनुशासित करते हुए नम्र स्वर में विनती स्वरूप खाई बनाने से इनकार कर दिया। सगर पुत्रों ने भी कार्य स्थगित कर दिया। बाद में सबने मिलकर सोचा कि चारों ओर खाई तो बन गई है, मगर फिर भी कभी भी किसी समय में यह खाई मिट सकती है, तो अच्छा है कि उसे पानी से पूर्ण कर दी जाये, जिससे अच्छी तरह से सुरक्षा हो पाये। जिन्हुकुमार रत्नदंड द्वारा समुद्र से गंगा नदी का प्रवाह इस ओर खींच लाया और खाई को पानी से भरने लगा। पानी के प्रवाह से नागदेवता के घर में पानी आने लगा और कहीं दीवारें टूटने लगीं, तो नागदेवता के देव ज्वलनप्रभ नाग घबरा उठे। वे क्रोध से तिलमिला उठे। ज्वलनप्रभ ने सोचा, ''ये चक्रवर्ती के पुत्र मूर्ख और राज्यपद से उन्मत्त हुए हैं। उनसे विनती की, फिर भी वे समझे नहीं, ऐसे अहंकारी धिक्कार पात्र हैं।'' वे पाताल से बाहर आये और अपनी विषैली फुफ्कार से उन सभी पूरे साठ हजार को भस्मीभूत कर दिया।

अपने स्वामी का घात देखते ही सैनिकगण घबरा उठे। सोचने लगे, ''चक्रवर्ती ने अपने पुत्रों की जिम्मेदारी हमें सौंपी थी और हमारी नजर के सामने ही सब भस्मीभूत हो उठे तो अब हम उनके सामने क्या मुंह लेकर उपस्थित हो सकेंगे? बेहतर यही होगा कि हम सब ही अपनी जान अग्निदेव को न्यौछावर कर दें।''

सौधर्म इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से यह जाना। दयालु-करुणाशील इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण का वेश बनाकर उधर उपस्थित हुए। सैन्य को स्वयं का बलिदान न देने तथा नाश न करने हेतु समझाया। इन्द्र ने अपना स्वरूप प्रकट किया और चक्रवर्ती से भय नहीं रखने की सूचना करके, उन्हें अभयदान दिया। सेनापति को अयोध्या पहुंचने का आदेश देकर स्वयं वहां उपस्थित रहेंगे, ऐसा विश्वास दिलाया।

इन्द्र ने सगर चक्रवर्ती के महल के सामने वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप बनाया और अपने कंधे पर मृतपुत्र का पिंड रखकर विलाप करने लगे। सगर चक्रवर्ती ने उस विलाप का कारण पूछा तब उसने दर्शाया कि, ''मेरा इकलौता बेटा सर्पदंश से मृत्यु की ओर जा रहा है। मैंने अनेक उपाय किए हैं, फिर एक भी उपाय सफल नहीं हो पाया है। आप तो प्रजापालक चक्रवर्ती हैं। आप ही मेरे बेटे को आयु-जीवन प्रदान करें। अब एक ही उपाय बचा है। अगर आप मुझे कुमारी भस्म अर्थात् जिसके घर में पूर्व किसी ने भी मृत्यु प्राप्त न की हो, उपलब्ध करवा दें तो वह अवश्य नव-जीवन प्राप्त कर सकेगा। आपसे बस एक ही उम्मीद है।''

चक्रवर्ती उस ब्राह्मण के साथ कुमारी-भस्म ढूंढने निकल पड़ा। पूरे शहर में खोजा, मगर कहीं से भी ऐसी भस्म उपलब्ध न करा पाया। उसे विश्वास था कि मेरे घर में तो कुमारी भस्म मिल जायेगी, और मैं अपना फर्ज ठीक से निभा पाऊंगा। वह अपनी माता के पास पहुंचा और कुमारी भस्म की मांग की। माता ने भी बताया कि हमारे घर की भस्म भी कुमारी नहीं है। हमारे घर के पूर्वज भी मृत्यु प्राप्त हुए हैं। यह सुनते ही इन्द्र दुगुने वेग से विलाप करने लगा। चक्रवर्ती भी विप्र को अनित्य भावना, वैराग्य वचन से धीरज दे रहे थे, प्रतिबोधित कर रहे थे। इन्द्र रूपी ब्राह्मण ने कहा, ''हे राजन्! यह सब बातें समझाने-बोलने को आसान है, सरल है मगर जब स्वयं को सहना पड़े, तब वह बहुत ही दुष्कर है, कठिन है।'' चक्रवर्ती ने कहा, ''दोनों सरल हैं।''

ऐसे वार्तालाप चल रहा था कि द्वारपाल ने आकर साठ हजार पुत्रों की मृत्यु का समाचार दिया। चक्रवर्ती शोकमग्न हो गये। ब्राह्मण ने अपना असली स्वरूप प्रत्यक्ष किया और इन्द्र स्वयं चक्रवर्ती को आश्वासन देते हुए समझाने लगे। उतने में ही एक सेवक ने अजितनाथ तीर्थंकर के आगमन का शुभ समाचार दिया। इन्द्र स्वयं चक्रवर्ती के साथ प्रभु के समवसरण में गये। प्रभु ने अपनी देशना में चक्रवर्ती को संसार का असली स्वरूप बताया। उन्होंने सिद्धाचलजी तीर्थ का माहात्म्य बताया। तीर्थंकर की देशना श्रवण कर चक्रवर्ती प्रसन्न हुए। उन्होंने सिद्धाचलजी तीर्थयात्रा का निश्चय कर लिया।

संघ यात्रा के लिए प्रयाण करने वाले थे, उतने में एक दूत उपस्थित हुआ। उसने निवेदन किया कि अष्टापद गिरि चौतरफ पानी से पूर्ण हो गया है और ऊपर से बहता हुआ पानी आस-पास के प्रदेश को नुकसान कर रहा है। यह गंगा का पूर प्रलयकाल के समुद्र की तरह वृद्धिंगत होकर पृथ्वीतल को डूबो रहा है। सगर चक्रवर्ती ने जन्हु के पुत्र भगीरथ को बुलाया, अपने उत्संग में बिठाकर लाड से इस चुनौती युक्त कार्यभार हेतु नियुक्त करते हुए कहा, ''हे पुत्र, कुल दीपक! अब तू ही

अकेला मेरा जीवनाधार है। लोगों की रक्षा के लिए तू गंगानदी के पास जा और ज्वलनप्रभदेवजी की सहायता और दंडरत्न से गंगानदी के मुख्य प्रवाह की दिशा बदल दे ताकि पृथ्वी को बचाया जा सके।''

पितामह की आज्ञा शिरोधार्य कर भगीरथ अपने सैन्य के साथ चल पड़ा। अष्टापद पहुंचते ही पिता और चाचा की भस्म देखते ही शोकग्रस्त हो गया। पुनः स्वस्थ होकर ज्वलनप्रभ देव को आराधना से संतुष्ट किया। देव की सहायता से गंगा के उन्मार्गी दुःशक्य प्रवाह को दंडरत्न की सहायता से वैताढ्य पर्वत के नजदीक होकर गंगा नदी के मध्य में से मुख्य मार्ग की ओर प्रवाहित किया।

सगर चक्रवर्ती संघ सहित सिद्धाचल पहुंचे। प्रसन्न होकर उन्होंने वहां आदिनाथ प्रभु का स्नात्र-पूजादिक महोत्सव किया। वहाँ इन्द्र भी उपस्थित हुए। उन्होंने सगरराज को अपने पूर्वजों की परम्परा-कर्त्तव्य का स्मरण करवाया तो सगर चक्रवर्ती ने भी तीर्थोद्धार किया। उसी समय इन्द्र ने चक्रवर्ती को विनती युक्त स्वर में कहा, ''हे चक्री! जिस तरह बिना सूर्य दिन, बिना पुत्र कुल, बिना जीव देह, बिना चक्षु मुख शोभित नहीं होता, ठीक उसी तरह बिना तीर्थ समग्र सृष्टि भूतल अर्थहीन है, निष्फल है। अष्टापद पर्वत का मार्ग अवरुद्ध हो गया है, तभी यह तीर्थ ही समग्र प्राणी जगत् के लिए तारक-उद्धारक है। मगर जो समुद्र के पानी से यह मार्ग अवरोधित होगा तो ऐसा अन्य कोई तीर्थ जगत् में नहीं है, जिससे जैनधर्म, तीर्थंकर देव सुरक्षित रह पाए। अगला काल तो अति विषम है, इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि आप समुद्र यहां ले आओ और उसे सुरक्षित करो।'' भगीरथ भी गंगा को उचित स्वस्थान नियुक्त करके पितामह के पास आ पहुंचा। उन्होंने लवणदेव की आराधना की और वे प्रत्यक्ष हुए। उन्होंने स्वस्तिक देवता को आज्ञा दी कि समुद्र को सिद्धाचल द्वीप के पीछे की ओर ले आएं। स्वस्तिक देवता समुद्र लेकर उपस्थित हुए। इन्द्र ने समुद्र से अनुरोध किया कि समुद्र सिद्धाचल से बीस कोस की दूरी रखे। सगरचक्री ने भी समुद्र से बीस कोस दूर रहने की विनती की। लवणदेव ने उनकी इच्छा को स्वीकृति दी और तभी से समुद्र सिद्धाचल तीर्थ से बीस कोस अंतर पर स्थित बह रहा है।

4. अभिनन्दप्रभु

शत्रुंजय नामकरण

उपर्युक्त कथानक तीर्थाधिराज शत्रुंजय के अर्थ की प्रतीति करवाता है। शत्रुंजय अर्थात् शत्रु पर जय-विजय प्राप्त करना।

यह कथा हमें भगवान अभिनंदन के समीप ले चलती है। अभिनंदन जिन के शासनकाल में मृगध्वज राजा के पुत्र शुकराजा जो पूर्वजन्म में जितशत्रु नामक नृप थे, उन्होंने आचार्य, चतुर्विध संघ के साथ शत्रुंजय यात्रा-दर्शन के लिए प्रयाण किया। अभिग्रह किया कि शत्रुंजय दर्शन के पश्चात् ही चारों प्रकार के आहार ग्रहण करूंगा। रास्ते में कश्मीर देश के घने जंगलों में पहुंचे। अन्न-पानी के अभाव से राजा के स्वास्थ्य पर विपरीत असर हुआ। संघ ने राजा को अभिग्रह भंग करके पारणा-आहार ग्रहण करने का अनुरोध किया, फिर भी नृप तो अपने व्रत पर अडिग-दृढ़ रहे। सूर्यास्त का समय हो गया था। रात्रि के अंधकार में एक कवडयक्ष (कर्पदियक्ष) प्रगट हुआ। उसने राजा, प्रधान, आचार्य इत्यादि चार प्रधान पुरुषों को स्वप्न में सिद्धाचलजी के दर्शन के लिए अवगत करवाया।

काश्मीर प्रदेश की बाहरी प्रदेश में यक्ष ने सिद्धाचलजी का निर्माण किया। जितशत्रु नृप ने अपने चतुर्विध संघ के साथ सिद्धाचलजी का दर्शन किया और अपना अभिग्रह पूर्ण हुआ। नृप ने संघ के साथ भगवान की पूजा-अर्चना यथोचित विधिपूर्वक सम्पन्न की। राजा सात-आठ बार मंदिर के अंदर-बाहर करते रहे। प्रधान ने नृप को उधर ही रुकने का सूचन किया। नृप ने सूचन का स्वीकार किया और वहां विमलपुर नामक गांव का निर्माण किया।

नृप को हंसी और सारसी नामक सात्विक पत्नियां थीं। सब प्रभु पूजा-भक्ति कर रहे थे। एक दिन एक सुन्दर शुक उधर आ पहुंचा। नृप को वह अति प्रिय हो गया। क्रमशः नृप वृद्ध हुए। उन्होंने सिद्धाचल पर अनशन व्रत आरम्भ किया। आंखों के

समक्ष अपना प्रिय शुक था, जिससे तिर्यंच आयुबंध उत्पन्न हुआ। हंसी और सारसी दोनों धार्मिक, सात्त्विक थी। दोनों ने चारित्र ग्रहण किया, अनशन व्रत ग्रहण करके सौधर्म देवलोक में देव बने। अवधिज्ञान से अपने पूर्वपति को शुक स्वरूप देखा। उनको प्रतिबोधित किया। शुक ने भी अपने पूर्वजन्म की स्मृति से अनशन व्रताराधना की और देवलोक प्राप्त किया।

जितशत्रु नृप का जीव मृगध्वज राजा के वहां शुकराज कुमार रूप उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने शौर्य पराक्रम और द्रव्य से अनेक शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। शुक राजा ने अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर चारित्र धर्म अंगीकार किया। अपने आंतरिक शत्रु कषाय–क्रोध–मान–माया–लोभ इत्यादि पर विजय प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त किया। उसी दिन से उस तीर्थ का नाम शत्रुंजय (शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाला) प्रचलित हुआ।

16. शांतिनाथजिन

संघपति पद महिमा

यह कथा तीर्थयात्रा में संघपति पदवी – संघपति की महिमा को निरुपित करती है।

शांतिनाथ प्रभु विचरण करते हस्तिनापुर नगरी पधारे। सेवक ने आकर प्रभु के शुभागमन के शुभ समाचार दिए। नृप चक्रधर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सेवक को पंचांग द्रव्य से प्रतिलाभित किया। पंचांग द्रव्य अर्थात् प्रदेश, शस्त्र, नाणां, वस्त्र और आहार। नृप चक्रधर–शांतिनाथ पुत्र भी वहां अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ प्रभु दर्शनार्थ आए। प्रभु ने तीर्थ महिमा प्ररूपित किया। प्रभु ने चतुर्विध संघ के साथ यात्रा का सविशेष माहात्म्य दर्शाया और संघपति पदवी और उनके कार्य पर प्रकाश डालते हुए कहा, ''जो भव्यात्मा अनेक संघ को एकत्रित करके ग्राम, नगर और तीर्थ स्थान पर अवस्थित जिनमंदिर, तीर्थंकर देव की पूजा–अर्चना करता है, वह संघपति कहलाते हैं। उन्हें सामान्यतः निम्न पांच कार्य सविशेष रूप से करने हैं 1. महास्नान, 2. महापूजा, 3. दंडयुक्त ध्वजपूजा, 4. संघपूजा और 5. स्वामी वात्सल्य।''

चक्रधर नृप भी संघ लेकर तीर्थयात्रा के लिए उत्सुक हुए। उन्होंने चतुर्विध संघ के साथ तीर्थयात्रा प्रयाण का मनोमन निश्चय कर लिया। उन्होंने प्रभु से संघपति पदवी के लिए विनती की। प्रभु ने मूक सहमति दे दी। इन्द्र पूर्ण सामग्री लेकर उपस्थित हुए। प्रभु ने इन्द्र द्वारा प्रस्तुत किये गये सुवर्णथाल में से अक्षत युक्त वासक्षेप और इंद्रमाल से चक्रधर को संघपति पदवी पर नियुक्त किया।

चक्रधर नृप ने भी बड़ा उत्सव मनाया। घर वापिस लौटते ही उन्होंने विविध देशों के संघ को निमंत्रण दिया। अनेक स्थलों पर निमंत्रण पत्रिकाएं भेजी गई। अनेक आचार्य यथोचित मान–सन्मान के साथ संघ में सम्मिलित किए गए। हर्षोत्सव और महोत्सव की बड़ी धूमधाम से तैयारियां होने लगी।

इस तरह यहां संघपति पद, उसके कार्य और माहात्म्य निरूपित किया गया है।

सिंहउद्यान नामकरण

विचरण करते हुए शांतिनाथ प्रभु सिद्धाचल शत्रुंजय के समीपवर्ती सिंहोद्यान में पधारे। वे तो अपनी ध्यानावस्था में मग्न थे। उन्हें देखते ही एक सिंह प्रभु की ओर वार करने झपका, लंबी छलांग लगाई मगर वह वापस लौट पड़ा। सफल न रहा। सोचा ''मैं जल्दी में, आवेश में आ गया हूं, इससे शायद पीछे लौट पड़ा।'' उसने दूसरी बार दुगुनी शक्ति से वार किया, फिर भी वही, स्वयं असफल रहा और वापिस लौट पड़ा। अब उसे पूर्ण विश्वास था कि उसकी कोई गलती नहीं है। वह गुस्से से तिलमिला उठा। मन में अनेक कषाय उत्पन्न हो गये। अपनी सर्वशक्ति समेटकर क्रोध से आकुल होकर वह मुनि पर वार करने उछला, मगर फिर भी निष्फलता। वह असमंजस में पड़ गया। सोचने लगा, ''मेरी शक्ति में कोई असर नहीं है। निश्चय ही यह कोई महापुरुष, भव्यात्मा है, जिसकी मैंने विराधना की है। अब मेरी कौन–सी गति होगी? मैंने पाप कर्म बंध किया है।''

वह इस तरह चिन्तन में डूबा हुआ ही था कि प्रभु ने उसे अपना पूर्वजन्म स्मरण करवाकर प्रतिबोधित किया। पूर्वजन्म में वह मिथ्यात्वी ब्राह्मण था; जो यज्ञादि, हिंसादि क्रिया में प्रवृत्त रहता था। एक बार एक मुनि से उसकी भेंट हो गई। मुनि ने उसे ऐसे हिंसात्मक यज्ञादि कार्य न करने के लिए सदुपदेश दिया। वह सदुपदेश सह न पाया और क्रोधित होकर मुनि को मारने दौड़ा मगर इतना क्रोधांध था कि यज्ञस्तम्भ से टकराया और मृत्यु को प्राप्त हुआ। अपने आर्त्तध्यान के कारण उस विप्र ने सिंहोद्यान में सिंह का जन्म प्राप्त किया। सिंह ने अपना पूर्वजन्म देखा। वह मुनि की शरण में आ गया।

मुनि ने उसे प्रतिबोधित करते हुए कहा, ''सर्व प्राणी पर समभाव अवधारित करके यहीं रहो। इस क्षेत्र के प्रभाव से तुझे अवश्य स्वर्गगति प्राप्त होगी।''

प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए सिंह समतासागर में डूब गया। प्रभु का ध्यान करते हुए दया भाव में स्थित हुआ। श्री प्रभु से उसने अनशनादि व्रत ग्रहण किये और आठवें देवलोक को प्राप्त किया।

सिंहदेव ने अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव जाना। उसने पवित्र तीर्थ और परमोपकारी शांतिनाथ प्रभु के उपकार को याद किया। प्रभु के निवास से पवित्र-निर्मल स्थान पर सिंहदेव ने शांतिनाथ जिन की प्रतिमा सह एक सुन्दर-अनुपम चैत्य का निर्माण करवाया। तभी से यह स्थल 'सिंहोद्यान तीर्थ' नाम से प्रचलित है। सिंहदेव अधिष्ठित यह सिंहोद्यान तीर्थ शांतिनाथ प्रभु के भक्तों की सर्वकामना पूर्ण करते हैं।

20. मुनिसुव्रतजिन

रामचन्द्रजी द्वारा जीर्णोद्धार

श्रीमुनिसुव्रत प्रभु के शासनकाल में रामचन्द्रजी ने शत्रुंजय का तीर्थोद्धार किया है। उस विषयक जानकारी उपलब्ध होती है।

कयजिणपडिमुद्धारा, पंडवा जत्थ वीसकोडिजुआ।
मुत्ति निलयं पत्ता, तं सित्तुंजयमह तित्थं।।

अर्थ- जिसने जिन प्रतिमा का उद्धार किया है, उन पांडवों ने जहां बीस करोड़ मुनियों के साथ मुक्तिरूप आवास-घर प्राप्त किया है, वह शत्रुंजय महातीर्थ है।

मुनिसुव्रत प्रभु सिद्धाचलजी पधारे। देवता ने समवसरण की रचना की। प्रभु ने धर्मोपदेश में शत्रुंजय तीर्थ का माहात्म्य निरूपित किया। रामचन्द्रजी प्रभु की देशना से अत्यन्त प्रभावित हो गये। उन्होंने भी चतुर्विध संघ के साथ तीर्थयात्रा का आयोजन किया। संघ के साथ वे सिद्धाचलजी पहुंचे। वहां के तीर्थ, प्रतिमाजी की जीर्ण अवस्था देखी। अपने पूर्वज भरत चक्रवर्ती की परम्परा को ध्यान में रखते हुए उन्होंने भी वहां तीर्थोद्धार किया। अनेक स्थानों पर प्रतिमाजी की स्थापना की। मन प्रसन्नता से भर गया।

सूर्यकुंड महिमा

यहां शत्रुंजय तीर्थ पर स्थित सूर्यकुंड का माहात्म्य निरूपित किया गया है।

बलिराज को अपनी विमाता वीरमती ने दुष्ट इरादे से अधम विद्या से, तंत्र-मंत्र, कूट-कपट से कुर्कुट में परिवर्तित कर दिया था। चंदराजा ने इसी अवस्था में 15 साल पूर्ण कर दिये थे। सोलहवां साल चल रहा था। चैत्र मास की अठाई का महोत्सव शत्रुंजय तीर्थ पर चल रहा था। वहां चारों प्रकार की पर्षदा-मनुष्य, तिर्यंच, देव-नारकी महोत्सव में शामिल थे। सर्वत्र हर्ष-उल्लास का माहौल हो रहा था। विविध धार्मिक प्रवृत्ति में सब तल्लीन-मग्न थे। चंदराजा कुर्कुट की पत्नी प्रेमलालछी ने शिवमाला नट से कुर्कुट युक्त ताम्रचूड पिंजर लिया और वहां शत्रुंजय तीर्थ पर महोत्सव में शामिल होने आई। वहां प्रेमलालछी

ने अपनी सखियों के साथ विविध धार्मिक विधियां सम्पन्न की। अपनी सखियों के साथ वह सूर्यकुण्ड पहुंची और उसने कुर्कुट वाला पिंजर खोल दिया।

चंद्रनृप रूपी कुर्कुट अपनी इस अवदशा से बहुत दुःखी था। उसने सोचा, ''सोलह साल से इसी अवस्था में जी रहा हूं, फिर भी मेरे कोई कर्म क्षय नहीं हुए हैं। न जाने कितने और कर्म भुगतने होंगे? यह संसार तो पूरा स्वार्थी है, स्वयं माता ने ही मेरी यह अवदशा की है। यह तीर्थ स्थल अनुपम, पावन, पवित्र है, सद्भाग्य से मुझे यहां आने का शुभावसर प्राप्त हुआ है। न जाने दूसरी बार ऐसा शुभावसर मिले या नहीं? अच्छा तो यही होगा कि यहीं मैं अपने प्राण न्यौछावर करूं, ताकि इस क्षेत्र के प्रभाव से मेरे कुछ कर्म क्षय होंगे।'' ऐसा सोचकर उसने सूर्यकुंड में अपने आपको समर्पित कर दिया। प्रेमलालछी यह देखते ही अवाक् हो गई। उसने सोचा, ''अगर मेरा पति ही आत्मघात कर रहा है, तो मुझे जिन्दा रहने की जरूरत ही क्या है? मेरा जीना भी क्या होगा? मैं भी उसी के साथ ही अपने प्राण दे दूँ।'' और वह भी पानी में कूद पड़ी। उसने कुर्कुट को झपट लिया। कुर्कुट अब जिन्दा रहना नहीं चाहता था। उसे क्या पता कि प्रेमलालछी भी उसी के साथ अपने प्राण न्यौछावर करने, बलिदान देने स्वयं उसके पीछे कूद पड़ेगी? उसने सोचा कि, ''यह पकड़कर फिर मुझे पिंजर में कैद कर देगी, इससे बेहतर है, मैं स्वयं को मिटा दूं।'' कुर्कुट स्वयं उससे छूटना चाहता था। दोनों झपाझपी कर रहे थे कि उसके गले का धागा टूट गया और उसने अपना असली स्वरूप मनुष्य रूप प्राप्त कर लिया। उसके कर्म पूर्णतः क्षय हो चुके थे। शासन देवता ने दोनों को कुंड से बाहर निकाला। देवताओं ने कुसुम वृष्टि से दोनों का अभिवादन किया। प्रेमलालछी और चंदराजा ने ऋषभदेव भगवान और सिद्धांचल तीर्थ और सूर्यकुण्ड के चामत्कारिक पानी का माहात्म्य, चमत्कार स्वयं महसूस किया। दोनों ने भगवान की पूजा-अर्चना की।

खुशखबरी मकरध्वज नृप तक भी पहुंची। नृप खूब प्रसन्न हुए और चतुर्विध संघ के साथ तुरन्त ही उस तीर्थस्थान पर पहुंच गये। संघ के साथ उन्होंने भी शत्रुंजयतीर्थ पर महोत्सव किया। अनेकविध धर्मकार्य-पूजा-अर्चना इत्यादि क्रियाएं सम्पन्न कीं। महोत्सव के खत्म होते ही चंदराजा भी विमलापुरी पहुँचे।

उपर्युक्त प्रसंग से शत्रुंजय तीर्थ और सूर्यकुंड की महिमा स्वतः सिद्ध हो जाती है।

22. नेमिनाथ

शांब-प्रद्युम्न मोक्ष गमन

पज्जुन-संब प्रमुहा कुमरवरा सइढअदठ कोडि जुआ।
जत्थ सिवं संपत्ता, जयउ तयं पुडंरीतित्थं।।

अर्थ- प्रद्युम्न और शांब प्रमुख साढे आठ करोड़ सहित ने जहां से मोक्ष पद प्राप्त किया, उस पुंडरीक तीर्थ की जय-जयकार हो।

कृष्ण मुरारी के महापराक्रमी पुत्र शांब और प्रद्युम्न नेमिनाथ जिन के दर्शनार्थ आये। प्रभु ने देशना में शत्रुंजय तीर्थ की महिमा प्ररूपित की। प्रभु के धर्मोपदेश सुनते ही उनके कर्मक्षय होने लगे।

दोनों को चारित्र ग्रहण करने वाले उत्तम भाव उत्पन्न होने लगे। उन्होंने चारित्र धर्म अंगीकार किया। वे आठ करोड़ मुनियों के साथ सिद्धांचल पहुंचे। वहां उन्होंने उत्तम धर्माराधना से अपने आत्मतत्त्व को निरावरण किया। अनशनादि विविध धर्माराधना करते मोक्षपद-सिद्धगति प्राप्त की।

नारद मुनि मोक्ष गमन

जहि रामाइतिकोडी-इगनवई, नारयाइ, मुणिलक्खा।
ज़ाया य, सिद्धराया, जयउ तयं, पुंडरी तित्थं।।

अर्थ- जिस स्थान से राम आदि तीन क़रोड़ और नारदमुनि आदि 91 लाख सिद्धों के राजा हुए, वह पुंडरीक तीर्थ जयवंत हो।

नारद की देहकांति अनुपम, दैदीप्यमान थी। वह अरिहंत धर्मप्रेमी थे। वे प्रतिदिन चारित्रधारक मुनियों-भगवंतों की भक्तिभावपूर्वक वंदना-पूजा करते थे। उन्होंने शौच धर्म विषयक अच्छा संशोधन किया था। उनके मतानुसार शौच सत्य है, सच है, इन्द्रिय निग्रह है, दया भाव है और पानी शौच है। उन्होंने अपने काल के तीर्थंकर भगवंतों से शत्रुंजय तीर्थ की महिमा को जाना। पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए लोगों को प्रतिबोधित करते रहे। नेमिनाथ प्रभु से द्वारिका दहन और यादवकुल क्षय के समाचार प्राप्त करते हुए नारद शत्रुंजय गिरि पहुंचे। वहां ऋषभदेवादि तीर्थंकर की पूजा-अर्चना भक्ति की। वहां रामपुरी नगरी के नृप मदनमंडप सात करोड़ श्रावकों के साथ तीर्थयात्रा के लिए आये थे। नारद ने उन सबको शत्रुंजय तीर्थ की महिमा से अवगत किया। इससे प्रतिबोधित होकर अनेक लोगों ने संयम-चारित्र धर्म अंगीकार किया। अपनी शाश्वतता की निंदा करते हुए संसार भ्रमण अवरोधक अनशनव्रत ग्रहण किया। चार शरण अंगीकृत करते हुए मन, वचन, काया का शुद्धिपूर्वक चार कषायों का त्याग किया और नारद ने दस लाख साधुओं के साथ शत्रुंजयगिरि पर मोक्षपद प्राप्त किया।

इस तरह अन्य आठ नारद क्रमशः अपने अन्य मुनिगणों के साथ कर्मक्षय करते हुए मुक्तिनगरी पहुंचे। इस तरह उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में कुल नव नारदों ने कुल 91 लाख मुनियों के साथ शत्रुंजय तीर्थ पर मोक्ष प्राप्त किया है। नव नारद 91 लाख मुनियों के साथ शत्रुंजय से सिद्धगिरि पहुंचे हैं।

पांच पांडव मोक्ष गमन

कय जिण पडिमुद्धारा, पंडवा जत्थ वीसकोडिजुआ।
मुत्ति निलयं पत्ता, तं सित्तुजयं मह तित्थं।।

अर्थ- जिन्होंने प्रतिमा का उद्धार किया है, उन पांडवों ने जिस स्थान से बीस करोड़ मुनिगणों सहित मुक्ति रूपी आवास प्राप्त किया है, वह शत्रुंजय तीर्थ महातीर्थ है।

एक बार जराकुमार ने पांडवों को द्वारकादाह प्रसंग से अवगत किया। उसने एक श्रेष्ठतम, कांतियुक्त कौस्तुभ मणि भी पांडवों को दिखलाया। यह देखते ही युधिष्ठिर प्रमुख पांडव शोकार्त हो गये। उन्होंने सोचा, ''हमने अनेक बार युद्ध-संग्राम किया है। दुर्योधन के साथ युद्ध करते समय अनेक प्राणों का घात किया है, जिससे तीव्र पापानुबन्ध कर्म किये हैं। लंबे समय तक हमने राज्य-ऋद्धि-समृद्धि का उपभोग किया है। अब तो समय आ गया है विरक्त-अनासक्त होने का। अगर अब जो राज्य नहीं छोड़ेंगे, तो निश्चित रूप से हमें नरकवास ही भुगतना होगा।'' कहा गया है

विना न तपसा पाप-शुद्धि र्भवति कर्हिचित्।
वसनं मलिनं शुद्धं-वारिणा नैव जायते।।

अर्थ- बिना तप कृत पापों की शुद्धि नहीं होती है, जैसे मलिन वस्त्र बिना पानी शुद्ध नहीं होता।

पांडवों ने द्रौपदी और कुंती के साथ चारित्रधर्म अंगीकार किया। जिनागम शास्त्राभ्यास करते हुए तीव्र तपाराधना करने लगे। लोगों को प्रतिबोध करते हुए विचरण करते थे। मासखमण की तपश्चर्या चालू ही थी। विचरण करते हुए क्रमशः हस्तिनापुर

पहुंचे। पारणे का दिन था। मनोमन प्रतिज्ञा की, ''इस मासखमण का पारणा अभी तो यहीं करते हैं, मगर अगले मासखमण का पारणा नेमिनाथ प्रभु के सान्निध्य में ही करेंगे।'' पारणा के लिए आहार ग्रहण किया। वापिस लौटते समय रास्ते में नेमिजिन के मोक्षगमन के समाचार सुने। शोकमग्न हुए। ग्रहण किया हुआ आहार कुंभकार के वहाँ छोड़ दिया। सिद्धाचलजी पहुंचे। वहां अनशन व्रत ग्रहण किया। अनुक्रम में माता कुंती के साथ घाती कर्मों का क्षय करके पांच पांडव बीस करोड़ मुनियों के साथ सिद्धपद–मोक्ष पहुंचे।

24. महावीर स्वामी

करकंडू नृप

यह कथा दो मित्रदेव के प्रश्नोत्तर रूप निरूपित की गई है। यहां शत्रुंजय स्थित पुंडरीक पर्वत का माहात्म्य स्थापित किया गया है।

सिद्धाचल तीर्थ पर महावीर प्रभु का समवसरण देवताओं द्वारा निर्मित किया गया। स्वर्गलोक से दो देवमित्र वहां प्रभु दर्शनार्थ आये। वहां रास्ते में उन्होंने एक मुनिराज को सूर्य आतापना लेते हुए देखा। एक मुनि ने दूसरे मुनि को, तपस्वी मुनि संबंधित अगर कुछ जानकारी है, उस बारे में पूछा। उस देव मुनि ने प्रत्युत्तर रूप में करकंडू नृप की कथा प्रारम्भ की।

उसने कहा, ''आज से सात दिन पूर्व मैं सीमंधर स्वामी के दर्शनार्थ महाविदेह क्षेत्र में गया था। वहां मैंने सुना कि दुष्ट, सप्त व्यसनी, अधम कृत्यकर्त्ता, प्रजापीडक करकंडू नामक नृप अपनी राज्यसभा में बैठा था। इसी समय कल्पवृक्ष का एक पत्ता वहीं राजसभा में गिरा, जिसमें श्लोक लिखा था

धर्मादधिगतैश्चर्यो, धर्ममेव निहंति यः।
कथं शुभायतिर्भावी, स स्वामिद्रोहपातको।।

अर्थ– धर्म द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले मनुष्य अगर स्वयं ही धर्म का नाश करता है, तो धर्मरूपी स्वामी द्रोह करने वाले पापाचरण करने वाले का भविष्य शुभ कैसे होगा? अर्थात् निश्चित वह मनुष्य अधोगति ही प्राप्त करेगा।''

श्लोक पढ़ते ही नृप कांपने लगा। उसे लगा कि यह मेरे लिए ही लिखा–भेजा गया है। वह स्वयं को ही कोसने, निंदा करने लगा। स्वकृत दुष्कृत्य नजर समक्ष चलचित्र की तरह दृश्यमान होने लगे। सब दिशाएं धूंधली–सी महसूस होने लगीं। आत्मघात के सिवाय और कोई चारा ही न था, तो उसने आत्मघात करने का निश्चय कर लिया। रात्रि के अंधकार में वह अकेला ही नगर से निकलकर अटवी में निरन्तर चलता रहा, मगर आगे क्या करना है, कुछ निर्णय नहीं कर पाया। थका हुआ आम के वृक्ष तले विश्राम करने बैठा, और आत्मघात करने का तरीका सोचता रहा। उतने में यकायक एक गाय अपने सींग उंडेलती राजा के समक्ष आकर उस पर प्रहार करने दौड़ी। अकस्मात् वार से राजा की मति भ्रांत हो गई। आदतानुसार उसने अपना खड्ग निकाला और गाय पर प्रहार किया तो गाय दो टुकड़ों में विभाजित हो गई।

तब उसमें से एक शृंगारित नवयौवना राजा के प्रत्यक्ष दृश्यमान हुई। उसने नृप को ललकारा, ''अरे दुष्ट! एक अबोल–दुर्बल पशु गाय की हत्या करके तूने गौहत्या का पाप क्यों अपने सिर पर लिया? क्षत्रिय कभी दुर्बल–असहाय पर वार नहीं करते। अगर तू पराक्रमी क्षत्रिय है तो मेरे साथ युद्ध कर।'' एक स्त्री के ऐसे ललकार युक्त वचन सुनते ही नृप का क्षत्रियत्व जागृत हो उठा। वह अपनी खड्ग निकालकर स्त्री पर वार करने दौड़ा। मगर स्त्री ने उसे पराजित कर दिया और तत्क्षण ही वह जमीन पर गिर पड़ा। स्त्री ने हंसी करते हुए कहा, ''कहां गया तेरा क्षत्रियत्व? तुझमें क्या कोई शौर्य है?'' एक अबला के ऐसा विजयी व्यंग्य से अभिमानी नृप तिलमिला उठा। उसने फिर से स्त्री पर वार करने का सोचा मगर उठ ही नहीं पाया। क्या हो

गया, कुछ समझ नहीं पाया। आंखें मूंदकर आत्मनिन्दा करने लगा'' धिक्कार है मुझे! क्या मैं एक अबला से पराजित हो गया?'' जब आंख खुली तब न तो वहां गाय थी, न तो स्त्री और न ही तो खड्ग का प्रहार। वह सोचने लगा, यह स्वप्न है या और कुछ।

उसी समय उनकी गोत्रदेवी अम्बिका प्रत्यक्ष हुई। उसने नृप को संबोधित करके कहा, ''हे राजन्! अभी तू धर्मकार्य के लिए योग्य नहीं है। तेरे पाप कर्मोदय का क्षय नहीं हुआ है। अभी तू छह मास तक पृथ्वी पर अपने पापों की आलोचना करता घूमता रहेगा। अपना दुःख क्षमा, समताभाव से निर्वहन कर। विविध तीर्थों की यात्रा-पूजा इत्यादि धर्मकाय में प्रवृत्त हो। जब तेरे पापकर्म क्षय हो जायेंगे, तुझमें समता-क्षमाभाव जागृत होगा, तब मैं स्वयं तुझे उत्तम स्थानक पर ले चलूंगी।'' और वह अन्तर्ध्यान हो गई।

नृप ने देवी के कथन पर चिन्तन किया। उसे छह मास का समय पूरा करना था। वह समता भाव से सब कष्टों को सहन करता रहा। छह मास पूर्ण हो गये थे। चलते-चलते सूर्यास्त हो गया। घने वन में रात्रिवास का निर्णय किया। वृक्ष तले पत्तों का बिछौना बनाकर बैठा और सोचने लगा, ''अभी भी मेरे कर्मों का क्षय नहीं हुआ है, मुझमें समता-भाव जागृत नहीं हुआ है। अगर ऐसा होता तो देवी स्वयं आकर मुझे धर्मस्थानक की ओर ले जाती।'' सोचते-सोचते निद्राधीन हो गया।

उसी समय पूर्वजन्म का वैरी राक्षस उधर आ पहुंचा और कहने लगा, ''पूर्वजन्म में तूने कामांधता से मेरी स्त्री को ग्रहण किया था, और मेरा सर्वस्व लूट लिया था इस कुकर्म का फल अभी उदय में आया है। आज तूझे उस कार्य की शिक्षा मिलेगी।'' वह उस नृप को उठाकर पर्वत की ओर ले जाने लगा। उसने सोचा, ''इसका क्या करूं? इसकी जान ले लूं या इसके सहस्र टुकड़े करूं, फिर भी मेरा क्रोध शांत होने वाला नहीं है।'' उसने अपनी दैवमाया से पर्वत के पत्थर पर नुकीले धारदार लोहे के कीलें बनाई। जिस तरह धोबीकार कपड़े धोते समय कपड़े को फटकते हैं, उसी तरह वह राक्षस नृप के शरीर को नुकीली कीलों पर फटकने लगा। उसने राजा के साथ अति क्रूर अत्याचार किया, फिर भी राजा क्षमाशील ही रहा, उसमें जरा भी कषाय उत्पन्न नहीं हुआ। अब उसका कषाय-पापकर्म क्षय हो रहा था। इस तरह राक्षस ने राजा को चार प्रहर तक विविध उपसर्ग किये, फिर वह स्वयं थक गया और राजा को उसी वृक्ष के नीचे छोड़कर चला गया।

प्रभात हुआ। अब गोत्रदेवी अंबिका प्रत्यक्ष हुई। उसने कहा, ''सोरठ देश के पुंडरीक पर्वत पर तू यात्रा करने जा। वहां तू चारित्र ग्रहण करके सूर्य आतापना कर। आज से सातवें दिन तेरे सर्व कर्मों का क्षय हो जाएगा और तू मोक्ष-सिद्धपद प्राप्त करेगा।''

आज उसका सातवां दिन है, ऐसी बात चल रही थी, उतने में ही उसे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। यह पुंडरीक गिरि-सिद्धाचलजी का मुख्य प्रताप है, यह तीर्थ अनुपम सौन्दर्य एवं पवित्रता का प्रतीक है, जहां ऐसे भारी कर्मी जीव भी सरलता से कर्म क्षयोपशम से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

सूर्यकुंड महिमा

महिपाल नृप कथा

प्रस्तुत महिपाल नृप कथा में शत्रुंजयगिरि स्थित सूर्यकुंड की महिमा को प्रदर्शित किया गया है। वास्तव में जैन परम्परा में महिपाल नृप कथानक एक विस्तृत और विख्यात कथानक है। यहां इस कथानक संक्षेप में सूर्यकुंड का माहात्म्य प्रतिपादित करने निरूपित किया गया है। सौधर्म गणधर ने भगवान महावीर से शत्रुंजयतीर्थ माहात्म्य विषयक प्रश्न पूछा, इसी के प्रत्युत्तर में यह कथा प्रस्तुत की गई है।

पूर्व कर्मोदय से महिपाल नृप के पूरे शरीर में यकायक कुष्ठ रोग–चर्मरोग उत्पन्न हो गया। उसकी प्रचण्ड बदबू कोई नहीं सह पाते थे, जिससे स्वयं नगर के बाहरी प्रदेश में चले गए।

शत्रुंजय तीर्थ पर चैत्र मास की अट्ठाई का महोत्सव चल रहा था। अनेक विद्याधर–विद्याधरियां, विद्याधर युगल महोत्सव में शामिल हुए। सब प्रभु भक्ति–पूजा में लीन थे। चारों ओर प्रभु की पावन निश्रा का हर्षोल्लासमय–पुनीत वातावरण उभर रहा था। उसमें एक विद्याधर युगल भी शामिल था, जो अपने भक्तिभाव से प्रसन्नतापूर्वक विचरण कर रहा था। विद्याधर ने अपने प्रियतम से विनम्र स्वर में थोड़ा और रुकने को कहा। उन्होंने सूर्यकुण्ड में स्नान किया, विद्याधर युगल ने ऋषभदेवजी की स्नात्रपूजा शुरू की। प्रभु की मणिमय प्रतिमाजी को पूर्ण श्रद्धा और भक्ति से शांतिकलश के जल से प्रक्षालन किया। अन्य विविध पूजा विधि सम्पन्न की। जाते समय विद्याधर ने शांतिकलश को शांतिजल से भर लिया। अप्रतिम श्रद्धा से सूयकुंड का पानी उन्होंने शांतिकलश में अपने साथ ले लिया। दोनों ने प्रस्थान किया।

रास्ते में उन्हें महिपाल नृप की तीव्र वेदनायुक्त आवाज सुनाई दी। तीव्र वेदना से वह छटपटा रहा था। पीड़ायुक्त आवाज से विद्याधरी का करुणाशील हृदय हिल गया। उसने विद्याधर से पूछा, तब उन्होंने बतलाया कि ये महीपाल नृप हैं। उनके पूर्वजन्म के वेदनीय कर्म उदय में आये हैं। उनका पूरा शरीर कुष्ठरोग से व्याप्त है। उसकी पीड़ा भयंकर तीव्र होती है। यह असाध्य रोग है, फिर भी उसका एक उपाय है।

सूर्यकुंड के पानी के स्पर्शमात्रा से ही रोगीष्ठ निरोगी, स्वस्थ हो जाता है। विद्याधरी की खुशी की कोई सीमा न रही क्योंकि वह पानी तो उनके पास मौजूद ही था। विद्याधरी ने शांतिकलश के पानी से छिड़काव किया और चामत्कारिक रूप से महिपालनृप सम्पूर्ण निरोगी हो गये।

सूर्यकुंड के पानी के स्पर्शमात्र से राजा के शरीर वासित अट्ठारह प्रकार के कुष्ठ रोगों ने आकाश की ओर जाते हुए कहा, ''राजन्! अब तेरी जयकार हो। अब तू हमसे मुक्त है। तुझसे मेरा सात जन्मों से वैर था मगर इस पवित्र सूर्यकुंड जल के प्रभाव से हमारा प्रभाव निरर्थक हुआ, जिससे अब हम यहां नहीं ठहर सकते।'' और वे चले गये। विविध प्रकार से हर्षोल्लास मनाया गया।

एक बार चारण मुनि वहां पधारे। राजा ने भक्तिभावपूर्वक वंदन किया और आहार से प्रतिलाभित किया। मुनि ने कुष्ठरोग के कारण का निवारण करते हुए कहा, ''इस पूर्व के सातवें जन्म में आप राजा थे और मृगया के अति शौकीन थे। मृगया खेलते हुए आपने एक मुनि का घात किया था, जिससे आपने मुनि हत्या का पाप ग्रहण किया था। क्रमशः पापकर्मों का क्षय होता गया मगर जो बचे थे, उनके कारण तुम्हें यह कुष्ठ रोग हुआ था।

राजा को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्वजन्म देखते ही मन के परिणाम में बदलाव आ गया। चतुर्विध संघ के साथ शत्रुंजय तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया। वहां प्रभुजी के विविध प्रकार के महोत्सव मनाए। स्वयं चारित्र ग्रहण किया। आमरणांत अनशन व्रत ग्रहण किया। मोक्ष–सिद्ध पद प्राप्त कर लिया।

(2) शत्रुंजय महिमा

प्रस्तुत पट का नाम है शत्रुंजयपट। प्रारम्भ में भगवान ऋषभदेव को विविध उपमा से उपमानित किया गया है, यह पटकर्त्ता की अनन्य भक्ति-श्रद्धा की प्रतिरूप है।

ऋषभदेव भगवान अशरण के शरणरूप शरणागत वत्सल, भवभय हरण, भवभय विघ्न निवारक, भव्य जीवों को संसार समुद्र पार करवाने के लिए धर्मरूप नाव समान, अज्ञान रूप तिमिर-अंधकार को मिटाने वाले अर्क-तेज पुंज समान, चौरासी लाख भव रूप अटवी पार करवाने के लिए सार्थ-सुरक्षित रक्षक समान, कर्मरूप रोग मिटाने वाले धनवंतरी वैद्य समान, कषाय-आंतरिक शत्रु रूप प्रज्वलित अग्नि को शांत करने हेतु पुष्करावर्त्त मेघ समान है।

ऋषभदेव वंदन के बाद सिद्धाचल-शत्रुंजय तीर्थ की महत्ता सिद्ध की गई है। सिद्धाचल शब्द सामान्यतः किसी भी पवित्र तीर्थ स्थान के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यह पवित्र तीर्थ सौराष्ट्र के भावनगर जिले के पालीताणा शहर में स्थित है।

शत्रुंजयो नाम नगाधिराजः, सौराष्ट्र देशे प्रथित प्रशस्तिः।
तीर्थाधिराजो भुवि पुण्य भूमि-स्तत्रादिनाथं शिरसा नमामि।।

अर्थ-सौराष्ट्र देश में प्रसिद्ध है प्रशस्ति जिसकी, यह पृथ्वीतल पर पवित्र भूमि रूप तीर्थाधिराज शत्रुंजय नामक गिरिवर है, वहां विराजमान आदिनाथ भगवंत को मैं नतमस्तक वंदन करता हूं ।

सामान्यतः ऐसे पट लंबचोरस या चोरस आकार में उपलब्ध है। उसमें शत्रुंजय तीर्थ का सांगोपांग वर्णन समाविष्ट होता है। प्रायः वे भित्तिचित्र की तरह दीवाल पर लटकाये जाते हैं। चतुर्विध संघ की दैनिक धार्मिक क्रिया में उसका निजी स्थान है। इसका सविशेष माहात्म्य कार्तिक पूर्णिमा के दिन है। उसी दिन आदिनाथ भगवान के प्रपौत्र द्रविड मुनि के पुत्र द्राविड और वारिखिल्ल ने दस करोड़ मुनियों के साथ सिद्ध पद प्राप्त किया था, तब से यह पर्व-दिन माना जाता है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा की महिमा अपार है। मगर समग्र संघ वहां जा नहीं सकते तो उसी दिन ऐसे शत्रुंजय पट एक खास स्थान पर रखे जाते हैं, जहां चतुर्विध संघ विशेष महिमा के साथ पूजा-चैत्यवंदन, स्तुति आदि धार्मिक क्रिया के साथ भाव तीर्थ यात्रा करते हैं।

मगर प्रस्तुत पट इससे भिन्न हैं। यह पट 12 मीटर लंबा और 24 से.मी. चौड़ा है। इसमें वर्तमान 24 तीर्थंकरों के चित्रांकन के साथ उनके संबंधित जानकारी दी गई है। उन 24 तीर्थंकरों के परिवार अर्थात् दीक्षा के समय साधुओं की संख्या, गणधर, मुख्य गणधर, साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका संख्या, मुख्य साध्वीजी, देहमान, कुल आयु, वर्ण, लांछन विषयक माहिती समाविष्ट है। उसमें से कई जगह पर प्रमुख गणधर, प्रमुख साध्वीजी के नाम प्राप्त नहीं हैं। अनुमान करते हैं कि शायद गलती से लिखा नहीं गया होगा। उन 24 तीर्थंकरों में से तीर्थंकर 1, 2, 4, 16, 20, 22 और 24 विषयक विस्तृत जानकारी प्रदान की गई है। सामान्यतः इसमें उन तीर्थंकरों के शासनकाल समय में जो विशेष घटना घटी है, उसे कथात्मक शैली में निरूपित किया गया है।

इस पट का मुख्य उद्देश्य शत्रुंजय तीर्थ का माहात्म्य प्रकाशित करना है। परम्परा से शत्रुंजय तीर्थ की महिमा सविशेष है। प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव के आदेश से उनके गणधर श्री पुंडरीकजी ने भव्य जीवों के कल्याणार्थ परम पावक तीर्थ श्रीशत्रुंजय की महिमा सवा लाख श्लोक में प्ररूपित की थी। उत्सर्पिणी काल और मनुष्य की अल्पायु का ध्यान करते हुए भगवान श्रीमहावीरस्वामी के आदेश से सुधर्मा स्वामी ने उसका संक्षिप्तार्थ 24,000 श्लोक में किया। तत्पश्चात् जैनाचार्यों ने उनमें से आम जनता के सदुपदेशार्थ शत्रुंजय महिमा को बोधक स्वरूप सारार्थ ग्रहण किया है।

जो अरय छगम्मि, असी सत्तरि सट्ठी पन्न बार जोयणाए।
सगरयणी वित्थिन्नो, सो विमलगिरि जयउ तित्थं।।

अर्थ–जो छः आरा–कालचक्र में 80, 70, 60, 50, 12 योजन और सात हस्त जितनी विस्तारयुक्त है, उस विमलगिरि तीर्थ की जय जयकार हो।

जिस तरह इस तीर्थाधिराज की ऊंचाई क्रमशः कम होती जा रही है, ठीक इसी प्रकार उनके माहात्म्य दर्शन श्लोक–विवेचन भी क्रमशः कम होता जा रहा है।

जैन परम्परा में तीर्थाधिराज सिद्धाचल की महिमा अपार है। जैन समाज असीम श्रद्धा, भाव और आदर से इस तीर्थ की यात्रा करते हैं। अनादिकाल से इस तीर्थ ने अपना माहात्म्य सुरक्षित रखा है। सर्वज्ञ अर्हत् प्ररूपित वीतराग देव के शासन में ऐसी लोकोत्तमपूर्ण उपासना श्रद्धा–भक्ति के साथ की जाए तो भव्यात्मा उसके आलंबन, दर्शन, स्पर्शन द्वारा निश्चित रूप से संसार सागर पार करके मुक्तिपद–मोक्ष के शाश्वत सुख प्राप्त कर सकें, यह निःशंक है।

वर्तमान समय में भी इसी तीर्थस्थान पर अनेकविध धार्मिक प्रवृत्तियां, जैसे निन्यान्वे यात्रा, वर्षीतप, चातुर्मासिक तप आदि विविध तपाराधनाएं विपुल मात्रा में हो रही हैं। इस विषमकाल, जहां भौतिकवाद अग्रसर है, पश्चिमीकरण का प्राधान्य है, वहीं विपुल संख्या में भव्य जीव तीर्थाधिराज शत्रुंजय के दर्शनार्थ अभिग्रह और श्रद्धा के साथ नंगे पांव जाते हैं, वह उनकी अप्रतिम, अनन्य श्रद्धा का प्रतीक है।

शत्रुंजय यात्रा का माहात्म्य आगम ग्रंथों में भी उपलब्ध है। कालिकाचार्य ने शत्रुंजय माहात्म्य विषयक कहा है

श्री शत्रुंजय तीर्थे–यात्रा संघ समन्वितः।
चकार तस्य गीर्वाण–शिवश्रीर्नहि दुलभा।।

वस्त्राान्नजलदानेन, गुरोः शत्रुंजये गिरौ।
तद् भक्त्याऽत्र परत्रेह–जायन्ते सर्व सम्पदः।।

शत्रुंजयाभिधेतीर्थे–प्रासादात्–प्रतिमाश्च ये।
कारयन्ति हि तत्पुण्यं, ज्ञानिनो यदि जानते।।''

अर्थ–श्री शत्रुंजय तीर्थ विषयक संघ सहित जिन्होंने यात्रा की है, उसे देवलक्ष्मी और मोक्षलक्ष्मी दुर्लभ नहीं है। श्री शत्रुंजयगिरि पर गुरुजनों को वस्त्र, अन्न और जलदान करने से और उनकी भक्ति से लोक और परलोक में सर्व–सम्पत्ति प्राप्त होती है। शत्रुंजय तीर्थ विषयक जो प्रासाद और प्रतिमाएं, जिनबिम्ब का निर्माण करवाते हैं, उससे प्राप्त पुण्य ज्ञानी ही जान सकते हैं।

इसी तरह ज्ञाताधर्मकथा सूत्र के पांचवे अध्ययन के थावच्चापुत्र कथाधिकार में शत्रुंजय का माहात्म्य प्रदर्शित किया गया है।

''तएणं से थावच्चापुत्रे अणगार सहस्सेणं सद्धिं संपुरिवुडे जेणेव पुंडरीए पव्वए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छिता पुडरीयं पव्वयं सणियं सणियं दुरुहति, दुरहित्ता मेघघण सन्निकासं देवसन्निवायं पुढविसिला पट्टयं जाव पाओ गमणं उवावन्ने।''

''तएणं से सुए अणगारे अन्नया कयाइं तेण अणगार सहस्सेणं सद्धि संपरिवुडे जेणेव पुंडरीए जाव सिद्धे।''

अर्थ– तत्पश्चात् थावच्चापुत्र अनगार एक हजार साधु परिवार के साथ श्रीपुंडरीक पर्वत पर आते हैं। आकर वह पुंडरीक पर्वत पर धीरे–धीरे चढते हैं। चढकर मेघ के बादल जैसी देव सन्निपात पृथ्वी शिला पर आते हैं, और यावत् पादोपगम अनशन व्रत ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् वह शुक्र अनगार कोई एक समय एक हजार साधुवृन्द के साथ पुंडरीकगिरि पर आते हैं, यावत् सिद्धपद–मोक्ष प्राप्त करते हैं।''

इससे प्रतीत होता है कि शत्रुंजय महिमा ने परम्परा से अपना माहात्म्य ऐसे ही अनुपम–अद्वितीय बना रखा है।

इस तीर्थ की पवित्रता निःसंदेह है क्योंकि इस तीर्थस्थान पर नेमिनाथ के सिवाय अन्य 23 तीर्थंकर भगवंतों के समवसरण की रचना इन्द्र देवों द्वारा की गई है।

सिरिनेमिनाह वज्जा, जत्थ जिणा रिसह पमुहवीरंता।
तेवीस समोसरिआ, सो विमलगिरि जयउ तित्थं।।

अर्थ– श्री नेमिनाथ भगवान के सिवा ऋषभदेव से महावीर प्रभु इन 23 तीर्थंकरों जहां समवसृत हुए जहाँ इन्द्रदेवों ने समवसरण की रचना की थी, वह विमलगिरि तीर्थ सदा जयवंत हो।

पुंडरीक गणधर ने कहा है–

वैरिण्यपि च नो वैरं, नो जिघांसा त्रसादिषु।
द्यूतादिषु न चासक्तिर्नकुलेश्याविचिन्तनम्।।

अर्थ– इस तीर्थ में वैरी प्रति वैरभावना न रखने, त्रसादि प्राणियों के घात की इच्छा भी न करने, द्यूतादि पाप विषयासक्ति न रखने और कुलेश्या का चिंतन नहीं करने का उपदेश दिया गया है

अनंता यत्रा संसिद्धा, भूमिसंस्पर्शयोगतः।
भाविकालेऽपिसेत्स्यन्ति, तत्तीर्थ भावतः स्तुवे।।

अर्थ– जिस गिरिराज की भूमि के स्पर्शमात्रा के योग से भूतकाल में अनंत आत्माओं ने निर्वाण पद–मोक्ष प्राप्त किया है, भविष्य में भी अनंत आत्माएं सिद्धपद–मोक्ष प्राप्त करेंगे। उस तीर्थाधिराज की मैं भावपूर्वक स्तुति करता हूँ।

यह पवित्र तीर्थ मोक्षलक्ष्मी संगम स्वरूप में पृथ्वीतल पर सदा तिलकवंत, जयवंत स्वरूप अवस्थित है। प्रथम तीर्थंकर भगवान् श्री आदिनाथ प्रभु ने इसे शाश्वत तीर्थ माना है। यह तीर्थ त्रिकाल है और अनंत केवलज्ञान की तरह सर्वत्र उपकारक है। यह तीर्थ मुक्तिधाम रूप स्थिर, निर्मल और निराबाध है, जो पापसमूह का नाशकर्त्ता है। संसार समुद्र अनादि है। शत्रुंजय तीर्थ सर्व तीर्थों से विलक्षण–भिन्न है, जहां निर्मल आत्मा सिर्फ उसके दर्शनमात्रा से ही दुर्गति को दूर कर सकते हैं, मोक्षपद प्राप्त कर सकते हैं

भव्या एव हि पश्यन्ति, त्वभव्यैर्नहि दृश्यते।
विलक्षणं परात्तीर्था–ल्लक्षणं यस्य युज्यते।।

अर्थ– (यथार्थ स्वरूप में) इस गिरिराज–तीर्थाधिराज को मुक्तिगमन के योग्य भव्यात्मा ही देख–जान सकती है। अभव्य–अभवी जीव तो उनके दर्शन भी प्राप्त नहीं कर सकते। अन्य सर्व तीर्थों से विलक्षण इस गिरिराज का यही तो प्रधान लक्षण है।

इस तीर्थ से निर्वाण प्राप्त करने वालों के लिए मुक्ति सहज–सरल है। जिसने शत्रुंजयतीर्थ का स्पर्श किया, यात्रा की है, उन्हें रोग, संताप, दुःख, शोक, दुर्गति नहीं होती। उनके सब पापकर्मों का क्षय होता है।

तीर्थयात्रा के फल पर प्रकाश डालते हुए आचार्यों ने कहा है कि

आरम्भाणां निर्वृत्तिर्द्रविणसफलता संघवात्सल्यमुच्चै,
र्निर्माल्यं दर्शनस्य प्रणयिजनहितं जीर्ण चैत्यादिकृत्यम्।

तीर्थौन्नत्यं सम्यक् जिनवचनकृति स्तीर्थसत्कर्म्मसत्त्वं,
सिद्धेरासन्नभावः सुरनरपदवी तीर्थयात्रा फलानि।

अर्थ– तीर्थयात्रा की फलश्रुति में आरम्भकार्य से निवृत्ति अर्थात् अनासक्त वैराग्य की प्राप्ति, द्रव्य की सफलता अर्थात् द्रव्यवृद्धि होती है। संघ का विशेष वात्सल्य हो सके (चतुर्विध संघ के साथ यात्रागमन), सम्यक्त्व भाव से निर्मलता–शुद्धता प्राप्त हो सके, प्रेमीजनों का हित–कल्याण कर सकें, जीर्णोद्धार आदि महाकार्य का का निर्माण हो सके, स्वयं से उन्नति–वृद्धि हो सके, जिन–वचन का समुचित स्वरूप में पालन हो सके, तीर्थ के सत्कार्य में प्रवृत्त होने का संयोग हो सके, मोक्ष के आसन्न भाव अर्थात् मोक्ष गति लायक भाव हो सके, देव और मनुष्य की पदवी प्राप्त हो अर्थात् तिर्यंचगति प्राप्त न हो।

कहा जाता है कि तीर्थ का ध्यान मात्र करने से एक हजार पल्योपम का कर्म क्षय हो सके, अभिग्रह व्रत धारण करने से एक लाख पल्योपम का कर्म क्षय हो सके, और तीर्थमार्ग पर प्रयाण करने से एक सागरोपम से एकत्रित हुआ कर्म क्षय होता है। अर्थात् यह तीर्थ–तीर्थाधिराज प्रभावक तीर्थ है, जो पापकर्म क्षय कर्त्ता है।

शत्रुंजय माहात्म्य स्थापित करने के लिए विविध आचार्यों द्वारा जो प्रशस्ति की गई है, उसमें से अंशतः पाठकों की जानकारी हेतु उद्धृत की गई है।

माना जाता है कि चंद्र और सूर्य साक्षात् प्रत्यक्ष रूप शत्रुंजय तीर्थ के दर्शनार्थ आते हैं। वे आकाश से ही उनका दर्शन करते हैं और पुष्प अर्पण करते हैं।

जिस गिरिराज में धर्माराधना करते भव्य प्राणी निज आत्मा में सम्यक्त्व रूपी बीज को अंकुरित करते हैं और पाप रूपी अंधकार को दूर करते हैं, वह तीर्थेश्वर परम श्रद्धेय, वंदनीय है।

जिस लघुकर्मी आत्मा ने तीर्थंकर भगवंत की आज्ञा भंग की हो, धर्म–विराधना की हो, वे विराधक आत्माएं भी इस तीर्थ के प्रभाव से विशुद्ध होकर निर्मल–विमल बुद्धि प्राप्त करते हैं, उस तीर्थेश्वर को भावपूर्वक वंदन।

जिस गिरिराज की सेवा–पूजा के प्रभाव से प्राणी के कर्मों का क्षय होता है, आत्मा कर्मरहित होता है, उस अकर्मक तीर्थराज को भावपूर्वक वंदन।

जिस गिरिराज का स्मरण करते, उसके स्मरण प्रभाव से भव्य जीवों के द्रव्य और भाव शत्रु का नाश होता है और जिससे वह शत्रुंजय नाम से प्रचलित है, उसे भावपूर्वक वंदन।

(3) शत्रुंजय तीर्थोद्धार

कारयन्ति मरुदगेहं – ख्यात्यर्थ केचनात्मनः।
केचित्स्वस्यैव पुण्याय, स्वश्रेयोऽर्थं च केचन।।

प्रासादोद्धारकरणे, भूरि पुण्यं निगद्यने।
उद्धारान्न परं पुण्यं विद्यते जिनशासने।।

अर्थ– कुछ आत्माएं अपनी निजी प्रशंसा पाने के लिए जिनमन्दिर का निर्माण करते हैं, कुछ पुण्य प्राप्ति के लिए करते हैं और कुछ अपने कल्याणार्थ देवमन्दिर का निर्माण करवाते हैं। प्रासाद–तीर्थ प्रासाद का जीर्णोद्धार करने से विशेष पुण्योपार्जन होता है। तीर्थोद्धार से श्रेष्ठ पुण्यकार्य जिनशासन में और कोई नहीं है।

शत्रुंजय तीर्थ अनादि अनंत है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में काल के प्रभाव से उसमें वृद्धि–हानि होती रहती है, कहीं उनका सत्त्व क्षीण होता रहता है मगर वह कभी सर्वथा क्षय नहीं होता। इसलिए उनका जीर्णोद्धार करना आवश्यक है। नया मंदिर निर्माण कराने की बजाय पुराने मंदिर का जीर्णोद्धार करने से दुगुने पुण्य की प्राप्ति होती है।

शत्रुंजयतीर्थ के अनेक छोटे–बड़े उद्धार देव और मनुष्य द्वारा किये गए हैं। पंचम आरा के अंत तक ऐसे उद्धार होने वाले ही हैं। उनमें से कुछ 17 उद्धार विशेष है। अवसर्पिणी काल के चौथे आरे (कालचक्र) में बारह जीर्णोद्धार हुए हैं। महावीर के शासनकाल के बाद पाँच जीर्णोद्धार हुए हैं, जो निम्नलिखित हैं

अस्मिंस्तीर्थवरे भूताः श्री तीर्थोद्धारकारकाः।
एतस्याण्वसर्पिण्यां; पूर्वो भरतचक्रय भूत।।

इस अवसिर्पणी काल में इस शत्रुंजय तीर्थ के 17 प्रमुख उद्धार हुए हैं और अन्य भी होंगे। उसमें से **प्रथम उद्धार भरत चक्रवर्ती** ने किया है।

द्वितीयो भारते वंशे, दंडवीर्यो नृपो यतः।
ईशानेन्द्रस्तृतीयो हि, माहेन्द्रश्च चतुर्थकः।।

इस तीर्थ का **दूसरा उद्धार** भरत चक्रवर्ती के वंशज **दंडवीर्यनृप** ने किया है। **तीसरा उद्धार ईशानेन्द्र** ने करवाया है। **चौथा उद्धार माहेन्द्र** ने करवाया है।

पंचमो ब्रह्म कल्पेन्द्रश्चमरेन्द्रस्तु षष्ठकः।
अजित जिन काले हि सगरराट् च सप्तमः।।

पांचवां उद्धार पांचवे देवलोक के इन्द्र **ब्रह्मेन्द्र** ने करवाया था। ब्रह्मेन्द्र के बाद **छट्ठा उद्धार** भवनपति के इन्द्र **चमरेन्द्र** ने करवाया था। **सातवां उद्धार** द्वितीय तीर्थंकर के शासनकाल में **सगर चक्रवर्ती** ने करवाया था।

अष्टमो व्यन्तरेन्द्रो हि – तीर्थोद्धारकः खलु।
चन्द्रप्रभप्रभोस्तीर्थे चन्द्रयशा नृपस्तथा।।

इस तीर्थ का **आठवां उद्धार व्यन्तरेन्द्र** ने करवाया था। **नौवां उद्धार** श्री चंद्रप्रभु के शासनकाल में श्री **चंद्रयशा** ने करवाया था। उसी समय श्री चंद्रप्रभास (प्रभासपाटण) तीर्थ में चंद्रप्रभस्वामी के प्रासाद का निर्माण उन्होंने ही करवाया था।

श्री शान्तिनाथ तीर्थे हि, चक्रायुधश्च राङ्वरः।
उद्धर्ता तीर्थनाथस्य सदुपदेशयोगतः।।

श्री शांतिनाथ भगवान के शासनकाल में उनके पुत्र **चक्रायुध राजा** ने प्रभु के सदुपदेश से यह **दसवां तीर्थोद्धार** करवाया था।

एकादशो बलो रामस्तीर्थे श्री सुव्रतस्य हि।
पांडवा द्वादशोद्धार-कारका नेमि तीर्थके।।

श्री मुनिसुव्रत स्वामी के शासनकाल में बलदेव **श्रीरामचन्द्र** ने तीर्थ का **ग्यारहवां उद्धार** करवाया था। नेमिनाथ भगवान के शासनकाल में **पांडवों** ने इस तीर्थ का बारहवां जीर्णोद्धार करवाया था।

वर्धमान विभोस्तीर्थे - जावडस्तु त्रयोदशः।
वाग्भटो वा शिलादित्य-श्चतुर्दशस्तु श्रूयते।।

श्री वर्धमान स्वामी के शासनकाल में महुवा के **श्रेष्ठी जावडशा** ने इस तीर्थ का **तेरहवां तीर्थोद्धार** करवाया था।

शत्रुंजय माहात्म्य के कर्त्ता धनेश्वरसूरि के कथनानुसार **चौदहवां तीर्थोद्धार शिलादित्य** ने करवाया था। कुमारपाल चरित महाकाव्यानुसार उदयनमंत्री के पुत्र **बाहडमंत्री** ने यह **चौदहवां उद्धार** करवाया था।

समरश्चौशवंशीयो-मान्य पंचदशस्तु हि।
षोडशः कर्मसिहस्तु-साम्प्रतोद्धारकारकः।।

यह तीर्थ का **पन्द्रहवाँ उद्धार समराशा ओसवाल** ने करवाया था। **सोलहवां उद्धार** जो वर्तमान समय में चालू है, जो अभी मूल है, वह **करमाशा** ने करवाया था।

दुष्प्रसहमुनीशस्य काले विमलवाहनः।
उद्धरिष्यत्यदस्तीर्थ, चरमोद्धारकारकः।।

इस तीर्थ का **अंतिम उद्धार** पांचवे आरे के अंतिम समय में होने वाला **सत्रहवां उद्धार** श्री दुप्पसहसूरि के सदुपदेश से **विमलवाहन नृप** करवाएंगे।

17. तीर्थोद्धार निम्नलिखित है

1. **प्रथम उद्धार** भगवान ऋषभदेव के शासनकाल में उनके पुत्र **भरत चक्रवर्ती** ने करवाया था।
2. **दूसरा उद्धार** छः करोड़ वर्ष के बाद भरत चक्रवर्ती की आठवीं पीढ़ी के **दंडवीर्यनृप** ने करवाया था।
3. उसके बाद एक सौ सागरोपम समय के बाद **ईशानेन्द्र** ने **तृतीय उद्धार** करवाया था।
4. उसके पश्चात् एक करोड़ सागरोपम समय के बाद **महेन्द्रेन्द्र** ने **चौथा उद्धार** करवाया था।

5. उसके पश्चात् दस कोटी सागरोपम समय के बाद **ब्रह्मेन्द्र** ने **पांचवां उद्धार** करवाया था।

6. उसके पश्चात् एक कोटी सागरोपम समय के बाद **भवनपति चमरेन्द्र** ने **छट्ठा उद्धार** करवाया था।

7. आदिनाथ प्रभु के पश्चात् 50 लाख कोटी सागरोपम समय के बाद **सगर चक्रवर्ती** ने श्री अजितनाथ प्रभु के शासनकाल में **सातवां उद्धार** करवाया था।

8. उसके पश्चात् चतुर्थ तीर्थंकर श्री अभिनंदन स्वामी के शासनकाल में **व्यंतरेन्द्र** ने **आठवां उद्धार** करवाया था।

9. श्री चंद्रप्रभु स्वामी के शासनकाल में **चंद्रयशा** ने **नौवां उद्धार** करवाया था।

10. श्री शांतिनाथ प्रभु के शासनकाल में उनके पुत्र **चक्रायुधनृप** ने **दसवां उद्धार** करवाया था।

11. श्री मुनिसुव्रत स्वामी के शासनकाल में **रामचन्द्रजी** ने **ग्यारहवां उद्धार** करवाया था।

12. श्री नेमिनाथ स्वामी के शासनकाल में **पांडवों** ने **बारहवां उद्धार** करवाया था। पांडवों ने कौरवों के साथ भयानक हिंसायुध करने से गोत्रदोह–पापकर्म बंधन किया था। उस पाप को नष्ट करने हेतु तीर्थोद्धार किया था।

इस अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणीकाल – भगवान् महावीर के शासन में जो तीर्थोद्धार हुए, वे निम्नलिखित हैं।

13. महावीर निर्वाण की 470 वर्ष बाद वि.सं. 108 में **जावडशा श्रेष्ठी** ने शत्रुंजय तीर्थ का **तेरहवां उद्धार** करवाया था।

14. वि.सं. 1213 में **श्रीमाली बाहडदेव** ने **चौदहवां उद्धार** करवाया था।

15. वि.सं. 1317 में **ओसवाल श्रेष्ठी समराशा** ने **पन्द्रहवां उद्धार** करवाया था।

16. वि.सं. 1587 में **करमाशा** ने **सोलहवां उद्धार** करवाया था।

17. अंत में पंचमकाल का विषम स्वरूप समझकर यह **सत्रहवां उद्धार** श्री दुप्पसहसूरि के प्रतिबोध से **राजा विमलवाहन** करवाएंगे।

(4) शत्रुंजय के विविध नाम

इस पट में शत्रुंजय तीर्थ, सिद्धांचल तीर्थ के 21 नाम प्रतिपादित किये गए हैं। शत्रुंजय तीर्थ के 21 और 108 नाम विविध प्रकार से उपलब्ध होते हैं। सामान्यतः ये नाम उनके विशिष्ट गुण, लक्षण, वर्ग, कारण पर से नामांकित किये गये हैं, ऐसा प्रतीत होता हैं। उपलब्ध नामों में से एक नाम 'सहस्त्राख्य' मिलता है, जिससे माना जाता है कि प्राचीन समय में इस पावन तीर्थ के 1008 नाम प्रचलित होंगे, मगर अब 108 नाम प्राप्त हैं, उसमें से पटकर्त्ता ने 21 नामों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित हैं

सुयधम्मकित्तिअं तं तित्थं देविंद वंदिअं थुणिमो।
पाहुडए विज्जाणं, देसिअमिगवीसनामं जं।।

श्रुत धर्म में कहे गये और देवेन्द्रों द्वारा वंदित उस तीर्थ को और विद्या के प्राभृत में जो 21 नाम निर्दशित किये गए हैं, उसी की हम स्तुति करते हैं

सुरनरमुणिकयनामो, सो विमलगिरि जयउ तित्थं।

माना जाता है कि तीर्थाधिराज शत्रुंजय कें ये नाम देव, मनुष्य और मुनि द्वारा किये गये हैं, वह विमलगिरि तीर्थ जयवंत हो।

पट में निर्देशित शत्रुंजय तीर्थ के 21 नाम निम्नलिखित हैंह्न

1. **शत्रुंजय**– इस पावन तीर्थ के प्रभाव से शुक्र राजा ने बाह्य और आंतरिक दुश्मनों पर विजय प्राप्त की थी, इससे शत्रुंजय नाम प्रचलित हुआ है।

2. **पुंडरीकगिरि**– आदिनाथ भगवान के प्रथम गणधर श्री पुंडरीक स्वामी ने इसी तीर्थ पर चैत्री पूर्णिमा के दिन पांच करोड़ मुनियों के साथ सिद्धपद–मोक्षपद प्राप्त किया था, इससे पुंडरीकगिरि नाम प्रचलित हुआ है।

3. **सिद्धक्षेत्र**– इस तीर्थ के प्रत्येक कंकर पर से अगणित–अनंत, भव्यात्मा ने सिद्धिपद–मोक्षपद प्राप्त किया था, इससे सिद्धक्षेत्र नाम प्रचलित हुआ है।

4. **विमलाचल**– इस तीर्थाधिराज पर यात्रा करने वाले प्रत्येक भक्त, यात्रिक निर्मल–विमल–पापरहित होते हैं। उनमें पाप का एक अंश भी मौजूद नहीं रहता है, इससे यह विमलाचल नाम से प्रचलित हुआ है।

5. **सुरगिरि**– पर्वत में सुरगिरि अर्थात् मेरुगिरि जो सबसे बड़ा है, जिस पर प्रत्येक तीर्थंकरों के जन्माभिषेक होते हैं मगर वहां से किसी ने भी मोक्षपद प्राप्त नहीं किया है। शत्रुंजय तीर्थ से अनंत जीवों ने मोक्षपद प्राप्त किया है, इससे यह सुरगिरि नाम से प्रचलित हुआ है।

6. **महागिरि**– महिमा की दृष्टि से यह तीर्थगिरि सबसे महान्, महानोत्तम है, इसलिए यह महागिरि नाम से प्रचलित हुआ है।

7. **पुण्यराशि**– इस तीर्थाधिराज की सेवा–पूजा, यात्रा करने से पुण्यराशि–पुण्यपुंज (ढग) प्राप्त होता है। अतः यह पुण्यराशि नाम से प्रचलित हुआ है।

8. **श्रीपद**– वास्तव में नारदमुनि ब्रह्मचारी हैं, फिर भी वे कलहप्रिय हैं, परस्पर कलह–विवाद करवाते हैं। इस तीर्थ के प्रभाव से उन्हें श्रीपद–मोक्ष रूपी लक्ष्मी प्राप्त हुई है, इससे यह श्रीपद नाम से प्रचलित हुआ है।

9. **पर्वेन्द्र**– इस तीर्थ पर चैत्री पूर्णिमा के दिन पुंडरीक स्वामी ने मोक्षपद प्राप्त किया था। द्राविड और वारिखिल्ल ने कार्तिकी पूर्णिमा के दिन मोक्ष पद प्राप्त किया था। तब से ये दोनों दिन पर्व की तरह मनाये जाते हैं। ऐसे विविध पर्व इस तीर्थ पर प्रसिद्ध हुए हैं, जिससे यह तीर्थ पर्वेन्द्र नाम से प्रचलित हुआ है।

10. **महातीर्थ**– जो तीर्थ साधुगण और पापीजनों के समूह के पापकर्म से दूर करते हैं, मुक्तिपद प्राप्त करवाता है, जिस कारण यह तीर्थ महातीर्थ नाम से प्रचलित हुआ है।

    अन्य मतानुसार– अणुव्रतधारक दस करोड़ श्रावकों को भोजन देने से जो फल, पुण्योपार्जन होता है, उससे ज्यादा पुण्योपार्जन इस सिद्धाचल भूमि स्थित सिर्फ एक ही मुनि को आहार दान देने से होता है, ऐसा यह महाप्रभावी, महान् है। इस कारण यह तीर्थ महातीर्थ के नाम से प्रचलित हुआ है।

11. **शाश्वतगिरि (शाश्वतो)**– यह तीर्थाधिराज तीनों काल भूत, भविष्य एवं वर्तमान में शाश्वत है। यह अनादि–अनन्त है। यह बोधिबीज और मोक्षराज्य प्रदाता है, इससे यह तीर्थ शाश्वतगिरि नाम से प्रचलित है।

12. **दृढशक्ति (वृढसक्ति)**– यह तीर्थ की सेवा–पूजा करने से आत्मा शक्ति दृढ़–अमाप होती है। इससे यह दृढशक्ति नाम से प्रचलित है।

    अन्य मतानुसार विविध पापकर्मी जीव–अभव्य जीव इसकी तीर्थयात्रा करते हुए अपने दृढ़–गाढ़ पापकर्मों को सेवा–पूजा आदि धार्मिक क्रियाओं द्वारा क्षय करते हैं। उनके दृढ़ पाप कर्मबंधों का क्षय होता है, इससे यह दृढ़शक्ति नाम से प्रचलित है।

13. **मुक्तिनिलय (मुक्तिलय)**– इस भुवन–विश्व के मानव के लिए यह तीर्थाधिराज ही मुक्तिदायक मुक्तिमार्ग रूप है। यह तीर्थ साक्षात् मुक्तिधाम स्वरूप है, जिससे यह मुक्तिनिलय नाम से प्रचलित है।

14. **पुष्पदंत**– चंद्र और सूर्य आकाश से इस तीर्थ के दर्शन से प्रसन्नता, आनन्द प्राप्त करते है। इस तीर्थ की पुष्पों से पूजा करते हैं। इससे यह पुष्पदंत नाम से प्रचलित है।

15. **महापद्म**– जिस तरह कमल कीचड़ से उभरता है, उसी तरह जो भव्य जीव सच्चे मन और श्रद्धा से भक्तिभावपूर्वक तीर्थाराधना करते हैं, वे संसार रूप कीचड़ के समुद्र को पार करके मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं, जिससे यह महापद्म नाम से प्रचलित है।

    अन्य मतानुसार कमल कीचड़ से उत्पन्न होता है और पानी से उसकी वृद्धि होती है, फिर भी कमल–पद्म (पानी और कीचड़) दोनों से भिन्न–विभक्त रहता है, उसी तरह इस तीर्थ के सेवन से भव्य जीव कीचड़ रूप संसार समुद्र को पार करते हुए मोक्ष पद प्राप्त करते हैं, जिससे यह महापद्म नाम से प्रचलित है।

16. **पृथ्वीपीठ (प्रथ्वीपीठ)**– आत्मा से चिपके हुए कर्मों का क्षय करते हुए मोक्ष रूप लक्ष्मी के साथ शादी करनी है तो शादीमण्डप और बैठक होनी आवश्यक है। इसी तरह शिवरूपी स्त्री की शादी में मुनिवरों के लिए यह तीर्थ ही मण्डप और बैठक रूपी कार्य करता है, जिससे यह पृथ्वीपीठ नाम से प्रचलित है।

अन्य मतानुसार, यह गिरिराज समग्र पृथ्वी का आधार रूप है। उसका प्रत्येक कण सुन्दर–पवित्र है, जिससे यह पृथ्वीपीठ नाम से प्रचलित है।

17. **सुभद्रगिरि**– यह परम पवित्र गिरिराज सर्व को पवित्र करते हैं। उसकी रज, वृक्ष, पानी आदि सर्व पवित्र–मंगलमय है। यह भद्र अर्थात् कल्याणकारी है। उसके दर्शन मात्र से कल्याण होता है, जिससे यह सुभद्रगिरि नाम से प्रचलित है।

18. **कैलाशगिरि**– यह तीर्थ साक्षात् मुक्तिनगरी समान है। यहाँ मानव, विद्याधर, देवता, अप्सरा भी अपने पापकर्मों के क्षय करने आते हैं। इससे यह कैलाशगिरि नाम से प्रचलित है।

अन्य मतानुसार इस पवित्र गिरिराज के स्पर्श से शेत्रुंजी नदी का पानी पवित्र, पापहर्ता होता है, जिससे यहां विद्याधर, मुनि, मनुष्य आदि अपने पापकर्म क्षय करने आते हैं। पवित्र नदी में स्नान करते आनन्द–विलास से मोक्ष सुख–मोक्ष निरंजनी प्राप्त करते हैं, जिससे यह कैलाशगिरि नाम से प्रचलित है।

19. **पातालमूल**– इस गिरिराज का मूल पाताल में है। यह गिरि रत्नमय और मनोहर है, जिससे यह पातालमूल नाम से प्रचलित है।

20. **अकर्मक**– इस महान् तीर्थ पर आठ प्रकार के कर्म तीव्र विपाकरूप उदय में आते नहीं हैं, कृत कर्म का क्षय होता है और आत्मा कर्मरहित होता है। यह इस तीर्थ का प्रभाव है। यहाँ कौआ भी नहीं आता है, जिससे यह अकर्मक नाम से प्रचलित है।

21. **सर्वकामद**– यह गिरिराज पर यात्रिक–भक्त की सर्व आकांक्षा, मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। द्रव्य और भाव दोनों की पूर्ति होती है, इससे यह सर्वकामद नाम से प्रचलित है।

(5) कठिन शब्दार्थ

अभाव **थयानी खबर** ह्न मृत्यु प्राप्त होने की खबर (पृ. 1)

अव्याबाध ह्न अनंता (पृ. 2)

असक्तछेदीह्न आसक्ति दूर कर, वैराग्य प्राप्त करके (पृ. 11)

अस्याध्यह्न असाध्य (पृ. 13)

आलोचह्न आलोचना, पश्चात्ताप (पृ. 12)

आंसूछूईह्न शत्रुंज्य पर्वत स्थित स्थल विशेष नाम (पृ. 2)

उडवडाह्न पानी का झरना, पानीकुंड (पृ. 3)

उपघातह्न उपद्रव, विनाश (पृ. 3)

उपद्रव्यह्न उपद्रव, उपसर्ग (पृ. 4, 13)

उलखझोलह्न शत्रुंजय पर्वत स्थित स्थल विशेष नाम (पृ. 3)

कातीह्न करवत (पृ. 12)

काल प्राप्तिह्न मृत्यु प्राप्ति (पृ. 2)

कुमारीभस्मह्न जिसके घर कभी किसी की मृत्यु न हुई हो उस घर की भस्म (पृ. 4)

के वराणोह्न कहा गया (पृ. 3)

कोपसमाविनेह्न गुस्से को शांत करते (पृ. 3)

गरडाह्न वृद्ध (पृ. 4)

गाउह्न दूरि दर्शक एकम (पृ. 2)

चय खडकीनेह्न अग्नि प्रज्वलित करके (पृ. 4)

च्यार अर्हर छांडिनेह्न चारों प्रकार के आहार त्याग करना (पृ. 1)

छेल्लि अवस्ताईह्न मृत्यु समये (पृ. 3)

जथोस्तिह्न यथोचित (पृ. 4)

जिरणह्न जीर्ण, पुराना (पृ. 1)

जुधह्न युद्ध, लड़ाई (पृ. 12)

जोरोह्न शक्ति (पृ. 13)

झंपापातह्न कुदी लगाना (पृ. 10)

तलाध्वजह्न शत्रुंजय पर्वत स्थित स्थल विशेष नाम (पृ. 2)

टुकह्न पर्वत स्थित शिखर विशेष (पृ. 2)

ठामठामह्न अनेक/विविध स्थल (पृ. 10-12)

थानकह्न स्थानक (पृ. 12)

निमाडेह्न कुम्भकारकी भट्ठी (पृ. 11)

निराबाध पदह्न अजरामर पद (पृ.)

पडिलाभीह्न प्रतिलाभित (पृ.)

परठविह्न भूमिग्रस्त करना (पृ. 11)

परिणामीह्न प्रणाम करके (पृ. 3)

पाठाराप्रखह्न जैन साधु के लकड़ी के बर्तन (पृ. 11)

प्रजायह्न दीक्षा, प्रव्रज्या (पृ. 7)

फरसह्न स्पर्श (पृ. 15)

फाल देईह्न कुदी लगाकर (पृ. 9)

फासुपाणिह्न प्रासुक जल (पृ. 3)

मुर्छा उतारीनेह्नमोह त्याग करके, विरक्त भाव धारण करके(पृ. 1)

मोहोछवह्न महोत्सव (पृ. 9, 14)

रोखोयुंह्न रक्षण (पृ. 3)

लवजवह्न हुंसातुसी (पृ. 10)

वस्य आवतो नथीह्न अंकुश में नहीं आता है (पृ. 2)

वंछितपुरेह्न मनोकामना पूर्ण करे (पृ. 9)

विकस्वरह्न विकसित (पृ. 1)

विकुर्व्याह्न दैवी माया से उत्पन्न करना (पृ. 13)

शांतिजलह्न स्नात्रपूजा में शांतिस्रोत अभिसिंचित प्रभु प्रक्षालन जल (पृ. 13)

सपरसह्न स्पर्श (पृ. 2)

समथह्न समस्त (पृ. 2)

समोसरयाह्न बिराजमान हुए (पृ. 2)

संथारोह्न संस्तारक (पृ. 13)

संलेखणाह्न उपवास, अनशन (पृ. 1)

संबलह्न कलश (पृ. 3)

सिद्धवधुह्न मुक्ति, मोक्षपद (पृ. 2)

सुणुह्न स्वप्न (पृ. 12)

स्तानकेह्न स्थानक (पृ. 12)

स्वामिवछलह्न स्वामीवात्सल्य (पृ. 9)

III. English Section

This *Siddhācalapaṭa*, as it is called in the final colophon, is a long and narrow document on paper which was meant to be rolled. It is kept at the Jain Vishva Bharati, Ladnun (Rajasthan) with the shelfmark "Aa 97". It is 12 metres long and 24 cms. broad. It dates back to 1803 C.E. (Śāka 1725 = V.S. 1859) and comes back from a Jain Śvetāmbara Mūrtipūjak surrounding as is shown by the only person name found in the colophon (*-vijaya*) and a representation of a Jain monk in Śvetāmbara Mūrtipūjak attire (as a devotee to Abhinandanasvāmī). It was made in Agastapura (location uncertain) and probably comes from Gujarat or more broadly Western India.

Siddhācala is one of the common names of the sacred hill otherwise known as Shatrunjaya. The text of the scroll, which is written in Gujarati, emphasizes the main feature of this hill as a place *par excellence* for reaching Emancipation. This feature is underlined here in the recurring phrase "X *siddha-vadhū* or *siddha varyā*", i.e. "X selected Emancipation as his bride" = reached Emancipation.

The present *paṭ* systematically connects each of the 24 Jinas in turn with the sacred hill. Each of them is represented individually in a painting (see section 3. below) which is followed by a portion of Gujarati text ending with a phrase of homage to the corresponding Jina.

Hence it is different from the usual Shatrunjaya *paṭs* where the iconographic programme shows elements of the mythical or topographical landscape of the hill and which are often used as hangings in many Jain temples. Their iconography is not uniform and has changed over the centuries (see Hawon Ku Kim 2007, chap. 5). While the earlier ones represent Shatrunjaya as a mythical place through the depiction of a few key episodes (the Emancipation of the Five Pāṇḍavas on the hill being one of them), the later ones depict it "as a topographically and architecturally accurate site" (*ibid.* 157). All of them are meant to be "embodiments of the site" to be looked at and worshipped on Kārtik Pūrṇimā by lay devotees, especially those who are unable to go for a pilgrimage themselves, or by mendicants who are not allowed to go from one place to another during the rainy season. Such *paṭs* are still being made in the village of Palitana.

1. Contents of the text

The Jinas' identity cards: analysis and charts

Each of the textual portions of the present *paṭ* starts with a formulaic sentence of the type "And now the Lord X". Each of the 24 sections includes a certain amount of basic information relating to a given Jina presented in a fixed sequence in the form of a list. In its complete form it covers the following items: number of *gaṇadharas*, name of the chief-*gaṇadhara*, number of monks, number of nuns, name of the chief-nun, number of laymen, number of laywomen, size, life-duration, colour and identifying symbol (*lāñchana*). In a number of cases, however, there are gaps: the names of the chief-*gaṇadhara* are missing from Jina 16 to 24, the name of the chief-nun is missing for Jinas 13 and 15 to 24. In one case, the size is missing, which is probably just the result of chance. When, however, the gaps are more numerous, it is difficult to account for them. The available information has been collected in a chart (see below and section 3). For Jinas No. 3, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 17, 18, 19, 21 and 23, there is nothing more than that.

The tradition of giving a systematic identity card to the Jinas which can be visualized in tabular presentations is not new. The *Āvaśyakaniryukti* has such a presentation dealing with the following parameters: number of monks and nuns, number of *gaṇas*/*gaṇadharas*, life duration (total and with subdivisions), names of father and mother, places for the first fast-breaking, names of donors on this

occasion, size of the body. This type of presentation culminates with works such as Somatilaka's *Saptatiśatasthānaprakaraṇa* (1330 C.E.) which is a remarkable and extreme instance: it covers everything relating to the maximum possible number of Jinas (cf. Bruhn 1983). An intermediate representative of this taste for exhaustivity in the Śvetāmbara tradition is provided by Nemicandrasūri's *Pravacanasāroddhāra*, a classic of Jain dogmatics, which covers the following topics:

Names of the Jinas: *dvāra* 7
Names of the *gaṇadhara*s of the 24 Jinas of the present in Bharata: *dvāra* 8
Names of the chief-nun of the same: *dvāra* 9
Names of the fathers and mothers of the same: *dvāra* 11
Number of *gaṇadhara*s of the same: *dvāra* 15
Number of monks of the same: *dvāra* 16
Number of nuns of the same: *dvāra* 17
Number of those possessing *vaikriyalabdhi* : *dvāra* 18
Number of debating monks (*vādin*): *dvāra* 19
Number of those possessing *avadhijñāna*: *dvāra* 20
Number of Omniscien: *dvāra* 21
Number of those possessing *manaḥparyāyajñāna*: *dvāra* 22
Number of those knowing the 14 Pūrvas: *dvāra* 23
Number of laymen: *dvāra* 24
Number of laywomen: *dvāra* 25
Names and characteristics of their *yakṣa*s and *yakṣī*s: *dvāra* 26 and 27
Size of the body and identifying symbol: *dvāra* 28
Colour and number of people who took *dīkṣā* along with them: *dvāra* 29
Life duration and number of people who reached Emancipation along with them: *dvāra* 30
Place of Emancipation: *dvāra* 31.

Information of a similar type is integrated in the narration in works such as Hemacandra's *Triṣaṣṭiśalākāpuruṣacaritra*, where, however, the names of the chief-nuns are never mentioned. Thus, on the one hand, the tradition on topics relating to the Jinas' lives is fairly well established, on the other hand, some of the headings are probably less commonly known than others: names of the *yakṣa*s and *yakṣī*s are more familiar than the names of the chief-nuns; information relating to Mahāvīra, Ṛṣabha and a few others is more familiar than what concerns, for instance, Padmaprabha. Thus discrepancies in names and numbers can occur, as the comparison of our document with parallel sources shows. In case of names, they are sometimes orthographic/phonetic variants, which might have been favoured by the coexistence of Sanskrit, Prakrit and vernaculars, or variations of a type that might suggest a form which has undergone modifications during the transmission. When they are radically different from one source to the other, to account for this difference is almost impossible (e.g., name of the chief-*gaṇadhara* of Jina No. 6). In the case of numbers, difficulties in the written transmission (inversion of figures or misreadings or even misunderstandings resulting from the way of listing figures in verses which can provoke ambiguities) could be the explanation (for instance 105 in the Ladnun document instead of the usual 102 for the number of Sambhavanātha's *gaṇadhara*s, 80 instead for 88 for those of Suvidhināṭha). In fact, the textual tradition itself is aware of such divergences, which are recorded, for instance, in Siddhasenasūri's commentary on the *Pravacanasāroddhāra* with some embarrassment, as in one case the conclusion is: *tattvaṃ punaḥ kevalino vidanti*, see the annotations to the chart below.

The Jinas' charts - I

Jina	Gaṇadharas	Name of chief gdh.	monks	nuns	Name of chief nun	laymen	laywomen	size	life duration
1		-							
2	95	Siṃhasena	100000	130000 but 330000 acc. to *ĀvN* 260, *Pravac.* dvāra 17 and *T.* II. 6.666 (*triṃśat-sahasra-yuk lakṣa-trayam*)	Phāla-guṇa	298000	554000 but 545000 according to *T.* II. 6.670 (*pañcacat vāriṃśat-saṃkhyaiḥ sahasrair adhikāni tu, śrāvikāṇāṃ pañca-lakṣāṇi*)	450 *dhanuṣ*	7200000 p.
3	105 but 102 according to *ĀvN* 266, *Pravac.* 14 dvāra & *T.* III. 1375	Cārudatta but Cāru acc. to *Pravac.* dvāra 8 and *T.*	200000	336000	Śyāmyā	293000	636000	400 *dh.*	6000000 p.
4	116	Vajranābha	300000	630000	Ajitā	228000 but 288000 acc. to *Pravac.* dvāra 24 and *T.*	527000	350 *dh.*	5000000 p.
5	100	Camara	320000	530000	Tāpī but Kāsavī acc. to *Pravac.* dvāra 9	218000 but 281000 acc. to *Pravac.* and *T.*	516000	300 *dh.*	4000000 p.
6	107	Jasa but Pajjoya acc. to *Pravac.* dvāra 8 and Suvrata acc. to *T.*	336000 but 330000 acc. to *ĀvN.* 256 and *Pravac.*	420000	Rati	276000	505000	250 *dh*	3000000 p.
7	95	Vidarbha	300000	493000, but 430000 acc. to Āv to *Pravac.* *N* 261, *Pravac.* and *Tr.* here	Sāṃmā but Somā acc. dvāra 9	257000	493000	200 *dh.*	2000000 p.

Jina	Gaṇadharas	Name of chief gdh.	monks	nuns	Name of chief nun	laymen	laywomen	size	life duration
				perhaps a confusion with the number of laywomen					
8	93	Dina but Diṇṇaprabhava acc. to *Pravac.* and Datta acc. to *T.*	250000	380000	Sumanā	250000	491000	150 *dh.*	1000000 p.
9	80 but 88 according to *ĀvN* 266, *Pravac.* dvāra 15 & *T.*	Bāraha (usual form: Varāha)	200000	120000	Vāruṇī	229000	471000 (= *Pravac.*, but 472000 acc. to *T.*. III. 7.246: *śrāvikāṇāṃ catur-lakṣī dvāsaptati-sahasrayuk*)	100 *dh.*	200000 p.
10	81	Nanda but Pahunanda acc. to *Pravac.* and Ānanda acc. to *T.*	100000	106000	Sujasā	289000	458000	90 *dh.*	100000 p.
11	76, like *Pravac.* (*chāvattarī*) but *ĀvN* 72 (*bāvattarī*); difference resulting from graphic confusion	Kastubha; Kotthuha acc. to *Pravac.* and Gośubha acc. to *T.*	84000	130000 but 103000 acc. to *ĀvN* 261, *Pravac.* and *T.*	Dhāraṇī	279000	448000	80 *dh.*	8 400 000 years
12	66	Śubha, Subhoma acc. to *Pravac.* and Sūkṣma acc. to *T.*	72000	100000	Dharaṇī	215000	436000	70 *dh.*	7200000 years
13	57	Mandīra; usual form: Mandara	68000	100800	-	208000	424000 (= *Pravac.*, but 434000 acc. to *T.* IV. 3.222: *śrāvi-*	60 *dh.*	6000000 years

Jina	Gaṇadharas	Name of chief gdh.	monks	nuns	Name of chief nun	laymen	laywomen	size	life duration
							kāṇāṃ catur-lakṣī catust-riṃśat-sahasra-yuk; Johnson's transl. "430000" is a mistake)		
14	50	Jasa	50000 but 66000 acc. to *ĀvN.*, *Pravac.* and *T.*	62 000	Padmāvatī	206000	410000 but 414000 acc. to *Pravac.* and *T.*	50 *dh.*	3 000000 years
15	43	Ariṣṭa	64000	62400	-	204000 but 240000 acc. to *T* and *Saptatiśata* gāthā 241 (ref. given in *Pravac.* ed. n. 1 p. 249)	413000 years	45 *dh.*	1 000000
16	36	-	62000	62600 but 61600 acc. to *ĀvN* 262, *Pravac.* and *T.*	-	290000	393000	40 *dh.*	100000 years
17	35	-	60000	60600	-	179000 but *T.* different	381000	35 *dh.*	95000 years
18	33	-	50000	60000	-	184000	372000	30 *dh.*	84000 years
19	28	-	40000	55000	-	183000	370000	25 *dh.*	55000 years
20	18	-	30000	50000	-	172000	350000	to be supplem-ented: 20[1]	30000 years
21	17	-	20000	41000	-	170000	348000	15	10000 years
22	11	-	18000	40000	-	169000	336000 but *T.* transl. V p. 312: 339000	10 *dh.*	1000 years

1 According to *Pravac.* dvāra 28, the principle is that from Dharmanātha to Neminātha the number decreases from 5 units. This is also the reason why "22" as the size of Mallinātha given here is very likely to be a mistake.

Jina	Gaṇadharas	Name of chief gdh.	monks	nuns	Name of chief nun	laymen	laywomen	size	life duration
23	10	-	16000	38000	-	164000	327000 but 339000 acc. to *Pravac.* and 377000 acc. to *T.*	9 *hasta*	100 years
24	11	-	14000	36000	-	159000	327000 but 318000 acc. to *Pravac.* and *T.* There is probably a confusion in the Ladnun scroll because the number of laywomen belonging to Pārśva's and Mahāvīra's community should not be identical	7 *hasta*	not given

II

Jina	number of accompanying persons at *dīkṣā*	number of accompanying persons at Emancipation
1	-	-
2	1000	1000
3	1000	1000
4	1000	1000
5	1000	1000
6	1000	803; 308 acc. to *Pravac.* dvāra 33, but the variant 803 is recorded in the comm.: *Padmaprabhasya trīṇy aṣṭottarāṇi śatāni, anye try-uttarāṇy aṣṭau śatāni vyākhyāyanti. Āvaśyaka-ṭippanake tu "Padmaprabha-tīrthakṛd-vicaye trīṇy aṣṭottara-śatāni sādhūnāṃ nirvṛtānīty avagantavyam, triguṇam aṣṭottaraṃ śatam ity arthaḥ, trīṇi śatāni caturviṃśaty-adhikānīty yāvat" iti vyākhyātam. tattvaṃ punaḥ kevalino vidanti*
7	1000	500
8	1000	1000
9	1000	1000
10	1000	1000
11	1000	1000
12	600	600
13	1000	6000
14	1000	7000
15	1000	108

Jina	number of accompanying persons at *dīkṣā*	number of accompanying persons at Emancipation
16	1000	900
17	1000	1000
18	1000	1000
19	300	500
20	1000	1000
21	1000	1000
22	1000	536
23	300	33
24	-	- Mahāvīra was alone at that time.

The narrative material: miracles, names and landscape

The sections relating to Jinas No. 1, 2, 4, 16, 20, 22 and 24, are not restricted to the Jinas' biodata. They also include embedded narratives (see below). The connecting thread of all the material contained in the document is Shatrunjaya. This document dates back to the beginning of the 19th century; as a highly important sacred place Shatrunjaya has given birth, in the course of time, to a number of literary compositions, whether they are hymns, legends, historical records, inscriptions, etc. The present *paṭ* draws on the wealth of traditional materials connected with this *tīrtha* which it hands down in its own way, that is in simple narrative Gujarati prose, where the ordinary pattern of the sentences is made of a chain of verbs in the absolutive finally leading to the main verb at the end of the sentence. The style is lively and close to the movement of the oral sentence.

The main narrative classic connected with Shatrunjaya is Dhaneśvarasūri's *Śatruñjayamāhātmya* written in the 14th century.[2] Several of the embedded stories found in the Ladnun document are also found in Dhaneśvarasūri's work. We do not mean to say that the author of our *paṭ* used this *māhātmya* directly or had it in front of him. But it can be considered as a kind of vulgate containing standard material on Shatrunjaya, which was transmitted from generation to generation and was known to all directly or indirectly. For instance, reporting about his visit to Shatrunjaya in November 1822, the British officer and scholar James Tod writes:

"My researches in this interesting spot were materially aided by an introduction through my own Yuti (= *yati*) to some learned priests, now here on a pilgrimage, who gave me much information on points connected with their religion, as well as details concerning the *teerut* (*tīrtha*), from the *Shatrunjaya Mahatma* [sic], a portion of which work they had with them".[3]

Although it is not the only work to have the same stories, we treat it here as a convenient reference. Compared to Jinaprabhasūri's *Śatruñjayakalpa* or a work such as the *Kumārapālaprabodhaprabandha*, where the main concern is to name and list for celebration those who reached Emancipation at Shatrunjaya, without expanding on their adventures, Dhaneśvarasūri narrates them at length. Our document stands midway between these two tendencies. The role of oral sources connected with Shatrunjaya should also not be underestimated. But it is more difficult to assert precisely.

The striking feature of our text is the exclusive legendary and traditional perspective and the absence of any topographical or historical information which would specifically relate to the period when the *paṭ* was painted and written or to earlier historical periods. It is neither the account of an actual

2 I have not been able to consult Śubhaśīlagaṇi's *Śatruñjaya Kalpa* and its commentary (ed. by Lābhasāgaragaṇi, Ahmedabad, 1969, Āgamoddhāraka Granthamālā No. 41; see Granoff 1999) for this investigation.

3 *Travels in Western India*, p. 275.

pilgrimage, nor a *tour* of the temples (*caityāparipāṭī*).[4] It does not provide any precise evidence on the architectural layout of the site or the localization of buildings (as it is done, for instance, in the second half of Jinaprabhasūri's *Śatruñjayakalpa*, even though it does not result into a very clear picture).

The embedded stories reflect how the sacredness of the place was perceived by the Jain devotees. The function of many of them, whether short or long, is to explain how a given spot (*kṣetra*) became sacred through the presence of various characters, who, at one stage of their lives, had religious feelings or acted in a religious way. Hence the stories are miracle stories which have a memorial aspect and are meant as commemorations for events that are supposed to have occurred in the past. The etiological function is equally important: the names of the hill itself and the names given to the various places leading to the hill or located on top of it are a basic concern of our document, which has its place in the tradition of *māhātmya*s. All features of the landscape, whether it is the ground or the water, have become significant within the religious context because they are associated with heroic and religious characters. The most commonly mentioned component is the *ṭunka*, a sacred enclosure. But the river Setrunji or water tanks such as the Sūryakuṇḍa (Suraj Kund) found on the hill, which are traditionally known to possess curative powers, are also sacred places. The sacred character of a given place is marked by the erection of a temple.

In brief, it is an object of worship which combines celebration of the 24 Jinas with the celebration of Shatrunjaya, a two in one.

Analysis of the stories in sections 1, 2, 4, 16, 20, 22 and 24

1

1) Vimalācala as a sacred place for Emancipation in the past, the present and the future. Various comparisons applied to Ṛṣabha: refuge for those who have none, remover of the dangers of rebirth, similar to a boat for helping qualified people to cross over, similar to a sun for dispelling the darkness of ignorance, similar to a caravan for crossing the jungle of rebirth, similar to the doctor Dhanvantari for removing the disease of karma, similar to the large cloud Puṣkarāvarta for removing the fire of passions, he who opens the lotuses in the form of qualified souls, who expounds the voice of dharma to the qualified souls.

2) Accompanied by his 84 *gaṇadhara*s, by 84000 monks and by the complete fourfold community Ṛṣabha reached Vimalācala where the four groups of gods organized his *samavasaraṇa*. After having listened to the Jina's preaching, where he described the glory of Vimalācala hill, a lot of people felt a supreme joy. They heard from the Jina that they would get emancipated at this place. Thus they became avert to the world, fasted unto death and reached Emancipation.

   >[5] ŚatrMāh. V.30ff.

3) The 24 Jinas of the past, among whom Kevalajñānin and Nirvāṇa/Nirvāṇi, revealed this sacred place.

4) Origin of the name Puṇḍarīka. It comes from the fact that this is the place where Ṛṣabha's leading *gaṇadhara*, Puṇḍarīka, reached Emancipation together with five crores of monks on the full moon day of Caitra, as it had been predicted to him by Ṛṣabha himself.

4 Among the numerous works belonging to these categories, see, for instance, "*Somatilakasūri-kṛta Śatruñjaya-yātrā-vṛttāntaḥ*" in *Anusandhān* (Ahmedabad) 10, pp. 10-11 narrating a pilgrimage which took place in V.S. 1395; "*Śrīsiddhācalatīrtha-Caityaparipāṭī*", in *Anusandhān* (Felicitation Volume for H.C. Bhayani), 18, pp. 117-187, dated V.S. 1817; "*Śrīśatruñjayacaityaparipāṭikā-stotram*" in *Anusandhān* 26, pp. 116-118.

5. ">" is used to indicate the existence of parallel versions of a given story or episode in other works.

> ŚatrMāh. V. 154; ŚatrKalpa 4.

5) Origin of the name Bharata given to an enclosure. During a pilgrimage to Siddhācala, Bharata asked Indra the reason why the footprints (*pādukā*) and the enclosure of Kevalajñānin were so decrepite. The Indra of Saudharma explained that he was the first Jina of the past and that these spots have now become old. Bharata undertook their restoration (this is not stated clearly in our document, but is clearly expressed in the ŚatrMāh. and has to be implied).

> ŚatrMāh. V. 366-376.

6) Restoration and construction of a new temple dedicated to Ṛṣabha on the top of the hill and installation of the *gaṇadhara* Puṇḍarīka. – Installation of Ṛṣabha's footprints under the Rāyaṇa.

> ŚatrMāh. V.19 for the tree, called *rājādanī* in Sanskrit; Kanchansagarsuri (1982) p. 9: mention of Ṛṣabha's footprints at this place; Gunratna Surishwar (1998) p. 91. Rāyaṇa is the holy tree of Shatrunjaya where Lord Ṛṣabha gave his sermon. It is of high value to the pilgrims and all its parts are considered sacred. Here it is mentioned in a surprisingly brief manner.

7) An episode showing the sacred character of the place. The *vidyādhara*s Nami and Vinami came to Bharata and told him that Ṛṣabha had predicted that their Emancipation would happen on Siddhācala. Bharata agreed. Nami and Vinami became mendicants and were emancipated on the 10th day of the bright half of Phālguṇa after having fasted unto death for two months. They were accompanied by two crores of monks.

> ŚatrMāh. V.736-738; ŚatrKalpa 23; Gunratna Surishwar (1998) pp. 45-46.

8) Topographical elements. Bharata bathed in the river Setruṃjī. In each of the four directions there are four parks: Sūryavana in the east, Candravana in the west, Lakṣmīvana in the south and Kusumavana in the north.

> ŚatrMāh. I.56-57.

9) Further on, king Bharata built a temple dedicated to Candraprabhu because an ascetic who was sitting there had been told by Ṛṣabha that he would reach Emancipation on this spot at the time of the eighth Jina, Candraprabhu.

> ŚatrMāh. V.752-762 (where the ascetics met by Bharata were told that this place would be the place of Candraprabhu's *samavasaraṇa*).

10) Origin of the name Carcagiri: the place where Carcā and the other 63 daughters of Nami and Vinami reached Emancipation.

> ŚatrMāh. V.744-745:

vratinyo Nami-putryo 'tha catuḥṣaṣṭy-aṅka-sammitāḥ
śṛṅge 'parasmin Kanakā-Carcādyās tasthur udyatāḥ / 744/

kṛṣṇa-caturdaśyāṃ niśīthe tatra tāḥ samam
yayuḥ svargaṃ tataḥ khyātaḥ Carcākhyaḥ sa girir mahān /745/

Another mention of these 64 daughters' Emancipation is found, for instance, in the Gujarati hymn *Cālo cālo ne jaie, Soraṭha deśa māṃ: Nemi putri cosaṭha kahī, karatī ātama ṭhāma* (in *Jaina Ratna Saṃgraha* p. 77).

11) Episode adduced to account for the name of the place known as Kadambagiri. It is narrated by king Bharata in answer to the question asked by Saktisiṃha, an ascetic who was his nephew. The hill owes this name to the fact that it was the place of Emancipation of Kadamba, the chief-disciple (*gaṇadhara*) of the Jina Nirvāṇa, the second among the 24 Jinas of the past, and that this had been predicted to him by the Jina.

> ŚatrMāh. V.714ff.

12) Origin of the name Bāhubala given to an enclosure: Bharata built a temple dedicated to Bāhubali on the mountain Talādhvaja (sic), the place where his nephew Saktisiṃha told him that Bāhubali had reached Emancipation.

> ŚatrMāh. V.695ff. The mountain named Tāladhvaja (sic) is mentioned in V.711.

– From here up to 15) below, a few episodes are not related to Shatrunjaya but to Girnar: under the conduct of Śaktisiṃha, Bharata travels to various places of pilgrimage and learns about their tradition. The same narrative frame is found in ŚatrMāh. chap. V.

13) The mountain Satudi. There people started to die without reason. A flying ascetic came and explained that this was caused by a barbarous king who had sent a disease. The ascetic went away after having advised the people to bathe in the curing waters of the river, saying that contact with its water would cause the disappearance of the disease. They did so and were cured.

14) Episode meant to explain the origin of the place Hastikalpa. Bharata had an elephant who was his favourite. He founded the village of Hastināgapura at the place where the elephant died. There he built a temple dedicated to Ṛṣabha. From that time the place was known as Hastikalpa.

> ŚatrMāh. V.730: the name of the hill is Hastisena.

15) A story meant to explain the origin of the name Baraḍagiri at Girnar. Girnar has its origin in the temple that was built in honour of Neminātha to celebrate three of the five auspicious events (*kalyāṇaka*) of his life. Four temples were built on each of the mountains located in each of the four directions. From there the mountain called Baraḍa or Varaḍa can be seen. On this mountain lived a *rākṣasa* who used to trouble the population. Nobody was able to have power over him. Bharata sent Suṣeṇa his commander-in-chief who was able to defeat the *rākṣasa*. Bharata built a temple dedicated to the Lord at this place.

> ŚatrMāh. V.890ff.

16) A story meant to explain the origin of the name Haṃsāvatāra. Dravaṇa, one of Ṛṣabha's sons, had two sons, Drāviḍa and Vāriṣeṇa. The two brothers were fighting for the kingdom. The rainy-season came. Millions of people had died in the battle. Then autumn came. There on the bank of the Gangā, there was a gathering of ascetics. After having heard the teaching of a leading ascetic, the two brothers became ascetics. They were accompanied by ten crores of persons.

A flying ascetic came to the forest where they were staying and told about the power of Siddhācala. They went there. On the way, they came across a pool where swans had gathered. One of them, who was old and weak, stayed there, while the others flew away when they heard the noise of approaching men. The monk gave water to the old swan and took it with him. After having fasted unto death the swan died and was reborn as a deity. A new temple was built at this place which then got the name Haṃsāvatāra.

> ŚatrMāh. VII, esp. 188-220 (episode of the swan); ŚatrKalpa 24; Kanchansagarsuri (1982) p. 13; Gunratna Surishwar (1998) pp. 35-36.

1) Ajitanātha spent the rainy season on Siddhācala. His disciple named Sudharma came on the top of the mountain for darshan taking some water for the trip. The monks sat to take rest in the middle of the day, putting their water dish aside. Suddenly a crow made a quick swoop and the water was spilled. The monk rebuked the bird and threw a curse. From this time on, crows disappeared from this place. The monk thought that his homage had been polluted and that it should never again happen to anybody else. He wished that pure water would always be available there. From this time the place was known as Ulaṣājhola (such is the spelling of the document; commonly known as Ulkhajal or Ulkajal; see Kanchansagarsuri [1982] captions to plates 94-95; Gunratna Surishwar [1998] p. 138). Ajitanātha predicted that Shatrunjaya would be the place where the monks would be emancipated. They performed ritual death and were emancipated.

> ŚatrMāh. VIII.232-244: emphasis on the fact that crows will disappear from the place and on the curative and purifying power of the water found on the hill.

2) The 60000 sons of the second Cakarvartin, Sagara, with Jinakumāra at their head, asked permission from their father to undertake a pilgrimage to the Aṣṭāpada where the memorial to their ancestor Ṛṣabha is located. Considering that future times were going to be difficult and that this memorial might be endangered, they decided to make use of the staff-jewel to dig a moat memorial behind the Aṣṭāpada in order to protect it.

Their digging activity disturbed the Bhavanapati deities (= the Nāgas) underneath. They were inflamed with anger. Seeing on the one hand the sacred Aṣṭāpada and on the other the behaviour of the princes, they came to them, explained the situation to Jinakumāra and then went back to their living place.

The princes then thought that the moat had to be filled with water in order to be useful. They filled the moat with the water from the Gangā. Now, the Bhavanapatis' homes were flooded by this water. This time the chief of the Nāgas, inflamed with anger, killed the princes by burning them. Seeing this, the chiefs (of Sagara's army) decided to take revenge.

But Indra, seeing through his *avadhi* knowledge that some disaster was going to happen, took the disguise of a Brahmin, with the aim to convince everybody that death is not something that can be avoided. He appointed some soldiers, told them what to do, took an army and entered Ayodhyā. He entered the city in the disguise of a Brahmin, carrying a corpse on his shoulders. He approached the door of Sagara's royal palace and started lamenting aloud. To the Cakravartin's questions, he answered that he had only one son who had died of a snake bite, that all solutions to revive him had proved useless. Only one remained: to find a *kumārī-bhasma* "virgin-ashes", i.e. a house where death had never happened, which as a powerful emperor he should be able to find. The Cakravartin took the Brahmin in the town in search for this, finally going to his mother, who said that there is no such thing in the house. When the Brahmin started to cry even louder, Sagara tried to explain him the impermanence of the world. The Brahmin answered through a striking sentence: "To explain is easy, to understand is difficult". Sagara did not agree, answering that both things are easy. While both were chatting, the news that Sagara's 60000 sons had died came to the palace. Indra, leaving the disguise, reverted to his true form, and explained the situation to Sagara. Ajitanātha arrived for the *samavasaraṇa* and preached the *dharma*. He celebrated the greatness of Shatrunjaya. Everybody was full of joy and serenity.

> ŚatrMāh. VIII.244ff.; Hemacandra, Triṣaṣṭi. II.5.51-II.6.219. But the means suggested by Indra as a Brahmin to revive his dead son is not identical in these versions. In Hemacandra's work, the

Brahmin has been told by the family deity to bring fire from an auspicious house where no one has died, and believes that Sagara can offer this since he is more powerful than anybody else, but the Cakravartin tells his family history and explains that no ancestor has survived death in his house. In the ŚatrMāh. VIII.323 bringing ashes from a house where death has never occurred is the solution suggested but inapplicable as every household, even the king's, has had experience of death.

3) Then the news came that the course of the Gangā flowed everywhere. Sagara came to Shatrunjaya with Bhagīratha, the son of Jinakumāra. They undertook a restoration of the sacred place. Indra requested Bhagīratha to bring the Gangā (overflowing from the moat) into the ocean in order to protect Shatrunjaya from difficult times further ahead. Bhagīratha gave a command to the deity called Svastika to bring the Gangā on earth, and then to the hill. Indra requested Sagara who requested the deity that the Gangā should be at a distance of 20 *gavyūtas*.

> Triṣaṣṭi. II.6.533ff. (no mention of the deity there); ŚatrMah. VIII.436ff.

4) Basic information about Ajitanātha: see the chart above and section 3. below.

4

1) Story meant to explain the name "Śatrunjaya", i.e. victory over enemies, which dates back to the time of the fourth Jina, Abhinandana. This name comes from the fact that the king Śuka could have victory on his enemies in this place. Śukarājan was the name of king Mṛgadhvaja's son, and was earlier known as Jitaśatru. This king had decided to abstain from the four types of food. He went on a pilgrimage to Siddhācala. On the way, the Kashmir forest came. His companions encouraged him to break his fast, saying that a body, which is made of matter, cannot survive without food and drink, and underlining that the Jinas have differentiated between the rules for general situations and those for exceptional ones. But the king did not change his mind. The community was full of anxiety.

The sun set. At night all were sleeping. A false *yakṣa* appeared in a dream to the religious teacher, to the king, to the chiefs and to the four heads (of the *sangha*), reassuring them that he would get them see Siddhācala on the next day. In the morning all of them woke up. They were full of joy: the *yakṣa* had built a new Siddhācala within Kashmir. With the king at their head the group made a pilgrimage and their resolution was fulfilled. Jitaśatru worshipped the Lord. He went away and came back seven or eight times, and then was advised to stay there. He founded the town of Vimalapura. The king and his two wives, Haṃsī and Sārasī stayed there and worshipped the Lord.

In the meantime a parrot came. It was beautiful and attracted the king's mind. His last hour came. He fasted unto death on Siddhācala. His two wives assisted him. The king's mind was still attached to the parrot. After his death he was reborn as a parrot. His wives had a pious death and were reborn as deities, who had the ability to see the rebirth of their former husband through their *avadhijñāna*. They enlightened him. After having understood his own nature from them he fasted unto death and became a god. King Śukarājan had victory over his enemies with the help of his wealth. From this day the place was known as Shatrunjaya. After having had victory over the internal enemies, namely passions, he reached Emancipation. This was also one reason why the place was known as Shatrunjaya.

> Kanchansagarsuri (1982) pp. 10-13 for a narration of the story of Śukarājan, but the episodes are different from what we have here and the textual source is not indicated as such. The story is not found in Dhaneśvarasūri's work.

2) King Candraśekhara also visited this sacred place and was emancipated after fasting unto death.

> A similar allusion in the Gujarati hymn *Siddhācāla gāvuṃ re* by Sākalacandra: *bhaginī bhogī uddharyo, je Candraśekhara narinda* (in *Jaina Ratna Saṃgraha* p. 71).

3) Basic information about Abhinandana: see chart above and section 3. below.

16

1) Basic information about Śāntinātha: see chart above and section 3. below.

2) At the end of Śāntinātha's sermon where he celebrated the greatness of Shatrunjaya, the king Cakrāyudha (who is also Śāntinātha's son) asked from him the favour of getting the title *sanghapati* to go to this extraordinary place. This permission was granted. The Lord poured *vāsakṣep* from the golden tray which was being held by Indra and granted the title of *sanghapati* to Cakrāyudha. The latter came back home in joy. He wrote messages to all countries. The community met. Indra ordered a temple. An image of Śāntinātha made of precious stone was installed there. The whole community went to Shatrunjaya and performed various religious acts. Then they came down the hill. They saw the old temple of the Lord. They got a new one made, in a way similar to what Bharata had done. Back home, Cakrāyudha gave the kingdom to his son and took the vows at the feet of Śāntinātha. He was emancipated at Sammetaśikhara after having fasted unto death for one month.

> ŚatrMāh. VIII.625ff.

3) The story is adduced as an explanation of the name of a site called Siṃha-udyāna on Shatrunjaya. A very aggressive lion tried to jump on Śāntinātha. Each time, he failed and had to recede. Each time his anger increased and he jumped again. This happened thrice. Seeing that Śānti remained fully quiet, the lion gave up and started to think that he was a great man. He was worried about what his next birth would be since he had insulted this great man. Śānti narrated his earlier birth (where he was a Brahmin who practiced sacrifice and killed animals) and enlightened him. As a result the lion performed fast unto death and was reborn in the eighth heaven. Through *avadhi*-knowledge he wondered which good action was the cause of his rebirth as a god. He understood that this was due to Śāntinātha's help. He got a temple dedicated to the Lord installed within Siṃhavana. Those who are devoted to the Lord's worship will see their desires fulfilled. From this time this sacred place became known as Siṃhavana.

> ŚatrMāh. VIII.586ff.; Kanchansagarsuri (1982) p. 13.

20

1) Basic information about Munisuvrata: see chart above and section 3. below.

2) Pilgrimage of Rāmacandra to Shatrunjaya, renovation and Emancipation.

3) Story of king Candrarāja who was a contemporary of Munisuvrata. From this rather complicated story only the elements which are relevant to Shatrunjaya, and more precisely, to the power of the water of its Sūryakuṇḍa,[6] are retained in the Ladnun scroll.

Candrarāja had been transformed into a cock by his step-mother the queen Vīramatī who was in possession of some magic powers. He had to suffer this condition for almost 16 years. The sixteenth

6 See below section 24 the story of king Mahīpāla who also benefited from the curative power of the water of Sūryakuṇḍa.

year was not yet completed. A great festival was being performed on the eighth day of the month of Caitra on Siddhācala. His wife Premalālacchī, who got the cock from Sivamālā the daughter of an acrobat, was very religious. She went to Shatrunjaya, taking the cock with her in a cage and accomplished various rituals there in a joyful atmosphere. They bathed in the Sūryakuṇḍa. Then her friends and herself opened the cage. Reflecting about his sad life and the hate of his step-mother, the cock-Candrarāja jumped into the water of Sūryakuṇḍa in order to kill himself. Premalālacchī plunged into the water to save her dear husband, without whom she would not be able to live. She took the cock. As they each pulled in a different direction, the cord around his neck broke and he recovered his original human form. The *Śāsanadevatā* took both of them out of the water. Both were honoured through a rain of flowers. Premalālacchi's father, king Makaradhvaja, celebrated their return. After having been able to rule for a long time, because of the greatness of Shatrunjaya, Candrarāja decided to lead a religious life after he had heard Munisuvrata's teaching and was finally emancipated.

> This story cannot be traced in Dhaneśvara's ŚatrMāh (chap. IX devoted to Munisuvrata and Rāma). But it is well known under the title *Candrarājā no rās* and known from several versions. Its connection with Sūryakuṇḍa accounts for its mention in various hymns to Shatrunjaya: see, for instance, one written in Gujarati by Sakalacandra (*Siddhācala gāvuṃ re*): *kurukaṭa maṭī rājā thayo, je Sūrajakuṃḍe Canda* (in *Jaina Ratna Saṃgraha* p. 71). A summary (in rather poor English) is available in Kanchansagarsuri (1982) pp. 15-16 (no original source mentioned); see also Gunratna Surishwar p. 65 about Suraj Kund: a bird (Candrarājā) is carved on the tank.

22

1) Basic information about Neminātha: see chart above and section 3. below. – Mention of Taleṭi, the place where the holy hill of Shatrunjaya begins.

2) After having heard Nemi's teaching, Kṛṣṇa's sons Śāmba and Pradyumna decided to lead a religious life. They went to Siddhācala with eight crores and a half monks and reached Emancipation.

   > ŚatrKalpa 26.

3) Nārada reached Emancipation together with 9 100 000 persons.

   > ŚatrKalpa 25.

4) Siddhācala is also the place where the Five Pāṇḍavas reached Emancipation. They were at the origin of a restoration there. After having taken to religious life, they were keeping a month's fast and went to Hastināpura to break it. They took the resolution to break the next fast at the feet of Neminātha. After having taken this resolution and having cleaned their religious vessels, they went in search for alms in Hastināpura. But, when they reached outside the village, they heard that Neminātha had reached Emancipation. They decided to go to Shatrunjaya, the glory of which they had learnt from him, and took to fasting unto death. They were accompanied by twenty crores of persons.

   > ŚatrMāh. XIII, end; ŚatrKalpa 30.

24

1) Basic information about Mahāvīra: see chart above and section 3. below. – During his travels Mahāvīra reached Siddhācala for the *samavasaraṇa* which was built by the gods. On this occasion he delivered his teaching.

2) Story of the king (Kara)Kaṇḍu: it shows how going to Shatrunjaya and worshipping the Jinas there can save even a misbehaving person. The starting point is as follows: two gods who were friends met in Siddhācala and saw a monk taking the heat of the sun. One friend asked the other whether he knew the story of this monk. His reply was negative, but he said that when he had gone to pay homage to Sīmandharasvāmī in the Mahāvideha, Sīmandhara narrated the following story to him.

There was a king named Karakaṇḍu who was extremely bad, who was addicted to the seven addictions and who was a tormentor of his subjects. Once, while he was sitting in the main hall, he happened to read a verse which was written on the flying leaves of a *kalpavṛkṣa*. After reading it, he became extremely frightened and disturbed, wondering how he could be freed from this evil and knowing that he would certainly die after having committed violence.

During the night, he went out alone and walked continuously. At dawn he sat under a tree to take rest wondering in which manner he would commit violence. Suddenly a cow came raising its horns. The frightened king pulled out his sword and struck the animal violently so that it was split into two parts. From the inside a beautiful young lady with ornaments came out. She rebuked the king for having killed a poor and weak animal. She challenged him, saying that if he was really courageous he should fight against her. Mocking her, he took his sword to fight. The lady gave a strong blow, and the king was knocked down, having no strength to get up. Totally depressed, he was immersed in reflection. When he opened his eyes, there was no cow, no lady and no strike of a sword. He wondered whether he had seen a dream or a mirage.

His family goddess Ambikā made herself known to him, telling him that for six months he would have to wander about, to visit various sacred places and to endure various difficulties, but that equanimity would come to him and that she would then tell him the proper place where to stay after that much time has passed. Then the goddess disappeared. Six months passed like this. The king went on.

Once he had reached a mountain at the foot of which there was a banyan tree. The sun was setting, night was coming. He decided to stay there, having made for himself a bed with the leaves of the tree. He was anxious, thinking that if he had gained equanimity, the goddess would have appeared to him. He fell asleep. Then a *rākṣasa*, who was his enemy, because the king had taken his wife and wealth, came to rebuke him, saying that he was now getting the result of his karma. He took the king and went back to his cave wondering what to do with him: should he eat the king, put him into pieces and throw him into the sea? Finally through his divine power he made iron nails and started beating the king as strongly as a washerman beats clothes. But the king did not show the slightest anger. The *rākṣasa* troubled the king like this for the whole night, without success. Realizing that the king would not die he left him at the foot of the banyan tree.

The next morning, the family goddess appeared. She advised the king to go to Puṇḍarikagiri in Saurashtra and to adopt right conduct. This would guarantee him the destruction of karmas after seven days and Emancipation. Then she disappeared. On the way the king met some monks and listened to their teaching. He reached the hill, worshipped the image of Ṛṣabha, and is there taking the heat of the sun at the feet of Mahāvīra. The king would reach Emancipation while the two gods who narrate the king's story are talking to each other.

> ŚatrMāh. I.65-162: the king's name is Kaṇḍu; Kanchansagarsuri (1982) p. 10.

2) The story of Mahīpāla: a very long story of which only the episode focusing on the curative power of the water of Suryakuṇḍa on Shatrunjaya is retained here. It is narrated by Mahāvīra to the king of Junagaḍha who had come to pay his respects with regard to king Mahīpāla who was sitting in the assembly.

King Mahīpāla will be suffering from a severe skin disease (leprosy/leucoderma). Because of it his body will have a bad smell, so that he will not live inside the city, but outside in a village. He will not know the difference between day and night and will have to suffer intolerable sufferings.

Once, numerous *vidyādhara*s and *vidyādharī*s were returning to their respective homes after having come to Shatrunjaya in order to celebrate the festival of the eighth day of Caitra. Among them, a *vidyādharī* suggested to her husband that they both bathe in Sūryakuṇḍa and worship Ṛṣabha before going. The *vidyādhara*s did so, filling ceremonial pitchers with water. Then they sat in their celestial carts and went. On the way they saw and heard the lamentations of Mahīpāla. The *vidyādharī* took pity on him and asked who he was. Her husband explained that he was king Mahīpāla and that this disease was the result of previous karma. But they had heard from a monk that there was one means to cure it: the contact with one drop of the water of Sūryakuṇḍa, a tank located in the Sūryavana of Shatrunjaya. Full of joy, the *vidyādharī* took some of this sacred water in her hands and sprinkled it on Mahīpāla. As the 18 varieties of the skin disease were disappearing, the *vidyādhara* said: "We had hatred with you for seven births. Now our power has stopped. Therefore we cannot stay here and we are leaving". Upon these words the disease became totally invisible and the king recovered full health. The next day was for celebrations.

A monk came. The king offered him some food and asked about the cause of his former disease. The monk narrated his previous birth to the king: in his seventh birth he had killed some Jain monks. He had made efforts to wash up the sins, but some karma had remained, as a consequence of which he had to suffer as he did. The king remembered his previous birth, went to Shatrunjaya where he performed various rituals, fasting unto death, and was emancipated.

> ŚatrMāh. II.595-605; Kanchansagarsuri pp. 14-15; Gunaratna Surishwar p. 65 about Suraj Kund.

3) To the Indra of Saudharma who asked about the power of the river Setruṃjī, Mahāvīra described its enormous powers: the qualified souls who bathe there will make their way out of the world of rebirths.

4) The 17 restorations of Shatrunjaya.

This traditional topic when it comes to Shatrunjaya is treated at length, for instance, in Dhaneśvara's *Śatruñjayamāhātmya* (Kanchansagarsuri pp. 17-21), or, more briefly, in Jinaprabhasūri's *Śatruñjayakalpa* (37ff., 69ff.). Here it is dealt with very briefly, only in the form of a list, as a kind of reminder and summary. The first twelve restorations were made by kings who were contemporary to one or the other Jina. Hence they have been mentioned in the relevant sections of the preceding development:

Restoration No. 1; cf. Section 1

No. 2; cf. Section 1

No. 3; cf. Section 1

No. 4; cf. Section 1

No. 5; cf. Section 1

No. 6; cf. Section 1

No. 7; cf. Section 2

No. 8; cf. Section 4

No. 9; cf. Section 8

No. 10; cf. Section 16

No. 11; cf. Section 20

No. 12; cf. Section 22

The five others are ascribed to historical persons. They are not detailed in the present scroll.

No. 13: Jāvaḍa was a rich Jain merchant from Saurashtra. He was clever enough to gain influence and benefits from the political power, which enabled him to invest money for the restoration of Shatrunjaya. He honoured Cakreśvarī. Along with Vajrasvāmī he and his party reached the hill. They worshipped Shatrunjaya and installed a new image of Lord Ādinātha. Jāvaḍa and his wife died on the hill and became emancipated. This event is ascribed to ca. 105.

No. 14: This restoration happened in V.S. 1213 at the time of King Kumārapāla and Hemacandra. Bāhaḍa was a minister of the king, and the son of the minister Udayana. He started converting the wooden temples of Shatrunjaya into stone temples.

No. 15: This restoration happened in V.S. 1371 under the guidance of Siddhasenasūri who had described the glory of Shatrunjaya and the preceding 14 restorations. Samaraśāha, who was instrumental in this process, received a written permission from the Mughal power to be allowed to restore Shatrunjaya.

No. 16: This happened in V.S. 1587 under the leadership of Karmaśāh, the youngest son of the wealthy Tolāśāh from Chittor. He was able to gain the favour of Prince Bahadurkhan and received from him a written permission to renovate Shatrunjaya. He managed to get the state tax on pilgrims abolished.

No. 17: This is presented as a coming event, not as something already realized, as it is in Dhaneśvara's *Śatruñjayamāhātmya* (XV.224) or Jinaprabhasūri's *Śatruñjayakalpa* (39): it will be done by king Vimalavāhana following the advice of the teacher Dupasaha.

5) The 21 names of Shatrunjaya.

As it is said in Dhaneśvarasūri's *Śatrunjayamāhātmya* (I.333-335) the hill is known by 108 names, an auspicious number among all which well applies to anything endowed with sacredness. Yet, Dhaneśvara gives a shorter list of 23 names. On the other hand, the tradition has established itself that there are 21 main names for the hill; see, for instance, ŚatrKalpa 5-8 (Chojnacki 1991: n. 8 p. 116 for some other references; Tod p. 277). They are part of the "21 Khamasamanas" recitations composed by various religious teachers (see Virvijaya quoted in Kanchansagarsuri (1982) p. 28 or Gunaratna Surishwar "21 Khamasamnas of Kartik Poonam"). There is such a vast range of names that it is no wonder that the selections of 21 can vary. A comparison of the present list with other hymns would show that there are some names which are found in all lists, while others might be different.

2. The colophon

End of the scroll on Siddhācala.
In the year Vikrama Saṃvat 1859, in the course of the year Śāka 1725, the second day of the dark fortnight of the month of Posa Māgasira, in Agastapura, with the favour of Sumatināṭha, this scroll for the reading of Paṃ. Kesaravije, homage to him 1008 times.

3. The paintings

Although the textual portions of the Ladnun *paṭa* contain a reasonable wealth of narrative material and episodes starring various characters, the iconography is one-sided in tune with the general perspective: the 24 Jinas are the only ones to be depicted, each in turn. Thus the paintings have nothing to do with Shatrunjaya itself, whether in its mythical or historical / architectural aspects.

The Ladnun *paṭa* has 24 illustrations of each of the 24 Tīrthaṃkaras in connection with its depiction and celebration of Siddhācala. Each of the Jinas is seated in *padmāsana* inside a temple-structure, a *garbhagṛha* or under a canopy (*chattra* like). All the Jina images do not have the same size. Some (of the intermediate Jinas) are smaller. They all have their eyes open. Some of them are adorned with a garland, or/and a necklace in the usual Śvetāmbara style. They also wear a red *tilaka*. Each of the painting is located in a rectangle which immediately precedes the section of the text where the given Jina is going to be celebrated.

The first painting which comes to the eye as one opens the Ladnun *paṭa* is a very well preserved image of a Jain temple with a richly colored roof, in red, orange and yellow with ornamental motives. The first Jina, Ṛṣabha, easily recognizable through his cognizance, the white bull, is seated in *padmāsana*. The painting conveys an atmosphere of exuberant joy. An equally colorful *dhvaja* in bright red is floating in the wind. Small bells, one easily imagines tinkling, are attached to it. A goddess-like figure dressed in colorful clothes is seen flying above the temple. It has features of an angel, having kinds of wings. Could it be Cakreśvarīdevī, the *yakṣī* of the first Jina, Ṛṣabhanātha? This painting stands out as the largest and the brightest.

The *lāñchana* or characteristic symbol associated which each of the 24 Jinas is not systematically represented on the scroll. It is found only in the five following cases:

- the bull for the first Jina, Ṛṣabha,
- the elephant for the second Jina, Ajitanātha,
- the moon crescent for the eighth, Candraprabha,
- the conch for the twenty-second, Neminātha,
- and the snake, for the twenty-third, Pārśvanātha.

In some other cases, the space for depicting the *lāñchana* has been prepared below the Jina's throne, but has remained empty (No. 9, 10, 11, 12, 15, 16, 19, 20, 21). The antiquity of the concept of *lāñchana* has been discussed by art historians, such as U.P. Shah. It does not seem to be attested in the oldest Jina images. However, from the 12th century onwards, the lists of *lāñchana*s appear to have become fixed. They are enumerated, for instance, in Hemacandra's *Abhidhānacintāmaṇi*, one of the standard sources for the full list of *lāñchana*s.

The colors of the bodies of each Jina also fully correspond to the traditional complexions as given by the *Abhidhānacintāmaṇi* and other sources. They are not a matter of chance. The identifying marks of the Jinas found in the Ladnun painting can be summed up in the following chart and can be compared with the chart given, for instance, by U.P. Shah, *Jaina Rūpa-Maṇḍana* (Delhi, 1987), p. 84:

Jina	complexion	*Lāñchana* painted	Complexion and *lāṃchana* in text
1. Ṛṣabha	Golden	bull	
2. Ajita	Golden	elephant	*kaṃcanavarṇasarīra gajalaṃchana*
3. Sambhava (text: Śambhava)	Golden	-	*kaṃcanavarṇa turaṃgalaṃchana*, horse
4. Abhinandana	Golden	-	*kaṃcanavarṇa kapilaṃchana*, monkey
5. Sumati	Golden	-	*kaṃcanavarṇasarīra krauṃcalaṃchana*, heron
6. Padmaprabha	Red	-	*raktavarṇa padmalaṃchana*, lotus
7. Supārśva	Golden	-	*svastikalaṃchana kaṃcanavarṇa*
8. Candraprabha	White	moon crescent	*svetavarṇa sasilaṃchana*, moon
9. Suvidhi	White	-	*svetavarṇa magaralaṃchana*, crocodile
10. Śītala (text: Sītala)	Golden	-	*kaṃcanavarṇa śrīvachalaṃchana*
11. Śreyāṃsa	Golden	-	*kaṃcanavarṇasarīra khaṃḍagalaṃchana*, rhinoceros
12. Vāsupūjya	Red	-	*raktavaraṇa mahiṣalaṃchana*, bull
13. Vimala	Golden	-	*hemavaraṇa suaralaṃchana*, pig
14. Ananta	Golden	-	*kaṃcanavarṇa sīṃcāṇolaṃchana*, falcon
15. Dharma (text: Dharama)	Golden	-	*kaṃcanavarṇaḥ vajralaṃchana*, thunderbolt
16. Śānti	Golden	-	*kaṃcanavarṇa mṛgalaṃchana*, antelope
17. Kunthu (text: Kuntha)	Golden	-	*kaṃcanavarṇasarīra chāṃgalaṃchana*, goat
18. Ara	Golden	-	*kaṃcanavarṇa nandāvarttalaṃchana*
19. Malli	Green	-	*nīlavarṇa kumbhalaṃchana*, pot
20. Munisuvrata	Blue	-	*kṛṣṇavarṇa kūrmalaṃchana*, tortoise
21. Nami	Golden	-	*kaṃcanavarṇa padamalaṃchana*, lotus
22. Nemi	Blue/grey	conch	*kṛṣṇavarṇa saṃkhalaṃchana*, conch
23. Pārśva	Green	snake	*nilavarṇa nāgalaṃchana*, snake
24. Mahāvīra	Golden	-	(lion)

As it often happens, *nīla* and *kṛṣṇa* are not clearly distinguished and can be represented as green, blue, or blue/grey.

Five Jina images (No. 2-6) are represented flanked on each side by devotees. They are laymen and laywomen (*śrāvaka* and *śrāvikā*) who are holding fly-whisk or implements for worship (ladle containing water or some other liquid for ritual aspersion, flower garland, recipient of some kind). On the left of Abhinandana (No. 4), the devotee is a Śvetāmbara Jain monk, clothed in white robe and holding the monastic staff (*daṇḍa*). Sambhava (No. 3) is worshipped by a lady holding a fly-whisk, but the figure on the left may be a god (rather than a human being) as it is depicted with four hands. Padmaprabha (No. 6) is worshipped by two men who are kneeling down and appear as Śaiva devotees: they are wearing a cloth which reminds of the goat-skin, and seem to hold a type of snake in their hands. Their hair-style is also typical of Hindu ascetics.

When the Jina is alone, the image can be set within a natural landscape: Supārśva (No. 7) is flanked on each side by two large trees. On both sides of the image of Vimala (No. 13) are nice panels adorned with sophisticated floral motives in the Mughal style. Ananta's image (No. 14) is surrounded by pillars. In some cases, the Jina image is alone in the centre, but there is some blank space on the left and on the right. It is possible that this blank space was meant to be occupied by figures of devotees, which have not been painted (see Dharma, Ara, Nami, Nemi and Pārśva). As for Ṛṣabha, although he is not flanked by devotees, the performance of worship is suggested by implements located on his right and left side.

The paintings have been executed with care and are lively. The individual paintings are surrounded by richly colored floral borders which are present all along the scroll, or separated from the text portions by red or yellow lines. Abhinandana's image (No. 4) is set on a nice green background which matches the floral border where green flowers are also seen. The figures of the devotees are lively and realistic. The depiction of their costumes shows variety and precision.

The prevalent atmosphere is one of joy and celebration to the Jinas. The feeling of deep and exuberant worship is conveyed both by the paintings and the text.

References

TEXTS

Jaina Ratna Saṃgraha (Gujarati) collected by Śrīmatī Pānabāi, Bhavnagar, 1931.

Pravac. = Nemicandrasūri, *Pravacanasāroddhāra* with Siddhasenasūri's commentary. Ed. Muni Padmasenavijaya, Muni Municandravijaya. Prathama-khaṇḍaḥ. Bhāratīya Prāyatattva Prakāśan Samiti, Piṇḍavāḍā, 1979.

With Gujarati translation by Munirājaśrī Amitayaśavijayajī Mahārāja. Śrī śiva Jain Śve. Mūrtipūjak Saṃgha, Śiva, Mumbai, 1992. – With Hindi translation by Sādhvī Hemaprabhāśrī, Prakrit Bharati Academy, Jaipur, 1999.

ŚatrKalpa (reference to the verse number) = Jinaprabhasūri, *Śatruñjayakalpa* (No. 1) in *Vividhatīrthakalpa*. Ed. Muni Jinavijaya, Shantiniketan, 1934 (Singhi Jain Series 10). – Hindi translation by Agarchand Bh. Nahata, Śrī Jaina Śvetāmbara Nākoḍā Pārśvanātha Tīrtha, 1978 (cf. also Dr. Shivaprasad, *Jain tīrthoṃ kā aitihāsik adhyayan*, Varanasi, 1991; Parshvanath Vidyashram Granthamala 56, based on Jinaprabhasūri's work) - Gujarati translation: *Śrī Jinaprabhasūri viracita sacitra Vividhatīrthakalpa* transl. by Muni Ratnatraya Vijaya & Muni

Ratnajyoti Vijaya. Jalor, V.S. 2056. - English translation by John E. Cort in Ph. Granoff (ed.), *The Clever Adulteress*, Oakville, 1990, pp. 246-251 - French annotated translation by Christine Chojnacki, pp. 113-141 in *Vividhatīrthakalpaḥ. Regards sur le lieu saint jaina*, vol. I, Pondichéry, 1991 (Publications du Département d'Indologie 85).

ŚatrMāh. (reference to the chapter and verses) = Dhaneśvarasūri, *Śatrunjayamāhātmya*, printed in Ahmedabad, V.S. 1995 (also publ. Hiralal Hamsaraj, Jamnagar, 1908). - A. Weber, *Ueber das Śatrunjaya Māhātmyam*. Ein Beitrag zur Geschichte der Jaina. Leipzig, 1858 - A. Weber, "The Satrunjaya Mahatmyam", *Indian Antiquary* 30 (1901), pp. 239-251 and 288-308. - Gujarati translation: *Śrī Śatruṃjaya Mahātīrtha Māhātmya* (Gujarāti bhāṣānuvād by Āc. Śrīmad Vijayakanakacandrasūrīśvarajī mahārāj. Patan: Viśvamangala Prakāśan Mandir, after 1976).

Triṣaṣṭi = Hemacandra, *Triṣaṣṭiśalākāpuruṣacaritra* (different editions used for different chapters). – English translation by Helen M. Johnson, 6 volumes, Baroda, 1931-1962.

STUDIES

Bruhn, Klaus. 1983. "Repetition in Jaina Narrative Literature", Proceedings of the International Symposium on Jaina Canonical and Narrative Literature (Strasbourg, 16th-19th June 1981) in *Indologica Taurinensia* XI (1983), pp. 27-75.

Burgess, James. 1879 (1976). *The Temples of Śatruñjaya*, near the celebrated Jaina place of pilgrimage, near Pālītaṇā in Kāṭhiāwāḍ. Photographed by Sykes and Dwyer, with historical and descriptive introduction. Bombay; reprinted 1976 (The Gujarat State Committee for the celebration of 2500th Anniversary of Bhagwan Mahavira Nirvan).

Dhaky, M.A. 1975. *Tirthadhiraja Shri Shatrunjaya: Tunk paricaya* (in Gujarati). Ahmedabad: Sheth Anandji Kalyanji Pedhi.

Granoff, Phyllis. 1999. "Medieval Jain Accounts of Mt. Girnar and Satrunjaya: Visible and Invisible Sacred Realms", *Journal of the Oriental Institute Baroda* vol. XLIX, 1-2, pp. 143-170.

Gunratna Surishwarji Maharaja, Acharya Sri. 1998. *A visit to Shatrunjaya*. A Running Commentary and Mental Pilgrimage of the Holiest Hill Shatrunjaya. Published by Adhyatmik Shikshan Kendra, Mumbai.

Hawon Ku, Kim. 2007. *Re-Formation of Identity: The 19th-century Jain Pilgrimage Site of Shatrunjaya, Gujarat*. A Dissertation submitted to the Faculty of the Graduate School of the University of Minnesota in partial fulfillment of the requirements for the degree of Doctor of Philosophy. March 2007.

Kanchansagarsuri, Aagamoddharakshishu Acharya. 1982. *Shri Shatrunjay Giriraj Darshan in Sculptures and Architecture*. Publisher: Aagamoddharak Granthmala, Kapadwanj, Shree Aagamoddharak Granthmala Book No. 59.

Tod, James. 1839 (1997). *Travels in Western India* embracing a visit to the sacred mounts of the Jains and the most celebrated shrines of Hindu faith between Rajpootana and the Indus, with an account of the ancient city of Nehrwalla. London. Reprint, Munshiram Manoharlal, 1997.

Index of proper names

(reference to the section number, 1-24)

Akarmaka (place) 24
Agastapura (place) col.
Ajitajī 4
Ajitanātha 2
Anantanātha 13
Abhinandana 4
Ayodhyā (place) 2
Aranātha 18
Ariṣṭa 15
Aṣṭāpada 2
Āsuchuiṃ (place) 1
Iṣāṇa 24
Ulakhājhola (place) 2
Ṛṣabhadeva 1, 16, 24
Kaṇḍūrājarīsi 24
Kadambagiri (place) 1
Kadambarisi 1
Karakaṇḍu 24
Karmasā 24
Kastubha 11
Kārtika śudi purṇimā 1
Kāsamira (place) 4
Kunthunātha 17
Kuradesa (place) 16
Kusama-udyāna (place) 16
Kusumavana (place) 1
Kṛṣṇamorāri 22
Kevalajñānī 1
Kesaravije, col.
Kailāsagiri (place) 24
Gaṃgā (place) 1, 2
Giranāra (place) 1, 22
Cakrāyudha 16, 24
Candarājā 20
Candrajasā 24
Candraprabhu 1, 8
Candravana (place) 1
Candraśekhara 4; 8
Candrodyāna (place) 8
Camara 5
Campā (place)12
Carcagiri (place) 1
Carcā 1

Cārudatta 3
Caitripurṇimā 1
Jasa 14
Jasaḥ 6
Jāvaḍa-Bhāvaḍa 24
Jitaśatru 4
Jinakumāra 2
Junāgaḍha (place) 24
Talādhvaja (place) 1
Taleṭi (place) 22
Tāpi 5
Daṇḍabīrja 24
Dina 8
Dupasāha ācārya 24
Dṛḍhaśakti (place) 24
Dravaṇajī 1
Drāviḍa 1
Dhanvantari 1
Dharaṇi 12
Dharmanātha 15
Dhāraṇi 11
Nanda 10
Naminātha 21
Nami-Vinami 1
Nārada 22
Nirvāṇi 1
Nilayagiri (place) 17
Neminātha 1, 22
Padmaprabhu 6
Padmāvatī 14
Parvendra (place) 24
Pāṇḍava 22, 24
Pātālamūla (place) 24
Pārśvanātha 23
Puṇḍarīka 1, 4
Puṇḍarīkagiri, -parvata (place) 7, 10, 12, 13, 14, 16, 24
Puṇyarāsī (place) 24
Puṣpadanta (place) 24
Prathavīpīṭha (place) 24
Pradomana 22
Premalālachī 20
Phāguṇa śudi daśama 1
Phālguṇa 2
Baraḍa-parvata (place) 1
Bārāha 9

Bāhaḍade mantri 24
Bāhubalagiri (place) 17
Bāhubala-ṭuṃka (place) 1
Bāhubali 1
Brahmendra 24
Bhagīratha 2
Bharata 1, 16, 20, 24
Bhuvanapati 2, 24
Makaradhvaja 20
Mandīra 13
Mallinātha 19
Mahāgiri 24
Mahātīrtha (place) 24
Mahāpadma (place) 24
Mahāvideha 24
Mahīpāla 24
Māhendra 24
Muktigiri (place) 2, 8, 17, 24
Muktilaya (place) 24
Munisuvrata 20
Mṛgadhvaja 4
Rati 6
Rāmacandra 20, 24
Rāyaṇa (tree) 1
Lakṣmīvana (place) 1
Vajranābha 4
Varaḍa 1
Vardhamānasvāmī 24
Vāriṣeṇa 1
Vāruṇi 9
Vāsupūjya 12
Vidhārbha 7
Vimalagiri (place) 10, 12, 13, 15, 16, 20, 22, 23, 24
Vimalanātha 13
Vimalapura (place) 4, 20
Vimalācala (place) 1, 2, 5, 6, 9, 11, 14, 15, 18, 24
Vimalādri (place) 7
Vīmalavāhana 24
Vīramati 20
Vīrasvāmī 24
Vyantara 24
Śatruṃjaya (Setruṃja) (place) 5, 24
Śāntinātha 16
Śāradā 1
Śītalanātha 10
Śukarājan 4
Śyāmyā 3
Śrīpada (place) 24
Śrīmandhara 24
Śreyāṃsanātha 11
Saktisīha 1
Sagaracakravartin 2, 24
Satudi (place) 1
Samāraṃga 24
Sambhavanātha 3
Sammetaśikhara (place) 1, 2, 4, 5, 6, 7, 9, 10, 11, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 23
Sarvakāmada (place) 24
Sāmba 22
Sāṃmā 7
Sārasī 4
Sāsvato (place) 24
Siṃha-udyāna (place) 16
Siṃhavana (place) 16
Siṃhasena 2
Siddhakṣetra (place) 24
Siddhagiri (place) 13, 19
Siddhācala (place) 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, col.
Siddhādriparvata (place) 1, 2, 7, 9, 12
Sivanaṭa 20
Sivamālā 20
Sujasā 10
Sudharma 1, 2, 4, 24
Supārśva 7
Subhadra (place) 24
Sumatinātha 5, col.
Sumanā 8
Suragiri (place) 24
Suryakuṇḍa (place) 20, 24
Suryavana (place) 20
Suvidhinātha 9
Suṣeṇa 1
Sūrya-udyāna (place) 20
Sūryavana (place) 1
Setruṃjī nadī (place) 1, 24
Soraṭṭhadeśa (place) 1, 24
Saudharma 24
Svastika-devatā 2
Haṃsāvatāra (place) 1
Haṃsī 4
Hastikalpa (place) 1
Hastināgapura (place) 1, 16, 22

Dr. Kalpana K. Sheth got her PhD from Ahmedabad Gujarat University under the supervision of the late H.C. Bhayani, a top scholar of Prakrit and Gujarati. She has published several books and articles. Few books as co-editor with late D.Lit. H.C. Bhayani. She has translated Jain canons and narrative literature in Gujarati, Hindi and English. She has worked on cataloguing various manuscript collections in India and abroad (United Kingdom, Italy). She is currently engaged in the project Vardhaman Jinaratnakosha, sponsored by the Jain Vishva Bharati University, Ladnun, and has organized several workshops there.

Prof. Dr. Nalini Balbir teaches Sanskrit, Prakrit and Jainism at the University of Paris-3 Sorbonne-Nouvelle (France). She has published several books and articles, dealing especially with Jain narrative literature and early commentaries (such as the Āvaśyaka-niryukti and cūrṇi), see www.iran-inde.cnrs.fr. Among other projects, she is currently engaged in cataloguing various Jain manuscript collections. Part of her studies took place at the L.D. Institute of Indology, Ahmedabad, where Dr. Kanubhai V. Sheth was the head of the manuscript department.

Nalini Balbir, Kanubhai V. Sheth and Kalpana K. Sheth have published together the Catalogue of the Jaina Manuscripts of the British Library (Institute of Jainology & British Library, 2006, 3 volumes).